ZO - 10

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

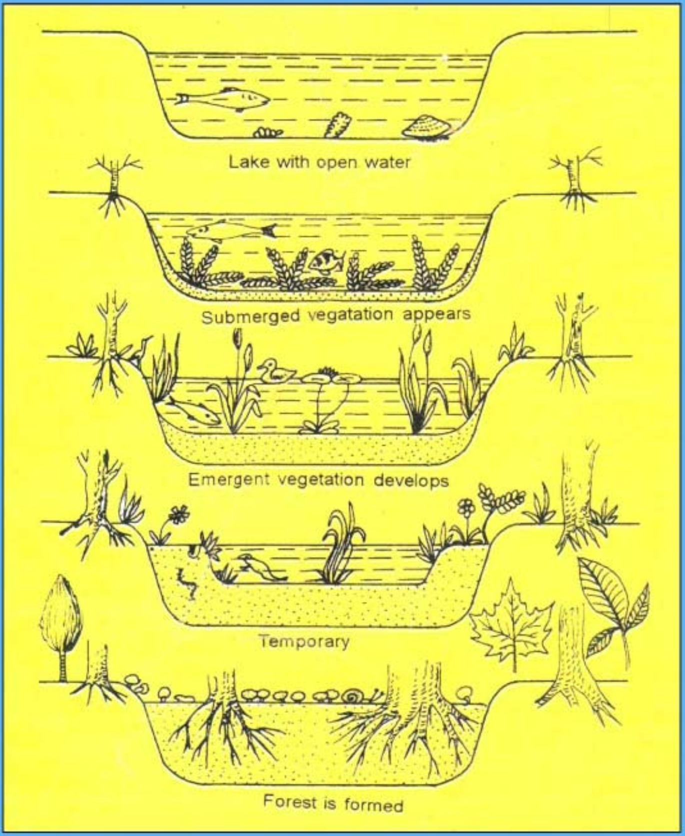

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी

ZO - 10

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक / समन्वयक एवं सदस्य

विषय समन्वयक

प्रोफेसर (डॉ.) पी.सी. त्रिवेदी

वनस्पति शास्त्र विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदस्य सचिव / समन्वयक

डॉ. अनुराधा शर्मा

सहायक आचार्य वनस्पति शास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो. संतोष कुमार (भूतपूर्व कुलपति)**
   डॉ. एच.एस. गौड़ विश्वविद्यालय, सागर एवं बर्कुतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
2. **प्रो. नीलिमा गुप्ता**
   डीन, प्राणि- विज्ञान एवं विभागाध्यक्ष एम.जे.पी.रोहिल खण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उत्तरप्रदेश)
3. **प्रो. एम.एस. शर्मा**
   प्राणी-शास्त्र विभाग
   मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
4. **प्रो. आर. एस. बेडवाल**
   प्राणी-शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय
5. **डॉ. एस. बी. लाल** (सेवानिवृत)
   मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
6. **डॉ. अनिमेश मोहपात्रा**
   विभागाध्यक्ष, प्राणीशास्त्र विभाग
   क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान)
7. **डॉ. अजय वर्मा**
   विभागाध्यक्ष, प्राणि- शास्त्र विभाग
   राजर्षि शासकीय महाविद्यालय, अलवर (राज.)
8. **डॉ. नरेन्द्र जैन**
   बी.बी.डी. राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा (जयपुर) (राजस्थान)
9. **डॉ. रश्मि सिसोदिया**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राजस्थान)
10. **डॉ. एस. तायल**(प्राणि-शास्त्र विभाग)
    अग्रवाल पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. एस. बी. लाल (सेवानिवृत्त)

प्राणी-शास्त्र विभाग

मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

लेखक

1. **डॉ. अभिमन्यु सिंह राठौर**
   प्राणि- शास्त्र विभाग
   बी. एन. पी. जी. कॉलेज , उदयपुर
2. **डॉ. मृदुला चतुर्वेदी**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   वैदिक कन्या पी. जी. कॉलेज, जयपुर
3. **डॉ. इरा गुप्ता**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   वैदिक कन्या पी. जी. कॉलेज, जयपुर
4. **डॉ. बी.एल. शर्मा**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   बियानी कॉलेज, जयपुर
5. **डॉ. आर. एल. बैरवा**
   प्राणी-शास्त्र विभाग
   राजकीय कॉलेज, सवाई माधोपुर
6. **डॉ. (श्रीमती) राजेश यादव**
   प्राणी शास्त्र विभाग
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड सांइसेज, जयपुर
7. **सुभाष शर्मा**
   जैव प्रौद्यिगिकी विभाग
   ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर
8. **डॉ. मोना अरोड़ा**
   प्राणि-शास्त्र विभाग
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड सांइसेज, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. अनाम जेटली**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	संकाय विभाग	पाठय सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - दिसम्बर 2009 ISBN - 13/978-81-8496-166-9

इस सामग्री के किसी भी अंश को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी

इकाई संख्या		पृष्ठ संख्या
1.	'पारिस्थितिकी', एक विज्ञान : अर्थ एवं इतिहास 'Ecology' as a Science; Its Meaning and History	6–16
2.	सीमाकारी कारकों की अवधारणायें Concept of Limiting Factors	**17–25**
3.	पारितन्त्र : अजैविक व जैविक कारक Ecosystem : Abiotic and Biotic Factors	**26–64**
4.	पारितन्त्र में ऊर्जा प्रवाह एवं आहार श्रृंखला Energy Flow in Ecosystem- Food Chain	**65–79**
5.	जैव भूरासायनिक चक्र Biogeochemical cycle	80–94
6.	पारितन्त्र समस्थिरता एवं पारिस्थितिकीय निकेत Ecosystem Homeostasis and ecological niche	95–116
7.	समष्टि अथवा जीवसंख्या पारिस्थितिकी Population Ecology	117–138
8.	समुदाय पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकीय अनुक्रमण Community Ecology and Ecological Succession	139–149
9.	आवास-स्थान व अलवण जलीय आवास Habitat & Fresh- Water Habitat	150–159
10.	समुद्रीय आवास स्थान Marine Habitat	160–182
11.	स्थलीय आवास Terrestrial Habitat	183–200
12.	पारिस्थितिकी एवं मानव भविष्य Ecology and Human Future	201–213
13.	वन्य जीवन संरक्षण Wild Life Conservation	214–228
14.	पर्यावरण एवं प्रदूषण Environment and Pollution	229–252
15.	ओज़ोन परत पर ह्रास प्रभाव Effect On Ozone Layer Depletion	253–264
16.	विकिरण एवं पर्यावरण (Radiation and Environment)	265–277

इकाई 1
'पारिस्थितिकी' एक विज्ञान : अर्थ एवं इतिहास
('Ecology' as a Science; Its Meaning and History)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 पारिस्थितिकी एक विज्ञान के रूप में
परिभाषा एवं इतिहास
1.3 मुख्य शाखाएँ या प्रविभाजन
1.4 महत्व
1.5 आधुनिक अवधारणा
1.6 व्याप्ति या कार्यक्षेत्र
1.7 बोध प्रश्न
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 संदर्भ ग्रन्थ
1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई में आप :

- पारिस्थितिकी के अर्थ को समझ सकेंगें।
- इसकी विभिन्न शाखाओं को जान सकेंगें।
- पारिस्थितिकी के महत्व तथा कार्यक्षेत्र को जान पायेगें।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी के समस्त जीव, उदिकासीय प्रक्रियाओं के फलस्वरूप आपस में जुड़े हुए हैं। इन जीवों (जन्तुओं एवं पादपों) का जैविक अथवा अजैविक (Biotie or Aboitic) वातावरण के साथ पारस्परिक अध्ययन ही पारिस्थितिकी का मुख्य आधार है।

1.2 पारिस्थितिकी एक विज्ञान के रूप में (Ecology as a Science)

परिभाषा एवं इतिहास (Meaning and History of Ecology)

19 वी सदी के मध्य में वैज्ञानिकों ने जीवों तथा पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले विशिष्ठ सम्बन्धों के लिए विभिन्न शब्दावलियों का प्रयोग किया। Ecology शब्द का उद्‌गम ग्रीक भाषा के दो शब्दों Oikos अर्थ है घर अथवा वास स्थान, तथा logos का अर्थ है अध्ययन, से हुआ है। यह जीवों एवं

वातावरण के मध्य आपसी सम्बन्ध को दर्शाता है। एच. रीटर इसका प्रयोग पारिस्थितिकी हेतु किया था। अर्नेस्ट हैकिल (1969) ने इस शब्द की पूर्ण व्याख्या करते हुए उसे परिभाषित किया था।

पारिस्थितिक विज्ञान की परिभाषाओं का इतिहास

पारिस्थितिकी की संरचना और उसमें जीवधारियों आदि के सम्बन्ध के आधार पर पारिरिथतिकी की विभिन्न परिभाषाए दी गई है। हैकिल ने निम्न परिभाषा दी, "प्राकृतिक वातावरण (Natuarl Environment) का अध्ययन तथा जीवों का आपस में एवं उनके परिवेश के साथ अध्ययन को पारिस्थितिकी (Ecology) कहा जाता है।" पारिस्थितीकी की विभिन्न परिभाषाओं का अपना एक इतिहास है जो क्रमबद्ध निम्न प्रकार से है -

(अ) 'जीवों का उसके वातावरण के साथ अध्ययन ही पारस्थितिकी है।' वार्मिंग (1895, 1905)

(ब) 'समुदाय (Community) का विज्ञान ही पारिस्थितिकी है। क्लीमेन्टस (1916)

(स) 'समस्त जीवों के अपने समस्त वातावरण के साथ सभी सम्बन्धों के विज्ञान को पारिस्थितिकी कहा जाता है।' टेलर (1936)

(द) 'प्रकृति की संरचना तथा कार्य के अध्ययन को पारिरिथतिकी कहते है।' ओडम (1963, 1969)

(य) 'विभिन्न अवस्थाओं (Forms), कार्य (Functions) तथा कारकों (Factors) के समिश्रण का विज्ञान है।' आर. मिश्रा (1967)

संक्षेप में "जीवों के आपस में अदभुत सम्बन्धों तथा इनका वातावरण के साथ विभिन्न जैविक स्तरों पर सम्बन्धों का विज्ञान" ही पारिस्थितिकी कहलाता है।

इतिहास (History)

पारिस्थितिकी का प्रयोग तथा ज्ञान उतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता। मानव विभिन्न वातावरणीय सुचनाओ का प्रयोग भोजन, आवास एवं उपचार आदि हेतु आदिम काल से करता आ रहा है।' भारतीय वेदों, पुराणों तथा उपनिषदों में पारिस्थिकीय ज्ञान की झलक देखी जा सकती है। चरक ने वायु, जल, दिशा तथा समय की विशेषता को पादप जीवन के नियतन के साथ जोडा है। अरस्तु, थियोफ्रास्टस, हिप्पोक्रेटस, लिनियस तथा बफ्फन ने अपनी विभिन्न पुस्तको में पारिरिथतिकी तथा (1707-1778) प्रकृति के महत्व पर अत्यधिक प्रकाश डाला है। रोटर (1868) ने सर्वप्रथम शब्द Oekologie का प्रयोग किया। हैकिल (1869) ने पारिरिथतिकी (Ecology) को सर्वप्रथम परिभाषित किया। मोबियस (1877) ने प्राणियों में समुदाय की विशेषता पर प्रकाश डाला। श्रोटर तथा किरचन (1896) ने सिन-इकोलॉजी (Synecology) शब्द का प्रतिपादन किया और इसके साथ इकोलोजी (Autecology) शब्द को भी जोड़ा। फोरबिस (1887), वार्मिंग (1909), कावलीस (1899) तथा क्लीमेंटस (1916) ने पादप तथा जन्तु समुदाय के अध्ययन में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारिरिथतिकी की विशेष शाखाओं यथा प्राणि-भूगोल (Zoogeography), समुद्रविज्ञान (Oceanography), सरोविज्ञान (Limnology), पुरापारिरिथतिकी (Paleo-ecology), एवं अंतराल पारिस्थितिकी (Space-Ecology), आदि शाखाओं का विकास

हुआ। इसी के साथ शनै-शनै समष्टि अथवा जीवसंख्या (Population Ecology) तथा समुदाय पारिरिथतिकी (Community Ecology) का विकास हुआ।

टेन्सले (1935) ने इकोसिस्टम (Ecosystem) अथवा पारितन्त्र शब्द का प्रतिपादन किया, जिसके कारण पारिस्थितिकी में परितन्त्र (Ecosystem) का महत्वपूर्ण स्थान बन गया। परितन्त्र को उत्पादकता से जोड़ कर जैवऔर्जोकी (Bioenergetic) जैसे प्रस्ताव को महत्व मिला। इस दिशा में ओडम आदि ने उल्लेखनीय योगदान दिया है।

मिश्रा ने आटइकोलोजी के क्षेत्र में विशेषतया शाकीय पौधे (herbaceous plants) पर उल्लेखनीय कार्य किया है।

स्वीडन की राजधानी में "विश्व पर्यावरण संरक्षण" नामक विश्वव्यापी सम्मेलन (1972) के आयोजन के बाद से प्रतिवर्ष 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' के रुप में मनाया जाता है।

1.3 मुख्य शाखाएँ या प्रविभाजन (Main Branches or Sub-divisious)

पादपों जन्तुओ तथा उनके वातावरण अथवा सम्पूर्ण प्रकृति की अध्ययन ही पारिरिथतिकी कहलाता है। पारिस्थितिकी का अन्य मुख्य शाखाओ या प्रविभाजन वर्गीकरण तीन मुख्य आधारों यथा (1) वर्गीकी सम्बन्ध (Taxanomic Affinities), (2) आवास (Habitat) तथा (3) संगठन के स्तर (level of organization) के आधार पर निम्न प्रकार से किया गया है :

1.3.1 वर्गीकी सम्बन्ध (Taxonomic Affinities) के आधार पर

यह वर्गीकरण प्राणि विज्ञान (Zoolosy) वनस्पति विज्ञान (Botany) आदि के आधार पर किया गया है। जिसकी शाखाएँ निम्न है -

(अ) प्राणी-पारिस्थितिकी (Animal Ecology)

प्राणी पारिस्थितिकी में प्राणियों को प्रधानता दी जाती है तथा पौधे आदि को गोण माना जाता है। इस शाखा में मानव पारिस्थितिकी (Human Ecology), स्तनपायी पारिस्थितिकी (Mammalian Ecology), पक्षी पारिस्थितिकी (Avian Ecology) तथा कीट पारिस्थितिकी (Insect Ecology) आदि प्रमुख उपशाखाएँ है। इसी प्रकार मानव पारिस्थितिकी का गहरा सम्बन्ध समष्टि पारिस्थितिकी (Population Ecology) से है। पारिस्थितिकी में प्राणी पारिस्थितिकी का अन्य पारिस्थितिकी विज्ञान यथा पादप पारिस्थितिकी के साथ-साथ ही अध्ययन किया जा सकता है।

(ब) पादप पारिस्थितिकी (Plant Ecology)

पादपों पर अध्ययन पादप पारिस्थितिकी कहलाता है। यहां पर पादप, पारिस्थितिकी का मुख्य व मूल भाग होते है तथा प्राणियो को वातावरण का एक अंग माना जाता है। पादप पारिस्थितिकी को समुदायों आदि के आधार के पर अन्य उपवर्गों, जैसे कि घास स्थल पारिस्थितिकी (Grass Land Ecology), वन पारिस्थितिकी (Forest Ecology), शैवाल पारिस्थितिकी (Algal Ecology), कवक पारिस्थितिकी (Fungal Ecology) आदि में बांटा जाता है।

पारिस्थितिकीविज्ञ प्राणी पारिस्थितिकी तथा पादप पारिस्थितिकी जैसे वर्गीकरण को सही नही मानते है चुंकि इन दोनों समूहों के जीव, पारिस्थितिकी में आपस में इस तरह से जुड़े हुए हैं कि इन्हे अलग अलग करना मुश्किल है।

1.3.2 आवासीय पारिस्थितिकी (Habitat Ecology)

बहुत से पारिस्थितिकीविज्ञ आवास (Habitat) के आधार पर जीवों का अध्ययन करते है। आवास वे विशिष्ट स्थल है जहां पर जीव रहते है तथा इसका वातावरण से गहरा सम्बन्ध है। आवासीय पारिस्थितिकी को विभिन्न आवासी के आधार पर पुन: निम्न उपविभागों में बाटा जाता है।

(अ) अलवणीय या स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी (Fresh water Ecology)

(ब) समुद्रीय पारिस्थितिकी (Marine Ecology)

(स) बेलासंगम पारिस्थितिकी (Estuarine Ecology)

(द) घासस्थल पारिस्थितिकी (Grass land Ecology)

(य) शुल्कस्थल पारिस्थितिकी (Arid land Ecology)

1.3.3 संगठन के स्थर के आधार पर (On the Basis of levels of organisation)

इसका आधार क्षेत्र, इकाई, जीव विशेष अथवा जीवों का समुह है। इस आधार पर इसे निम्न दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है :

(अ) स्वपारिस्थितिकी (Autecology)

इसे व्यक्तिगत जीवो (Individuals) की पारिस्थितिकी माना जाता है। इसमें एक जाति (Species) के जीवो का वातावरण के साथ सम्बन्ध देखा जाता हैं व्यक्तिगत जीव की आवश्यकताओं तथा स्वयं अथवा अन्य जाति के साथ सम्बन्धों तथा पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों को देखा जाता है। इसमें व्यक्तिगत जाति के सभी पक्षों यथा आकांरिकी, वर्गिकी स्थिति (Taxonomic Position) तथा भौगोलिक वितरण आदि का अध्ययन किया जाता है। जैसे (1) जीव की सम्पूर्ण जीवन प्रक्रिया (Life cycle) तथा (2) वे सभी कारक जिनके कारण जीव प्रभावित होता है।

(ब) संपारिस्थितिकी (Synecology)

समस्त जीव जैसे कि जन्तु, पादप व सूक्ष्मजीव प्रकृति में एक दूसरे के साथ रहते है तथा साथ ही समुदायों का निर्माण करते है। ये जीव साथ-साथ रहने के दौरान एक दूसरे के जीवन को अत्यधिक प्रभावित करते है। इस तरह के समुहों अथवा समुदायों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन संपारिस्थितिकी (Synecology) कहलाता है। संपारिस्थितिकी के अध्ययन में समष्टि (Population). समुदाय (Community), बायोम एवं पारितन्त्र (Ecosystem) आदि का अध्ययन किया जाता है।

पारिस्थितिकी की अन्य शाखाएँ (Other Branches of Ecology)

विशेष परिस्थितियों में पारिस्थितिकी कुछ अन्य शाखाएँ भी बन जाती है। जैसे :-

1. भूगोलीय पारिस्थितिकी (Biogeography)

विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में जन्तुओ तथा पादपों का पृथ्वी पर वितरण तथा उनके आपस में पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन। यह पारिस्थितिकी इन भौगोलिक क्षेत्रों में विशेष प्रकार के जीवों के पाये जाने के कारणों की भी विवेचना करती है।

2. उत्पादन पारिस्थितिकी (Production Ecology)

हरे पादप सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण के द्वारा कार्बनिक पदार्थो का उत्पादन प्राथमिक उत्पादन (Primary Production) कहते हैं। परपोषी जीव विशेष क्रियाओं द्वारा इस प्राथमिक उत्पादन के कुछ भाग को जटिल पदार्थो द्वितियक उत्पाद (Secondary Products) में बदल देते है। दोनो उत्पादों का उपभोग विभिन्न प्रकार से अत्यधिक मात्रा में होता है। ये पारिस्थितिक संतुलन में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

3. मृदिका पारिस्थितिकी (Pedoecology)

मृदा विभिन्न जीवों को संरक्षण तथा पोषण प्रदान करती है। विभिन्न सुक्ष्म जीव मृदा में ही अपना जीवन चक्र पूर्ण करते हैं। मृदा पारिस्थितिकी की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। इस विज्ञान में हम भूमि के अन्य गुण जैसे अम्लता, क्षारीयता तथा हयूमस (Humus) आदि का भी अध्ययन करते है।

4. जीवाश्म पारिस्थितिकी (Paleoecology)

वातावरण तथा उद्विकास (Evolution) का आपस में गहरा रिश्ता होता है। बहुत से जीव आज से लाखो वर्ष पूर्व पृथ्वी पर निवास करते थे। परन्तु अब विलुप्त हो चुके है। जीवाश्म पारिस्थितिकी, जीवाश्मों के माध्यम से उस समय का जीवन तथा वातावरण का अध्ययन करवाती है।

1.4 महत्व (Significance)

पारिस्थितिकी वातावरण तथा प्रकृति के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान करवाती है। यह मानव जाति के लिए अति महत्वपूर्ण है। इसका महत्व निम्न बिन्दुओं के अध्ययन से समझा जा सकता है :-

(अ) **पर्यावरण प्रदूषण व उसका निराकरण** : विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ वातावरण में बहुत से हानिकारक पदार्थो का समावेश बढ रहा है। इन हानिकारक पदार्थो अथवा प्रदुषको के प्रभाव से सम्पूर्ण पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ता जा रहा है। पर्यावरण में प्रदूषक गैसों के बढ़न से बर्फीले प्रदेश तेजी से पिघल रहे है तथा समुद्र का जल स्तर बढ़ता जा रहा है। कृषि जगत में हुई वर्तमान क्रान्ति के फलस्वरूप कीटनशकों (Insecticides) एवं खरपतवार नाशकों (Weedicides) का प्रयोग बढता जा रहा है। आज कोई भी जल स्त्रोत शुद्ध नही बचे है। आज युद्ध सामग्री तथा औषधियों की बहुलता के कारण, रेडियोधर्मी पदार्थो का भी अन्धाधुन्ध प्रयोग हो रहा है।

पारिस्थितिकी विभिन्न पर्यावरण प्रदुषकों का ज्ञान कराती है तथा इनके निराकरण हेतु मार्ग का चयन करवाती है।

(ब) **जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव व उसका निराकरण** : जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभावों से अवगत करवाती है। तथा साथ ही इनके निराकरण, संरक्षण के सुझाव भी देती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण आज प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है।

(स) **वन्य जीव संरक्षण में**:- जनसंख्या वृद्धि के साथ वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास सिकुडते जा रहे है। फलस्वरूप पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ता जा रहा है। पारिस्थितिकी हमें इन सभी प्रभावों का आभास कराती है जैसे वन्य जीवों का संरक्षण।

(द) **आर्थिक विकास व जीवन स्तर को बढाने के लिए**:- मानव समाज अपने आर्थिक विकास हेतु पशुओं फसलों, बता-बगीचों औषधियों, जंगलों, रेशम व मखुमक्सी जैसे लाभदायक कीटो आदि पर निर्भर है। पारिस्थितिकी हमें पारिस्थितिकी संतुलन के साथ साथ इनके उपयुक्त दोहन का ज्ञान कराती है तथा जीवन स्तर को बढ़ाने में भी योगदान देती है।

पारिस्थितिकी मानव से जुडा हु आ महत्वपूर्ण विषय है। इसके अध्ययन द्वारा पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक विकास व स्थिर जनसंख्या आदि के बारे में ज्ञान व तकनीक अर्जित किया जाता है।

1.5 आधु निक अवधारणा (Modern Concept)

पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा को समझने हेतु इसके संगठन के स्तरों की अवधारणा (concept of levels of organisation) के रूप को समझना होगा। इस तरह का रूप पारिस्थितिक स्पैक्ट्रम (ecological spectrum) अथवा पदानुक्रमीय व्यवस्था (hierarchial arrangement) में मौजुद रहता है। पदानुक्रम का अर्थ है कई जैविक स्तरों में व्यवस्थित अथवा बंटा होना है। ये जैविक स्तर कोशिका (cell) उत्तक (tissue), अंग (organ), अंग तन्त्र (organ system), जीवधारी (organism), आबादी (population), समुदाय (community), पारिस्थितिक तन्त्र (ecosystem), दृश्यभूमि (landscape), बायोम (biome), तथा जीवमण्डल (biosphene or ecosphere), के रूप में मौजुद रहते है (चित्र 1.1)। उपरोक्त प्रत्येक स्तर की इनके भौतिक वातावरण (पदार्थ तथा ऊर्जा) से अन्तर क्रिया कुछ विशिष्ट क्रियात्मक तन्त्रों (characteristic functional system), का निर्माण करती है। एक संयुक्त सम्पूर्ण तन्त्र, नियमित रूप से अन्तर-क्रियात्मक (regularly interacity), तथा अन्तराश्रित घटकों (interdependent components), से मिलकर बना होता है। इस तन्त्र (system), में जैविक (biotic), तथा अजैविक (abiotic), घटक पाये जाते है जो कि जैवतन्त्र (bio-system), का निर्माण करते है। इन स्तरों में रहने वाले जीव सिर्फ एक स्तर के रूप में अथवा विभिन्न स्तरों के जीव, अध्ययन की विषयवस्तु हो सकते है।

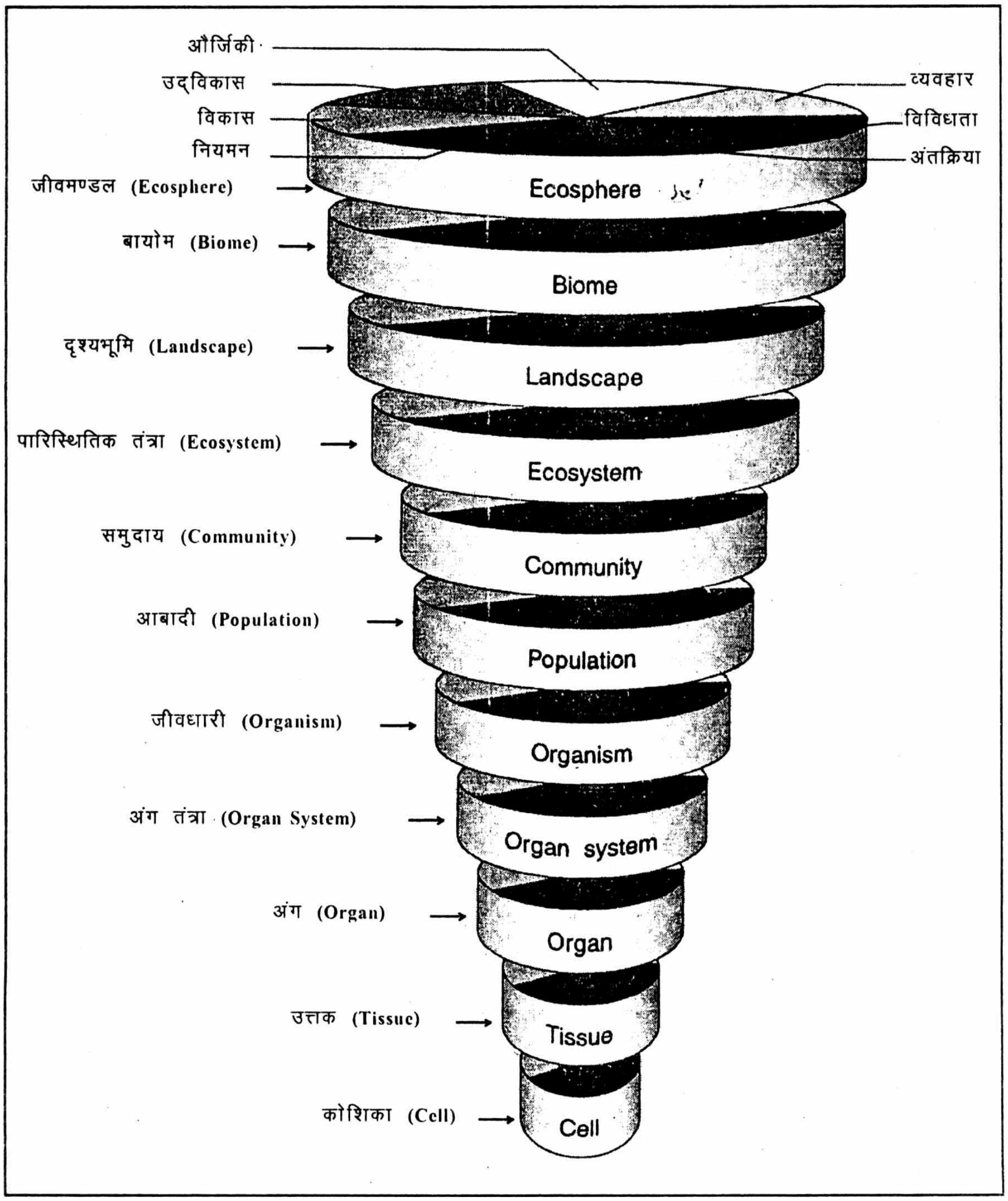

चित्र 1.1 : पदानुक्रमीय व्यवस्था में विभिन्न पारिस्थितिक स्तर

मुख्य स्तर आबादी (Population) जीवों का एक ऐसा समुह है जिसमें एक ही समुह अथवा जाति के सदस्य अथवा एक जैसे जीव पाये जाते है। इस प्रकार किसी क्षेत्र विशेष में रहनी सभी आबदियाँ समुदाय (Community) का निर्माण करती है। उस क्षेत्र का अजैविक वातावरण (non living environment) समुदाय के साथ मिलकर पारिस्थितिक तन्त्र (ecosystem) का निर्माण करता है। दृश्यभूमि (Landscape) टुकडों (clusters) में बंटे तथा आपस में अन्तर क्रियाशील पारिस्थितिक तन्त्रों के विषमांगी क्षेत्र (heterogenous area) से मिलकर बनता है। किसी जल तन्त्र को हम इसका उदाहरण मान सकते है। किसी विशेष वानस्पतिक क्षेत्र अथवा प्रमुख दृश्यभूमि युक्त बडे क्षेत्र विशेष अथवा उपमहाद्वीप क्षेत्र के द्वारा बायोम (biome) का निर्माण होता है उदाहरण के लिए शीतोष्ण

वर्षावन (temperate rain forest) एवं महाद्वीपीय शेल्फ महासागर बायोम (continental shelf ocean biome)। किसी बडे भौगोलिक अथवा राजनितिक क्षेत्र में दो अथवा दो से अधिक बायोम हो सकते है। सर्वाधिक बडे एवं. आत्मनिर्भर जैविक तन्त्र को जीवमण्डल .(biosphere or ecoshere) कहा जाता है। इस जीवमण्डल में पृथ्वी के सम्पूर्ण जीवधारी शामिल किये जाते है, जो कि अपने भौतिक वातावरण के साथ साम्यवस्था में रहते हैं।

आधुनिक पदानुक्रमीय सिद्धान्त (hierarchial theory) एक जटिल तन्त्र को सुविधाजनक व सरल तरीके से उपविभाजित करता है। इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषता यह है कि यह निम्न स्तर (lower-level) से लेकर उच्च स्तर तक का सम्पूर्ण विश्लेषण करता है।

1.6 व्याप्ति या कार्यक्षेत्र (Scope)

पारिस्थितिकी विज्ञान किसी न किसी रूप से विज्ञान की सभी शाखाओं से जुडी हुई है। अन्य जन्तुओं की तरह मानव भी परितन्त्र का एक अभिन्न अंग है। विभिन्न समस्याएं पारितन्त्र से किसी न किसी रूप से जुडी हुई है। उदाहरणार्थ खाधान उत्पादन, दुग्ध उधोग, मछली उधोग व वन्य जीवों का संरक्षण आदि समस्याओं का निदान पारिस्थितिकी के अन्तर्गत संभव है। आज बढ़ते प्रदुषण, कीटनाशकों के प्रभाव व अस्पताल के कचरे प्रबन्धन हेतु पारिरिथतिकी विशेषज्ञों की सेवाए ली जा रही है।

पारिस्थितिकी विज्ञान की सभी शाखाओं से गहरा सम्बन्ध है, अत: पारिस्थितिकी को एक सम्पूर्ण विज्ञान माना जाता है। इसे निम्न आधार बिन्दुओं के अध्ययन से समझा जा सकता है -

1. **वन्य जीवन संरक्षण सम्बन्धी क्षेत्र (Scope in wildlife conservation)**

   वन्यजीव पर्यावरण संरक्षण में अहम भूमिका निभाते है। आज जनसंख्या वृद्धि के कारण विश्व के विभिन्न संरक्षित क्षेत्र सिकुड़ते जा रहे है। इसके कारण पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है। पारिस्थितिकी इन सब का अध्ययन करती है; तथा वन्यजीवो के संरक्षण हेतु अपना प्रमुख योगदान देती है।

2. **वर्गिकीय व्याप्ति (Taxonomic scope)**

   समुदाय का निर्माण विभिन्न प्रकार के जीवों से मिलकर होता है। इन जीवो का वर्गीकरण एवं नामकरण भली प्रकार करके हम विभिन्न समुदायों का विस्तृत अध्ययन कर सकते है।

3. **रासायनिक व्याप्ति (Chemical Socpe)**

   वातावरण के विभिन्न कारक यथा pH, आर्दता एवं अन्य कारक जीवों पर विभिन्न प्रभाव डालते है। प्रकाश, तापमान, अध्ययन भी पारिस्थितिकी का एक प्रमुख आधार है।

4. **आबादी के क्षेत्र में व्याप्ति (Scope in Population)**

   इस क्षेत्र में जीवों की संख्या, घनत्व आदि का अध्ययन कर क्षेत्र विशेष का संख्यात्मक एवं गुणात्मक अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन वह की जैविक विविधता की विस्तृत जानकारी भी देता है।

5. **आनुवंशिक क्षेत्र (Genetic Scope)**

   इस शाखा में जीव के आनुवंशिक गुणो एवं विभिन्नता तथा उनको प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया जाता है। नई जातियों तथा प्रजातियों की उत्पति जीवों का स्वभाव है। आनुवंशिक विभिन्नता तथा इसका प्रभाव पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

6. उद्‌विकासीय व्याप्ति (Evolutionary Scope)

नवीन प्रजातियों की उत्पति प्रकृति का स्वभाव है एवं साथ ही इन प्रजाति का नवीन वातावरण अनुकूलन आवश्यक है। जीवन संघर्ष में वे ही जीव सफल कहलाते है जो अपने को वातावरण में अनुकूलित पाते है। प्राकृतिक चयन (natural selection) द्वारा नई-नई जातियों का निर्माण होता है, ये ही जातिया एक पारिस्थितिक तन्त्र का निर्माण करती है। लम्बे अन्तराल में पृथ्वी पर बहु त सी जातिया विलुप्त हो जाती है। इन सभी दृष्टिकोण से पारिस्थितिकी का अध्ययन भी अति महत्वपूर्ण है।

पारिस्थितिकी के क्षेत्र में अर्थशास्त्र (Economics) सांख्यिकी, मानव विज्ञान (Anshoopolozy), भूगोल (Geography) तथा समाज शास्त्र (Sociology) भी महत्वपूर्ण स्थान रखते है। ये सभी क्षेत्र आपस में प्रगाढ रूप से जुडे हु ए हैं; एवं पारिस्थितिकी के क्षेत्र को कई गुणा बढा देते है।

1.7 बोध प्रश्न

I. बहु विकल्पी प्रश्न (Objective Type Question)

1. इकोलॉजी शब्द का जन्म दाता कौन है?
   (a) एच. रीटर (b) अनेस्ट हैकिल (c) ओडम (d) वार्मिग ( )
2. इकोलॉजी शब्द की सर्वप्रथम पूर्ण व्याख्या करते हु ए परिभाषित किया था-
   (a) ओडम ने (b) अनेस्ट हैकिल ने (c) एच. रीटर ने (c) टेलर ने ( )
3. पर्यावरण दिवस मनाया जाता है-
   (a) 5 मई को (b)1 मई को (c) 5 जून को (d) 1 जून को ( )
4. निम्नलिखित में आवासीय पारिस्थितिकी के उदाहरण है-
   (a) समुद्रीय पारिस्थितिकी (b) घास स्थल पारिस्थितिकी
   (c) बेला स्थल पारिस्थितिकी (d) उपरोक्त सभी ( )

II. अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Type Question)

5. व्यक्तिगत जीवों की पारिस्थितिकी किसे माना जाता है?

   ....

   ....

6. पारिस्थितिकी की परिभाषा दीजिए?

   ....

   ....

7. पारिस्थितिकी की मुख्य शाखाओं के नाम लिखों?

   ....

   ....

8. जीवाश्म पारिस्थितिकी क्या है?

   ....

   ....

9. भूगोलीय पारिस्थितिकी में किसका अध्ययन करते है?

....

....

10. इकोसिस्टम शब्द का प्रतिपादन किसने किया था?

....

....

1.8 सारांश (Summary)

1. पृथ्वी पर रहने वाले जीवों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन तथा जीवों का आपस में एवं उनके परिवेश के साथ अध्ययन को पारिस्थितिकी कहा जाता है।
2. वर्गीकी सम्बन्ध आवासीय पारिस्थितिकी एवं संगठन के स्तर आदि के आधार पर पारिस्थितिकी को कई शाखाओं जैसे की प्राणी पारिस्थितिकी, पादप पारिस्थितिकी, समुद्रीय पारिस्थितिकी, घास स्थल पारिस्थितिकी, स्वपारिस्थितिकी एवं सपारिस्थितिकी आदि में बाटा गया है।
3. पारिस्थितिकी, पर्यावरण व इससे जुडी विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण शाखा है।
4. वर्तमान में पारिस्थितिकी के जटिल स्वरूप का पता चलने के बाद, इसका संगठन स्तर की आवधारणा के साथ अध्ययन किया जाता है। इसमें पारिस्थितिकी को विभिन्न जैविक स्तरों में व्यवस्थित किया गया है तथा पदानुक्रमीय सिद्वान्त द्वारा एक जटिल तन्त्र का सुविधाजनक प्रकार से अध्ययन किया जाता है।

1.9 शब्दावली (Glossary)

1. पारिस्थितिकी या परिस्थिति विज्ञान (ecology) : जीव विज्ञान की वह शाखा, जिसमें जीवधारियों के आपसी संबंध तथा पर्यावरण के साथ उनके भौतिक संबंधो का अध्ययन किया जाता है।

2. परितंत्र अथवा पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) : पौधों तथा प्राणियों का जैव समुदाय और पानी, हवा, मिट्टी आदि के भौतिक पर्यावरणी कारकों के मिलने से बना तंत्रा।

3. स्वपारिस्थितिकी (autecology) : एकल जाति का किसी समुदाय के विशेष निकेत में रहने के दौरान पारिस्थितिक अध्ययन।

4. संपारिस्थितिकी (synecology) : जीवधारियों के ऐसे वर्गो का अध्ययन जो एक इकाई बनाकर रहते है। यही पर व्यक्तिगत जाति के बजाय समुदायों का पारिस्थितिक अध्ययन किया जाता है।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. भाटिया एवं कोहली : पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी, रमेश बुक डिपो, जयपुर- नई दिल्ली।

2. शर्मा, पी.डी. : इकोलोजी एण्ड एन्वायरमेंट, रस्तोगी पब्लीकेशन, मेरठ।

3. **आडम एवं बेस्ट :** फण्डामेंटलस ऑफ इकोलॉजी थामसनस बुक्स / कोली, सींगापुर।

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

I. **बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)**

1. (a) 2. (b)

3. (c) 4. (d)

II. **अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answer Type Questions)**

5. स्वपारिस्थितिकी को 6. देखे ईकाई संरचना 1.2

7. देखे ईकाई संरचना 1.3 8. देखे ईकाई संरचना 1.3

9. देखे ईकाई संरचना 1.3 10. टेन्सले ने।

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. पारिस्थितिकी की परिभाषा देते हुए इसकी एक विज्ञान के रूप में विवेचना कीजिए।
2. पारिस्थितिकी की मुख्य शाखाओं पर प्रकाश डालिए।
3. निम्न पर टिप्पणी (short Note) लिखों-
   - (अ) पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा।
   - (ब) स्वपारिस्थितिकी।
   - (स) संपारिस्थितिकी।
4. पारिस्थितिकी के महत्व एवं कार्यक्षेत्र पर एक लेख लिखो।

इकाई 2
सीमाकारी कारकों की अवधारणाएँ
(Concept of Limiting Factors)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पारिस्थितिकी की आधारभूत अवधारणाएँ

2.3 लीबिग का न्यूनतमता का सिद्धान्त

   2.3.1 स्थिर दशा का सिद्धान्त

   2.3.2 कारक अन्तः क्रिया का सिद्धान्त

2.4 शैल्फोर्ड का सहनशीलता या सहिष्णुता का नियम

2.5 सीमाकारी कारकों की आधुनिक अवधारणा

2.6 सीमाकारी कारकों का महत्व

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई में पारिस्थितिकी की आधारभूत अवधारणा व पारिस्थितिकी में सीमाकारी कारकों की अवधारणा को समझ सकेंगें।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

पारिस्थितिकी जीवों का एक ऐसा जटिल तन्त्र है जो कि अपने अजैविक तन्त्र के साथ अति सूक्ष्म रूप से जुड़े हुए है। ये जीव अपनी जैव क्रियाओं के संचालन हेतु आवश्यक ऊर्जा अपने इर्द गिर्द उपस्थित कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थो से बनाते अथवा प्राप्त करते है। इन पदार्थों में उपस्थित बहुत से तत्व, अवयव पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण कारकों के रूप में कार्य करते है।

2.2 पारिस्थितिकी की आधारभूत अवधारणाएँ (Basic concepts in Ecology)

पारिस्थतिकी एक जटिल तन्त्र है। इसमें रहने वाले जीवधारी, वातावरण से जटिल सम्बन्धों के द्वारा तत्वों का आदान- प्रदान करते है। ये तत्व इन जीवधारियों की वृद्धि के लिए अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सभी जीव अपने चारों ओर के वातावरण से कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थो का आदान प्रदान करते है। ये सभी पदार्थ इन जीवधारियों की दैनिक जैव क्रियाओं के संचालन हेतु आवश्यक ऊर्जा भी प्रदान करते है। साथ ही किसी भी जीव को उस वातावरण में वृद्धि तथा प्रजनन हेतु आवश्यक पोषक पदार्थ की उपलब्धता भी आवश्यक है। वे कारक जो कि पारिस्थितिकी तन्त्र में विभव वृद्धि (potential growth) को कम करने का प्रयास करते है अथवा कम करते है, उन्हें सीमाकारी अथवा सीमांत कारक (limiting factors) कहते है।

लीबिग का न्यूनतम का सिद्धान्त तथा शैल्फोर्ड का सहनशीलता का नियम इन आधारभूत अवधारणाओं को समझने में सहायक है।

2.3 लीबिंग का न्यूनतमता का सिद्धान्त (Liebing's Law of Minimum)

जर्मन रसायनयज्ञ जस्टन फान लीबिग (Justus Von Liebing) ने अपनी पुस्तक "Organic Chemistry and Its application to Agriculture and Physiology" में विभिन्न कारकों का पौधों की वृद्धि पर होने वाले प्रभावों का वर्णन किया। किसी भी जीव, जीवों के समुह अथवा सम्पूर्ण समुदाय का विकास वातावरण में विभिन्न पारिस्थितियों के योग पर निर्भर करता है।

विभिन्न कारकों का पौधों की वृद्धि पर होने वाले प्रभाव के अध्ययन के क्षेत्र में लीबिग को जन्मदाता माना जाता है। उन्होंने प्रमुखतया घरेलू फसलों (domestic crops) पर अध्ययन किया था। उन्होने पाया कि फसलों द्वारा होने वाला उत्पादन, अधिक मात्रा में उपस्थित पोषकों जैसे कि कार्बन डाई आक्साइड एवं पानी पर निर्भर न करकें, कम मात्रा में उपस्थित पोषकों जैसे जस्ता (zinc) आदि पर निर्भर करता है। ये तत्व मृदा में दुर्लभ मात्रा में उपस्थित होते हैं।

उनका कथन 'पादपों की वृद्धि उन पोषकों की मात्रा पर निर्भर करती है जो की न्यूनतम मात्रा में उपलब्ध होते हैं", लीबिग का न्यूनतमता का सिद्धान्त कहलाता है।

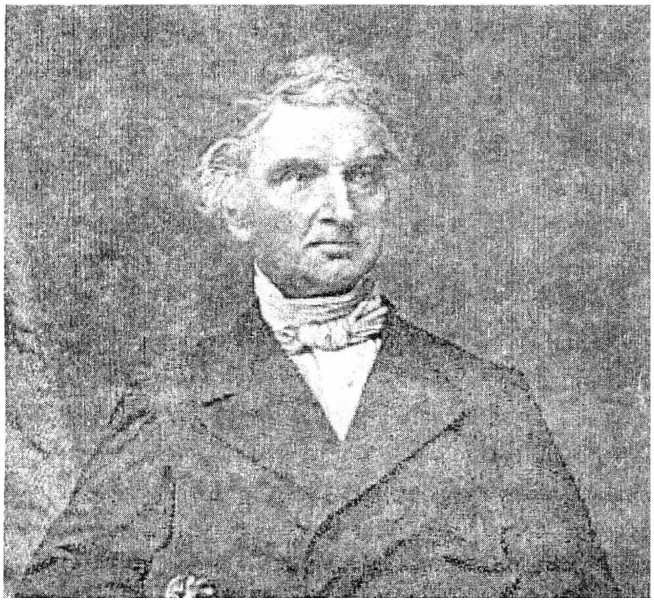

चित्र 2.1 : जस्टस फान लिबिग

लीबिग ने अपने सिद्धान्त को समझाने के लिए इसकी तुलना बैरल (Barrel) जिसे अब लीबिग का बैरल कहा जाता है, से की है। उन्होने बताया कि किसी फसल का उत्पादन असमान छड़ियों से बने बैरल की भराव क्षमता के बराबर है। यहाँ पर बैरल की भराव क्षमता सबसे छोटी छड़ पर निर्भर करती है। बैरल को उतना ही भर सकते है जितनी उसकी सबसे छोटी छड़ की लम्बाई है। यदि इस छड़ की लम्बाई बढ़ा दी जाये तो अन्य छोटी छड़ पर भराव क्षमता निर्भर करेगी। इस प्रकार यदि किसी फसल में सभी पोषक बहुलता में उपलब्ध हो, परन्तु कोई एक पोषक कम मात्रा में उपलब्ध हो तो फसल का उत्पादन इस कम पोषक तत्व की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि इस पोषक को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवा दिया जाये तो फसल का उत्पादन तब तक बढ़ेगा जब तक इस पोषक का सीमाकारी कारक के रूप में प्रभाव खत्म नही हो जाता है।

अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार पोषकों के अलावा अन्य कारक जैसे तापमान तथा समयकाल आदि भी महत्वपूर्ण सीमाकारी कारक हो सकते हैं। परन्तु इस न्यूनतमता के सिद्धान्त को रासायनिक पदार्थ (आक्सीजन, फास्फोरस आदि) जो कि पौधों की वृद्धि तथा जनन के लिए आवश्यक है के प्रभाव तक सीमित रखा गया है।

वातावरण के अन्य कारक भी सीमाकारी कारकों के रूप में कार्य करते है। दूसरे कारकों एवं अधिकतमता के सीमाकारी प्रभाव (limiting effect of the maximum) को सहनशीलता के नियम (law of tolerance) में शामिल किया गया है। उपरोक्त न्यूनतमता एव अधिकतमता के सिद्धान्त, सीमाकारी कारकों के अन्तर्गत एक साथ अध्ययन किये जाते है।

लीबिग के सिद्धान्त व अन्य शोध कार्यो के आधार पर, इससे सम्बन्धित दो प्रमुख सहायक सिद्धान्त (Subsidary Principles) उभर कर आते है :

2.3.1 स्थिर दशा का सिद्धान्त (Principle of steady conditions)

लीबिग का स्थिर दशा का सिद्धान्त उसी दशा में लाग होता है जब वार्षिक ऊर्जा (energy) व पदार्थो (materials) के अन्तर्वाह (inflow) बहिर्वाह (outflow) में अत्यधिक संतुलन हो। उदाहरण : यदि किसी झील में कार्बन-डाइऑक्साइड सीमाकारी कारक के रूप में कार्य कर रही है तो इस झील की उत्पादकता कार्बनिक पदार्थो के क्षय से उत्पन्न कार्बन-डाइऑक्साइड पर निर्भर करती है। इस संभावना में रोशनी, नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि का अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होना तथा उनका वे सीमाकारी कारकों के रूप में कार्य नहीं कर रहे है। किन्तु यदि एक तुफानी हवा के कारण यही अधिक कार्बन डाइऑकनाइड आ जाती है तब यह सीमाकारी कारक के रूप में कार्य नही करेगी। अब झील की उत्पादन दर बदल जायेगी तथा यह अन्य कारक पर भी निर्भर करेगी। इस बदलती हुई उत्पादन दर मे कोई कार्न एक न्यूनतम कारक भी नही है। यह उत्पादन दर तब तक बदलती रहेगी जब तक यहाँ के सभी घटकों का संतुलित उपभोग होता रहेगा। पुन: अवस्था स्थिर (steady) होने पर कोई घटक फिर से सीमाकारी कारक (शायद फिर से कार्बन डाइऑक्साइड) न बन जाये। अब दशा स्थिर होने पर पूरी झील का पारिस्थितिकी तन्त्र फिर से न्यूनतमता के सिद्धान्त पर कार्य करने लगता है।

2.3.2 कारक अन्त: क्रिया का सिद्धान्त (Principle of Factor Interaction)

सीमाकारी कारकों में लीबिग के सिद्धान्त के साथ एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त "कारकों की अन्त: क्रिया का सिद्धान्त (Factor's Interaction)" का अध्ययन भी किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि वातावरण में कोई पोषक बहु लता में उपलब्ध है तथा सीमाकारी पोषक न्यूनतम मात्रा में भी उपलब्ध नही है तो इस सीमाकारी कारक वाले पोषक की उपयोगिता दर बदल जाएगी" है। कई बार जीव कम मात्रा में उपलब्ध तत्व की जगह, उससे रासायनिक रूप से समान व अधिक मात्रा में उपलब्ध, अन्य तत्व को काम में लाते हैं। जैसे : मौलस्का के जन्तु अपने कचव (shell) निर्माण में कम मात्रा में उपलब्ध कैल्शियम (Ca) की जगह अधिक मात्रा में उपलब्ध स्ट्रॉन्शियम (Sr) को काम में लेने लग जाते हैं। इसी प्रकार कुछ पादप यदि सूर्य के प्रकाश की बजाय छाँव में उगाये जाये तो इन्हे कम जस्ता (Zn) की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जिंक की कम मात्रा जहाँ सूर्य के प्रकाश (sun light) में सीमाकारी कारक की तरह कार्य करती है, वहीं इसकी कम मात्रा छाँव (shade) में सीमाकारी कारक का कार्य नहीं करती है।

2.4 शैल्फोर्ड का सहनशीलता या सहिष्णुता का नियम (Shell ford's Law of Tolerance)

रोशनी (light), पानी (water), आदि अधिक मात्रा में होने पर भी सीमाकारी होते है। इस प्रकार किसी भी जीव की वृद्धि के लिए न्यूनतम अथवा अधिकतम पारिस्थितिकीय सहिष्णुता की सीमा (limits of tolerance) होती है। किसी भी पोषक अथवा कारक की न्यूनतमता (minimum) अथवा अधिकतमता (maximum) के रूप में सीमाकारी प्रभाव दिखाने के नियम को शैल्फोर्ड का सहनशीलता या सहिष्णुता का नियम (Shell Ford's Law of Tolerance) कहा जाता है।

विभिन्न पादपों तथा जन्तुओं में विभिन्न कारकों की सीमा का सहिष्णु अथवा सहनशील होना अतिआवश्यक है। शैल्फोर्ड का सहनशीलता या सहिष्णुता के नियम के निम्न उपनियम है :-

(अ) जीवों में किसी एक कारक के लिए सहिष्णुता की सीमा संकीर्ण (narrow) हो सकती है परन्तु किसी अन्य कारक के लिए सहिष्णुता की सीमा वृहत (wide) हो सकती है।

(ब) वे जीव जिनकी सीमाकारी कारकों के प्रति अधिक क्षमता (wide range) होती है, वे अधिक क्षेत्रफल (widely distributed) में फैले होते है।

(स) यदि किसी जाति की किसी एक कारक के कारण परिस्थितियाँ इष्टतम (optimal) नही है तो किसी अन्य कारक के प्रति सहिष्णुता की सीमा कम हो जाती है। उदाहरण : यदि घास के लिए फास्फोरस सीमाकारी कारक का कार्य कर रही है तो इस घास की सुखे के प्रति प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है।

(द) प्रकृति में बहु धा जीव किसी भौतिकी के प्रति अपनी इष्टतम सीमा (optimal range) में नहीं रहते है। इस तरह के मामलो में कुछ अन्य कारक अपना प्रभाव दिखाते है। उदाहरण : कोई घास जो कि लवणीय दलदली क्षेत्र में अधिक मात्रा में पायी जाता है, वास्तविकता में

अलवणीय जल में अधिक पनपता है। परन्तु इसकी पत्तियों द्‌वारा लवण (salt) को बाहर निकालने के गुण के कारण लवणीय दलदली क्षेत्र में अधिक पाया जाता है।

(य) जीवों के जनन काल के दौरान विभिन्न पर्यावरणीय कारक सीमाकारी बन जाते है। विभिन्न जननीय अवस्थाए जैसे कि बीज, अण्डे, भ्रूण एवं लारवा आदि विभिन्न कारको के प्रति संकीर्ण सहिष्णुता की सीमा रखते है जबकि इनके व्यस्क (जो कि जननीय अवस्था में नहीं है) इन्ही कारकों के प्रति सहिष्णुता की सीमा को वृहत रखते है। इसी कारण विभिन्न मछलियाँ या अन्य जीव जो कि लवणीय या अलवणीय जल में रहते है, प्रजनन हेतु भिन्न आवास में अभिगमन (migrate) कर जाते है।

विभिन्न जीव एवं उनकी विभिन्न अवस्थाएँ वातावरणीय कारकों के प्रति कम अथवा अधिक सहिष्णुता शक्ति रखते है। ऐसे जीवधारी जो किसी कारक के प्रति अल्प सहिष्णुता शक्ति रखते है के वर्णन हेतु इससे पहले अल्प (तनु - मित) (steno-meaning “narrow”) शब्द लगा देते है। जैसे कम तापमान में रहने वाले जीवों के लिए तनुतापी (stenothermic), कम लवणत्ता के लिए तनुजलीय (stenohaline) कम आहारी जीवों के लिए तनुभक्षी (stenophagaus) एवं कम आवास क्षेत्र में रहने वालों के लिए अल्पावासी (Stenocious) का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार किसी कारक के प्रति अधिक सहिष्णुता रखने वाले जीवों के लिए उनसे पहले पृथु या विविध (eury-meaning wide) शब्द लगा देते है उदाहरण के लिए पृथुतापी (eurythermal), अधिकजलशील अथवा पृथुजलीय (euryhydric) पृथुलवणी (euryholine) विविधाहारी (enrypagic) एवं अधिवासशील अथवा पृथवासी (euryoecious) आदि-आदि। यह शब्दावली सिर्फ जीव समुदाय (community) तथा पारितन्त्र (ecosystem) के लिए भी प्रयोग में लायी जाती है।

विभिन्न जीवों के वातावरण के कारकों के प्रति सहिष्णुता की सीमा भिन्न भिन्न होती है। तनुलवणी (stenohydric) तथा अधिजलशील अथवा पृथुजलीय (euryhydric) प्रकार के जीवों की सहिष्णुता की सीमा को चित्र 2.1 के द्‌वारा समझा जा सकता है।

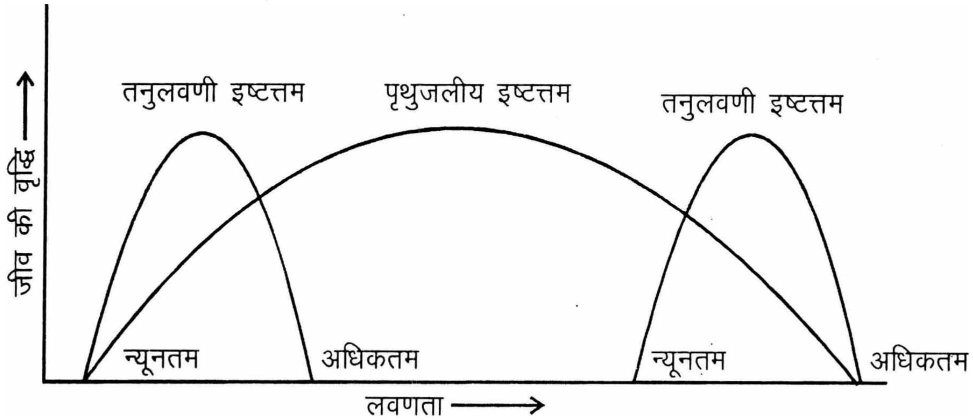

चित्र 2.1 तनुलवणी तथा पृथुजलीय जीवों की वृद्धि का लवणता के साथ सम्बन्ध।

2.5 सीमाकारी कारकों की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Limiting Factors)

किसी भी जीव अथवा इसकी जनसंख्या की सफलता एवं जनन विभिन्न जटिल परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इनको प्रभावित करने वाले कारक़ों से सम्बन्धित न्यूनतमता का नियम तथा सहिष्णुता का नियम में सम्बन्ध स्थापित होने पर, सीमाकारी कारकों की आधुनिक अवधारणा की स्थापना हुई है। प्रकृति मे किसी भी जीव पर निम्न दो परिस्थितियों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है।

(अ) जीव को जिन पदार्थों की सबसे कम आवश्यकता होती है, उनकी मात्रा व परिवर्तनशीलता से वह प्रभावित होता है। इसके साथ ही भौतिक कारक जो कि क्रान्तिक (critical) होते है के द्वारा यह नियन्त्रित रहता है।

(ब) जीव उपरोक्त कारकों तथा वातावरण के अन्य घटकों की परिवर्तनशीलता के साथ सहिष्णुता की सीमा (limits of tolerance) से नियन्त्रित रहता है।

2.6 सीमाकारी कारकों का महत्व (Importance of Limiting Factors)

सीमाकारी कारकों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि ये जटिल परिस्थियों का अन्दर तक अध्ययन करने में पारिस्थितिकीविज्ञों की सहायता करते है। किसी भी जीव के लिए दी हुई परिस्थितियों में सभी कारक समान महत्व के नहीं हो सकते है। कुछ कमजोर कारकों का पता लगाकर हम क्रान्तिक (critical) अथवा सीमाकारी (limiting) अवस्था का पता लगा सकते है। इस तरह के अध्ययन से पारिस्थितिक तन्त्र को फिर से संतुलित अवस्था में लाने का प्रयास किया जा सकता है।

वातावरण में कोई कारक उपयुक्ता मात्रा में उपलब्ध हो तथा इसकी किसी जीव के लिए सहिष्णुता की सीमा वृहत (wide) हो तो यह कभी भी सीमाकारी कारक नही होगा। दुसरी तरफ यदि कोई कारक वातावरण में अलग अलग मात्रा में उपलब्ध है तथा इसके लिए सहिष्णुता की सीमा काफी सीमित है तो यह किसी भी स्थिति में सीमाकारी हो सकता है। उदाहरण:- स्थलीय जीवों के लिए ऑक्सीजन सीमाकारी कारक नहीं हो सकता है परन्तु मछलियों जैसे जलीय जीवों के लिए कभी भी सीमाकारी हो सकता है। किसी जीव के जीवन काल के दौरान भिन्न भिन्न समय में अलग-अलग सीमाकारी कारक हो सकते है।

जोन्स (1994) ने बताया है कि पौधों में प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रतिरोधकता से कही अधिक कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा का सीमाकारी प्रभाव ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार मानव जोकि एक पृथुतापी (wide) जीव है के लिए 20०-25० से0 का तापमान इष्टतम (optimum) होता है। 20˚ से0 से नीचे 5˚ से. तक तथा 25˚ से. से ऊपर 40˚ से0 तक का तापमान, जिसमें मानव जीवित तो रहता है परन्तु इसे काफी कठीनाइयो का सामना करना पड़ता है। इसे कार्मिकी दबाव क्षेत्र (Zone of Physiological Stress) कहा जाता है। यहाँ पर न्यूनतम तापमान 5० से. से कम तथा उच्चत्तम तापमान 48० से. जहाँ सहिष्णुता की सीमा खत्म हो जाती है, को क्रमश: न्यूनतम तथा उच्चतम क्रान्तिक बिन्दु (minimum and maximum critical point) कहा जाता है। इन बिन्दुओं से परे का क्षेत्र, जहाँ जीवन मुश्किल है, घातक क्षेत्र कहलाता है। अलग अलग जीवों के लिए न्यूनतम तथा उच्चतम क्रान्तिक

बिन्दु तथा घातक क्षेत्र अलग अलग होते है। इसी प्रकार अलग अलग जीवों के लिए अनुकूल (optimum) तापमान अलग अलग होता है।

वातावरणीय समस्याओं को सुलझाने तथा पर्यावरण संतुलन हेतु सीमाकारी कारकों का ज्ञान आवश्यक है।

2.7 बोध प्रश्न

I. बहु विकल्पयी प्रश्न :

1. न्यूनतमता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था

(a) डार्विन ने (b) मेण्डल ने
(c) लीबिग ने (d) शैल्फोर्ड ने ( )

2. लीबिग ने अपना न्यूनतमता सिद्धान्त समझाने हेतु इसकी तुलना की है-

(a) पंखे से (b) बैरल से
(c) फ्लास्क से (d) ईंजन से ( )

3. सहनशीलता अथवा सहिष्णुता का नियम प्रतिपादित किया है-

(a) लीबिग ने (b) शैल्फोर्ड ने
(c) ऑडम ने (d) टैन्सले ने ( )

4. कम तापमान में रहने वाले जीवों को कहते है-

(a) तनुमापी (b) तनुजलीय
(c) तनुभक्षी (d) पृथुतापी ( )

II. लघूत्तरातमक प्रश्न (Short Answer Type Questions)

5. स्थिरदशा का सिद्धान्त (principle of steady conditions) प्रमुखतः किस सिद्धान्त का सहायक सिद्धान्त है?

....

....

6. सीमाकारी कारकों की परिभाषा लिखो?

....

....

7. पृथुलवणी जन्तु किसे कहते है?

....

....

8. तनुजलीय (stenohydric जीव किसे कहते है?

....

....

9. जीवों का कार्मिकी दबाव क्षेत्र (zone of physiological stress) क्या है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

10. जीवों का उच्चतम क्रान्तिक बिन्दु किसे कहा जाता है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

2.8 सारांश (Summary)

वातावरण में जीवों की वृद्धि हेतु आवश्यक परन्तु सबसे कम मात्रा में उपलब्ध पोषक या कारक जो कि पारिस्थितिकी में विभव वृद्धि को कम करने का प्रयास करते है अथवा करते है, सीमाकारी अथवा सीमांत कारक कहलाते है। लीबिग का न्यूनतमता का सिद्धान्त तथा शैल्फोर्ड का सहनशीलता या सहिष्णुता का नियम सीमाकारी कारकों से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण नियम है।

"पादपों की वृद्धि उन पोषकों की मात्रा पर निर्भर करती है जो कि न्यूनतम मात्रा में उपलब्ध होते हैं", लीबिग का न्यूनतमता का सिद्धान्त कहलाता है। लीबिग का स्थिर दशा का सिद्धान्त उसी दशा में लागू होता है जब वार्षिक ऊर्जा (energy) व पदार्थो (materials) के अन्तर्वाह (inflow) बहिर्वाह (outflow) में अत्यधिक संतुलन हो। "कारकों की अन्त: क्रिया का सिद्धान्त के अनुसार यदि वातावरण में कोई पोषक बहुलता में उपलब्ध है तथा सीमाकारी पोषक न्यूनतम मात्रा में भी उपलब्ध नही है तो इस सीमाकारी कारक वाले पोषक की उपयोगिता दर बदल जाएगी" है। शैल्फोर्ड का सहनशीलता या सहिष्णुता का नियम हम निम्नलिखित उपनियमों के तहत समझ सकते हैं:-

जीवों में किसी एक कारक के लिए सहिष्णुता की सीमा संकीर्ण (narrow) हो सकती है परन्तु किसी अन्य कारक के लिए सहिष्णुता की सीमा वृहत (wide) हो सकती है।

विभिन्न वातावरणीय समस्याओ या पारिस्थितिकी के संतुलन के सन्दर्भ में सीमाकारी कारकों का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

2.9 शब्दावली (Glossary)

1. **सीमाकारी कारक (Limiting factor) :** किसी जीव की सक्रियता और जनन शक्ति को सीमाबद्ध करने वाले एक या अपने कारक।
2. **सहिष्णुता (Tolerance) :** सहयता सीमा।
3. **तनुतापी (Stenothermic) :** कम तापमान को सहन करने वाले जीव।
4. **पृथुतापी जीव (Eurythermic organism) :** अधिक तापमान को सहन करने वाले जीव।

2.10 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. **भाटिया एवं कोहली :** पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी, रमेश बुक डिपो, जयपुर- नई दिल्ली।
2. **शर्मा, पी. डी. :** इकोलोजी एण्ड एन्वायरमेंट, रस्तोगी पब्लीकेशन, मेरठ।

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

I. बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)

	1. (c)	2. (b)
	3. (b)	4. (a)
II.	**लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions)**	
	5. लीबिग का न्यूनतमता का सिद्धान्त	6. देखे ईकाई संरचना 2.2
	7. देखे ईकाई संरचना 2.4	8. देखे ईकाई संरचना 2.4
	9. देखे ईकाई संरचना 2.6	10. देखे ईकाई संरचना 2.6

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. सीमाकारी कारकों को समझाते हुए लीबिग का न्युनतमता का सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
2. शैल्फोर्ड का सहनशीलता अथवा सहिष्णुता के नियम पर एक लेख लिखिए।
3. सीमाकारी कारकों की आधुनिक अवधारणा तथा महत्व को समझाइये।

इकाई 3

पारितन्त्र : अजैविक व जैविक कारक

(Ecosystem : Abiotic and Biotic Factors)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पारितन्त्र

3.3 पारितन्त्र में मूलभूत घटक

3.3.1 जैविक घटक

3.3.2 अजैविक घटक

3.4 अजैविक घटक

3.4.1 भौतिक कारक

3.4.2 रासायनिक कारक

3.5 जैविक घटक

3.5.1 अन्तः जातीय संबंध

3.5.2 अन्तर जातीय संबंध

3.6 बोध प्रश्न

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य (Objective)

– पारितन्त्र क्या है?

– पारितन्त्र के घटक कौन-कौन से हैं?

– विभिन्न कारकों का पारिस्थितिकी पर क्या प्रभाव होता है?

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रमुख रूप से दो घटक है - (1) अजैवीय घटक अर्थात् अजीवित पदार्थ (2) जैवीय घटक यानि जीवित घटक है। अजीवित पदार्थों को बायोटोन (Biotone) तथा जीवित घटकों के लिये बायोसीनोस (Biocenos) शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। बायोटोन + बायोसीनोस मिलकर पारिस्थितिक तंत्र बनाते हैं।

ओडम (1963)के अनुसार सामुदायिक आवास के जीवित और भौतिक वातावरण पारितन्त्र जटिल या पारितन्त्र का निर्माण करते हैं। अत: पारितन्त्र पारिस्थितिकी की वह आधारभूत इकाई (fundamental unit) है, जिसमें जैविक और अजैविक वातावरण एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्परिक अनुक्रिया (mutual inter-action) से ऊर्जा और रासायनिक पदार्थो के निरन्तर प्रवाह से तन्त्र की कार्यात्मक गतिशीलता (functional or Working dynamism) बनाये रखते हैं।

3.2 पारितन्त्र

प्रत्येक जैव-समुदाय के सदस्य निरन्तर एक-दूसरे से अनुक्रिया (interaction) करते हैं। इसके माध्यम से आवश्यक ऊर्जा एक पोषण स्तर से दूसरे और दूसरे से तीसरे स्तर तक स्थानान्तरित होकर समुदाय के सभी सदस्यों की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति करती है। परन्तु अनुक्रियाओं की श्रृंखला मात्र जीवित सदस्यों तक सीमित नहीं रहती है। वास्तव में ऊर्जा और आवश्यक खनिज पदार्थो का निरन्तर प्रवाह ही सामुदायिक जीवन चक्र को गतिशील रखता है। इसकी निरन्तरता जैव-सदस्यों को पारस्परिक अनुक्रियाओं के साथ-साथ अजीवित पर्यावरण से क्रियाशील आदान-प्रदान के लिये भी आवश्यक है। स्वपोषी, पर्णहरित वनस्पतियाँ, अजैविक वातावरण के विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक कारकों, जैसे - सौर ऊर्जा, कार्बन, हाईड्रोजन, ऑक्सीजन, नाईट्रोजन एवं फॉस्फोरस (C, H, O, N & P) तथा खनिज पदार्थो का संश्लेषण करके कार्बोहाइड्रेट (carbohydrate), प्रोटीन (protein) तथा वसा (fat) आदि कार्बनिक पदार्थो का उत्पादन करती है। यही पदार्थ भोजन के द्वारा विभिन्न उपभोक्ताओं के शरीर में ऊर्जा एवं खनिज पदार्थो के रूप में प्रवाहित होते हैं। अत: उत्पादक एवं उपभोक्ता की जीवन लीला समाप्त होने पर सूक्ष्मजीवी बैक्टीरिया एवं कवक इनका विघटन करके विभिन्न खनिज पदार्थो को भूमि के मूल सुरक्षित भण्डार में और ऊर्जा तथा रासायनिक तत्वों को वातावरण में वापस मिला देते हैं। इस प्रकार ऊर्जा और खनिज पदार्थो का चक्र पूरा होता है।

इस चक्र की निरन्तर गति से खनिज और ऊर्जा का प्रवाह सामुदायिक जीवन (community life) को सन्तुलित बनाये रखता है। "किसी भी समुदाय के जैविक सदस्यों और उनके अजैविक वातावरण में, ऊर्जा प्रवाह और खनिज पदार्थ चक्र को पूरा करने के लिये निरन्तर रचनात्मक और कार्यात्मक पारस्परिक अनुक्रियाएँ होती रहती हैं, इन्हीं अनुक्रियाओं के सम्पूर्ण तन्त्र को पारितन्त्र कहते हैं।"

3.3 पारितन्त्र के मूलभूत घटक (Components of Ecosystem)

(अ) जैविक घटक (Biotic Components) : समस्त वनस्पति एवं प्राणी, तन्त्र के जैविक घटक कहलाते है।

इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया है -

(क) उत्पादक (Producers or Autotrophic Components)

(ख) उपभोक्ता (Consumers)

(ग) विघटक (Decomposers)

(ब) अजैविक घटक (Abiotic Components) : समस्त भौतिक और रासायनिक कारक, तन्त्र के अजैविक घटक कहलाते हैं। इन्हें भी तीन श्रेणियों में दर्शाया जा सकता है -

(क) अकार्बनिक पदार्थ (inorganic substances)

(ख) कार्बनिक पदार्थ (organic substances)

(ग) भौतिक वातावरण (physical climate or climatic regime)

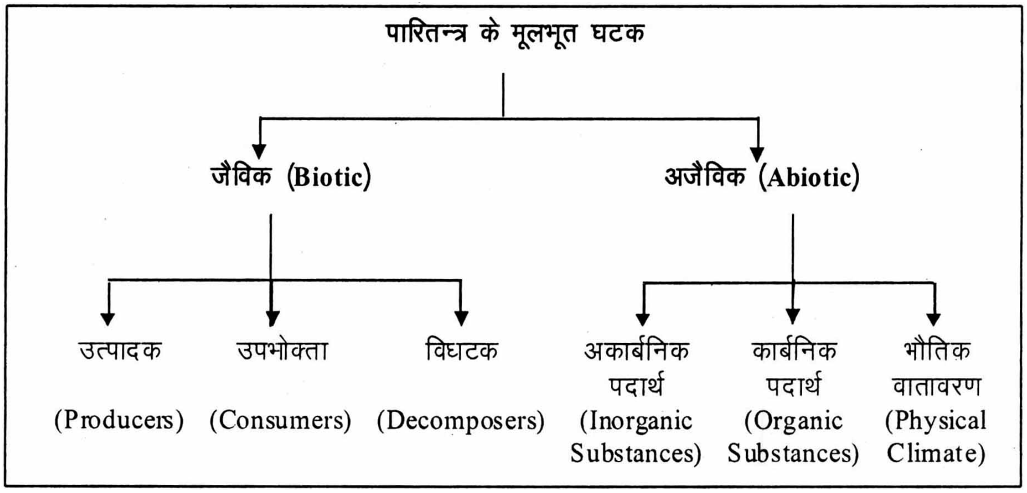

3.3.1 पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटक (Biotic components of ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों में तंत्र के समस्त जीवित घटक (जीव) आते हैं। जातियाँ समूहों में रहती हैं जिसे समष्टि (population) कहते हैं। एक ही जाति के समूह को उस जाति की समष्टि कहते हैं, जैसे आमों के बाग, हिरणों का झुण्ड इत्यादि। विभिन्न प्रकार की जातियों की अलग-अलग समष्टियाँ मिलकर समुदाय (community) बनाते हैं। इस प्रकार एक समुदाय में विभिन्न जातियां होती है। समष्टि में एक ही जाति होती है। तंत्र में यह समष्टियाँ पारस्परिक रूप से संबंधित होती हैं व प्रक्रियाएँ करती हैं तथा अन्तःक्रियाएँ करके पारस्परिक रूप से एक दूसरे पर किसी न किसी प्रकार निर्भर रहती हैं। सभी जातियाँ एक दूसरे के काम आती हैं तथा ये एक समाज के रूप में तंत्र में जीवनयापन करती हैं। जातियाँ व उनकी समष्टियाँ एक दूसरे से कार्यात्मक रूप से जुडी रहती हैं, अत: तंत्र से किसी भी एक प्रकार के जीवों के निकाल देने पर दूसरे प्रकार के जीवों की समष्टि को खतरा. पैदा हो जाता है। इससे तंत्र का सन्तुलन (balance) बिगड जाता है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में भोजन स्तर पर निम्न तीन प्रकार के जीव उपस्थित होते हैं -

(क) उत्पादक या स्वपोशी जीव (Producers)

ऐसे जीव स्वपोषित (autotrophic) जीव होते है। ये अपना भोजन स्वयं निर्मित करते हैं। सभी प्रकार के हरे पादप उत्पादक जीव हैं। हरे पादपों में क्लोरोफिल नामक पदार्थ उनकी कोशिका के लवकों (plastids) में उपस्थित रहता है। यह क्लोरोफिल, प्रकाश को अवशोषित करके कार्बन-डाइऑक्साइड व जल की मदद से अपना भोजन, ग्लूकोस अणु (शर्करा) के रूप में निर्मित करके संचित करते जाते हैं। इसी को पादप श्वसन के दौरान पाचन से ऊर्जा प्राप्त होती है। पादप पुन: ऑक्सीजन बाहर निकालते हैं।

उत्पादक जीवों के उदाहरण - हरी शैवाल, हरे जीवाणु, ब्रायोफायटा, टेरिडोफायटा, जिम्नोस्पर्म व एंजियोरयर्म पादप। इनमें सभी प्रकार की पानी की काई (शैवाल), शाकीय पादप, बेल, काष्ठीय वृक्ष, झाडियाँ उत्पादक पादप हैं।

(ख) उपभोक्ता जीव (consumer organism)

इन्हें परपोषित जीव (heterotrophic organism) भी कहते हैं। यह जीव अपना भोजन स्वयं निर्मित नहीं कर सकते। यह भोजन दूसरे जीवों से प्राप्त करते हैं इसलिये इन्हें परजीवी कहते हैं। सभी प्रकार के जन्तु परपोषी होते हैं। इनके अन्तर्गत कीडे मकोडे, जन्तु प्लवक, चिडिया, मछलियाँ, चूहे, शेर, चीते इत्यादि सम्मिलित हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र में पाए जाने वाले जीव वृहद्-उपभोक्ता (macro-consumers) अथवा सूक्ष्म उपभोक्ता (micro consumers) हो सकते हैं।

(1) वृहद्-उपभोक्ता (macro-consumers) / (Phagotrophs)

वृहद् उपभोक्ता (macro-consumers), वह जीव है जो अन्य जीवों अथवा उनके विभिन्न अंगों का भक्षण करके उनके कार्बनिक पदार्थो को सरल पदार्थो में परिवर्तित करके मुक्त ऊर्जा का उपयोग करते हैं। उपभोक्ताओं की निम्न श्रेणी होती है -

(i) प्राथमिक उपभोक्ता (primary consumers)

(ii) द्‌वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumers)

(iii) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumers)

(iv) परजीवी (Parasites), संमार्जक (scavengers) तथा मृतजीवी (saprobes)

(i) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumers) : ये पूर्णत: शाकाहारी जन्तु (herbivores) होते हैं। ये अपना भोजन उत्पादक' हरे पौधों के रूप में ग्रहण करते हैं। प्राय: छोटे अथवा बडे स्थलीय (terrestrial) अथवा जलीय (aquatic) तन्त्रों में पाये जाते हैं। कुछ मछलियाँ व जलीय जन्तु, कीडे, रोडेन्टरन, खरगोश, हिरण, गाय, भैंस तथा बकरी इत्यादि कुछ सामान्य प्राथमिक उपभोक्ता हैं। शाकाहारी जन्तु, मांसाहारियों (carnivores) के लिये भोजन का मुख्य स्त्रोत हैं।

(ii) द्‌वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumers) : ये जन्तु मांसाहारी (carnivores) अथवा सर्वाहारी (omnivores) होते हैं। मांसाहार अथवा शाकाहार दोनों के लिये अनुकूलित होते हैं। जैसे - चिडिया, कौवे, लोमडी, कुत्ता, बिल्ली तथा साँप।

(iii) तृतीय उपभोक्ता (Tertiary consumers) : ये सर्वोच्च श्रेणी के मांसाहारी जन्तु हैं। ये प्रथम तथा द्‌वितीय श्रेणी के शाकाहारी, मांसाहारी तथा सर्वाहारी जन्तुओं का शिकार करते हैं। उदाहरण - बाज, गिद्ध, चीता व शेर।

इनके अतिरिक्त उपभोक्ताओं का एक वर्ग ऐसा भी है जो परजीवी (parasite), संमार्जक (scavengers) अथवा मृतजीवी (saprophyte) की तरह रहता है।

(iv) परजीवी (Parasite) : ये जीवाणुओं से लेकर विभिन्न श्रेणियों के जीवों से संबंधित है। परजीवी मुख्यत: परपोषी होते हैं। परजीवी पौधे तथा जन्तु अपना भोजन अन्य जीवों के ऊतकों से सीधे प्राप्त करते हैं। ये पोषकों के ऊतकों में पहुँच कर अपना भोजन ग्रहण करते हैं इस कारण ये जीवों में विभिन्न रोग भी उत्पन्न करते हैं।

(2) सूक्ष्म उपभोक्ता (micro-consumers) या अपघटक (decomposers)

अपघटक (decomposers) तथा रूपान्तरक (transformers) पारिस्थितिक तन्त्र के सजीव घटक (living components) हैं। जैसे जीवाणु (bacteria), एक्टिनोमाइसिटीज कवक (fungi) आते हैं। अपघटक (decomposers) अपना पोषण उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं की मृत देह से प्राप्त करते हैं। ये इनके मृत शरीर के जटिल कार्बनिक पदार्थों को सरल यौगिकों (simple compounds) में अपघटित (degrade) कर देते हैं। अन्य प्रकार के जीवाणु इन सरल कार्बनिक पदार्थों का रूपान्तरण सरल अकार्बनिक पदार्थो में कर देते हैं। इस प्रक्रिया को खनिज भवन (mineralization) कहते हैं। इस प्रकार खनिज पुन: मृदा में आ जाते हैं जिन्हें रूपान्तरक कहते हैं। प्रकृति में यदि विघटक न हो तो मृत जीवों के अम्बार लग जायेंगे और वातावरण में आवश्यक खनिज वापस न पहुँचने से जीवन चक्र रूक जाएगा। अत: अपघटक (decomposers) तथा रूपान्तरक (transformers) पारिस्थितिक तन्त्र की गतिकी (dynamics) बनाये रखने में अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।

(ग) संमार्जक तथा अपरदन (Scavengers and Detrivores) -

संमार्जक (scavengers) जैसे केंचुए, दीमक इत्यादि का भोजन पेड पौधों तथा जन्तुओं के क्षत-विक्षत, खण्डित अंग तथा कार्बनिक पदार्थ होते हैं। जीवों की जटिल मृत देह को छोटे खण्डों तथा सरल कार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित करने के लिये समार्जक तथा अपरदकों की उपस्थिति अनिवार्य है। इरा वर्ग में मुख्यतः अपघटक आते हैं।

3.3.2 पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक घटक (Abiotic factors of ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों में अजीवित पदार्थ सम्मिलित रहते हैं। सम्पूर्ण भौतिक वातावरण जैसे जल, पानी, हवा, अकार्बनिक पदार्थ जैसे कार्बन -डाई -ऑक्साइड (CO_2), ऑक्सीजन (O_2) जल (H_2O), फास्फोरस (P), सल्फर (S), सोडियम (Na), पोटेशियम (K), कैल्सियम (Ca), मैग्नीशियम (Mg), मैंग्नीज (Mn), कोबाल्ट (Co), कॉपर (Cu), आयरन (Fe) इत्यादि; अन्य भौतिक घटकों के अन्तर्गत जलवायवीय घटकों में ताप (temperature), प्रकाश (light), दाब (pressure), नमी (humidity) इत्यादि अजीवित कारक हैं।

(अ) अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic substances)

इसके अन्तर्गत जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक C, H, O, & P आदि तत्व आते हैं जो कि वातावरण में विद्यमान रहते हैं और प्राकृतिक चक्रों के माध्यम से जैविक क्रियाओं में भाग लेकर अनेकों आवश्यक कार्बनिक पदार्थो का निर्माण करने में सहायक होते हैं। अकार्बनिक पदार्थ वातावरण में सदैव गतिशील स्थिति में बने रहते हैं। अजैविक तथा जैविक घटकों के बीच निरन्तर वस्तु चक्र के संचालन से इनका आदान-प्रदान होता रहता है।

(ब) कार्बनिक पदार्थ (Organic substances)

इसके अन्तर्गत कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन्स, लीपिड्स एवं हूमस (जो वातावरण में अकार्बनिक पदार्थो की भांति मुक्त रूप में मिल सकते हैं), एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट (A.T.P) जो केवल जीवित कोशिकाओं में पाये जाते हैं) तथा पर्णहरित (chlorophyll) एवं न्यूक्लिक अम्ल (जो

जीवित कोशिकाओं के अन्दर और बाहर दोनों दोनों रूप में उपलब्ध होते हैं) वास्तव में ये पदार्थ अजैविक वस्तुओं को जोडने वाली कडी का काम करते हैं।

(स) भौतिक वातावरण (Physical climate)

वे सभी भौतिक कारक जो किसी न किसी रूप में जैविक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं, भौतिक वातावरण का निर्माण करते हैं जैसे, तापमान, आर्द्रता, प्रकाश, ऊर्जा।

वातावरण अनेकों जैविक और अजैविक कारकों का एक जटिल समूह है। अत: पर्यावरणीय कारकों (environmental factors) को दो मुख्य समूहों में विभक्त किया गया है -

(i) अजैविक कारक (ii) जैविक कारक

3.4 अजैविक कारक (Abiotic factors)

इनको दो मुख्य उप-समूहों में विभाजित किया गया है :-

(1) भौतिक कारक (2) रासायनिक कारक

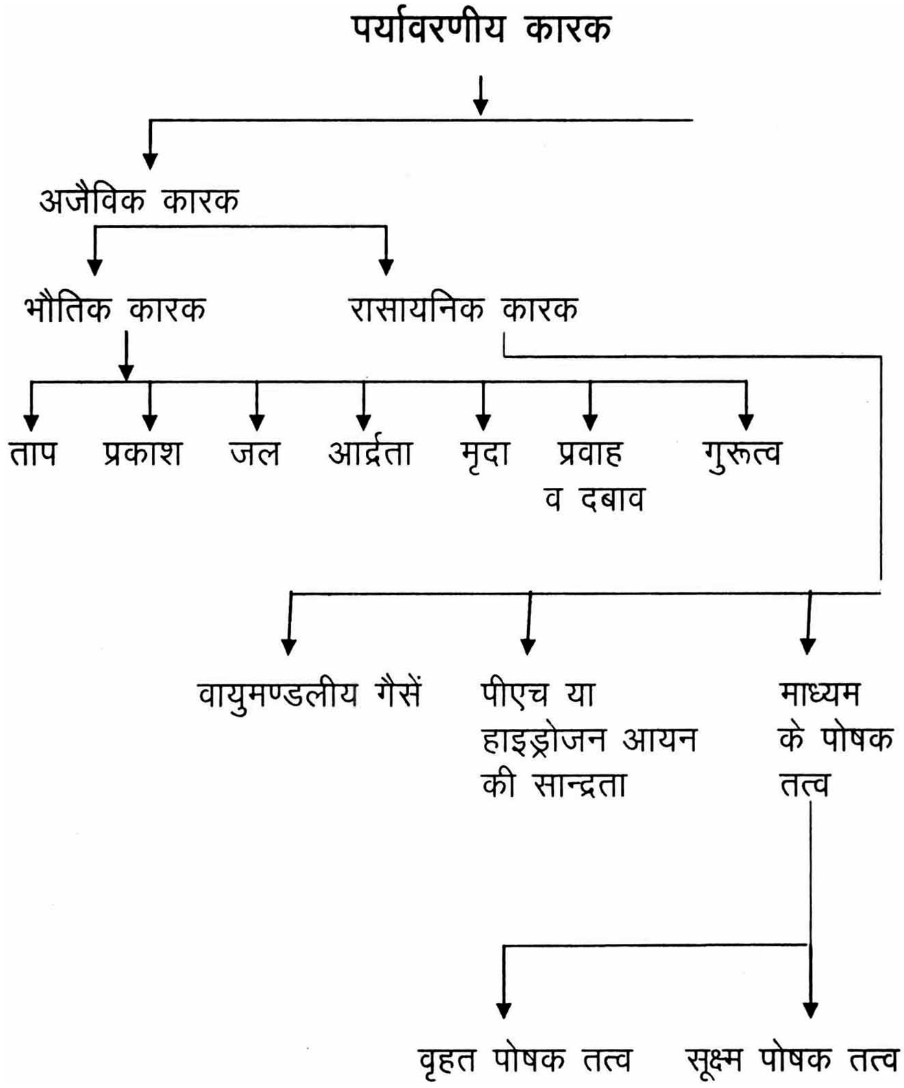

3.4.1 भौतिक कारक (Physical factors)

ताप, प्रकाश, जल, आर्द्रता, मृदा, प्रवाह, दबाव एवं गुरूत्व आदि मुख्य भौतिक कारक है जो जीवधारियों को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते है और वृद्धि, विकास, रचारथ्य, विकिरण आदि क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

(1) ताप (Temperature)

तापमान एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय अजैविक कारक है। पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीव तापीय वातावरण में रहते है ये ऊष्मा और तापक्रम के रूप में निरूपित होता है। यह कारक बायोस्फीयर के प्रत्येक कोनों में पहुंच जाता है तथा प्राणियों की उपापचयी व जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है। पौधों तथा प्राणियों की वृद्धि व वितरण इनरने प्रभावित होती है। ये एक सीमाकारी कारक (limiting factor) के कार्य भी करता है। प्राणियों में प्रजनन, भ्रूणीय परिच्र्छन, प्रवासन तथा असंख्य व्यवहारिक क्रियाएं इनरने प्रभावित होती है। तापमान की अन्य अजैविक कारकों (जैसे आर्द्रता, वायु आदि) के साथ होने वाली अंतःक्रिया के कारण, प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते है।

ताप सहनशीलता की परास (Range of temperature tolerance)

प्रत्येक सजीव में तापीय सहनशीलता की एक परास होती है। वे प्राणी जो तापक्रम की वृहद परास को सहन कर सकते है, ऐसे प्राणी पृथुतापी (eurythermal) कहलाते है। जैसे-साइक्लोप्स, स्पर्म व्हैल, मनुष्य आदि। दूसरी तरफ वे प्राणी जो तापक्रम की कम परास को सहन कर सकते है, ऐसे प्राणी तनुतापी (stenothermal) कहलाते है। जैसे कोरल, टर्माइट, मछलियां तथा सरिसृप।

सभी सजीवों में सभी उपापचयी क्रियाएं एक निश्चित न्यून तापक्रम पर प्रारम्भ हो जाती है। तापक्रम के बढ़ने के साथ-साथ उपापचयी क्रिया की दर भी बढ जाती है लेकिन और अधिक तापमान के बढ़ने के साथ-साथ उपापचयी क्रियाएं धीरे-धीरे मंद होना प्रारम्भ हो जाती है। अत: किसी भी प्राणी के लिए अनुकूलतम तापमान (optiumum temperature) वह होता है जिस पर उपापचयी क्रियाएं सुचारू रूप से चलती रहे। इस प्रकार किसी भी कारक के तीन कार्डिनल बिन्दु होते है-

(1) न्यूनतम तापमान (minimum temperature) : वह न्यूनतम तापमान जिस पर एक सजीव सक्रिय अवस्था में लम्बे समय तक बना रहता है, न्यूनतम प्रभावी तापक्रम (minimum effectice temperature) कहलाता है। तापमान के और कम होने पर प्राणी अक्रिय अवस्था में चला जाता है जिसे चिल कोमा (chil coma) कहते है। तापमान के बढ़ने पर प्राणी पुन: सक्रिय हो जाता है। अत: वह न्यूनतम तापमान जिस पर एक प्राणी निर्वाह (survive) कर सकता है न्यूनतम निर्वाहक तापमान (minimum survival temperature) कहलाता है। इस तापमान का वास्तविक मान उद्भासन काल पर निर्भर करता है।

(2) अनुकूलतम तापमान (optimum temperature) : वह तापमान जिस पर प्राणी की जैविक क्रियाएं सुचारू रूप से चलती रहती है, अनुकूलतम तापमान कहलाता है। सामान्यतया इसकी परास 20 से 35 C तक होती है।

(3) **अधिकतम तापमान (maximum temperature) :** वह अधिकतम तापमान जिस पर एक प्राणी सक्रिय रूप से जीवन यापन कर सकता है, अधिकतम प्रभावी तापमान (maximum effective temperature) कहलाता है और अधिक तापमान में वृद्धि होने के कारण प्राणी ऊष्मीय श्राती (heat comma) में चला जाता है। सामान्यतया तापक्रम परास 10-48 C तक होती है जिसमें प्राणी की क्रियाशीलता बनी रहती है। कुछ प्राणियों में जैविक क्रियाएं 0 तथा अत्यधिक 88 C तक भी होती रहती है। निम्न ताप पर प्राणी की मृत्यु जीवद्रव्य के क्रिस्टलीकरण के कारण होती है जबकि अधिक ताप पर मृत्यु, एंजाइमों के विकृत हो जाने के कारण हो जाती है।

ताप सहनशीलता के आधत पर प्राणियों का वर्गीकरण (Classification of animal according to temperature tolerance)

प्राणियों में पादपों तथा कवकों से भिन्न ऊर्जा के प्रति होने वाली अनुक्रियाए अधिक जटिल होती है। इन प्राणियों में ऊष्मा की कुछ मात्रा उपापचयी क्रियाओं के द्वारा निर्मित होती है। अनुकूल वातावरण की तलाश में इनमें गमन भी होता है। ताप नियंत्रण की दृष्टि से प्राणियों को तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया है -

(1) शीतरूधिरधारी प्राणी (Poikilothermic Animal)

(2) गर्मरूधिरधारी प्राणी (Homeothermic Animal)

(3) विषमतापीय प्राणी (Heterothermic Animal)

प्राणियों पर तापमान का प्रभाव (Effect of temperature on animals) : तापक्रम के कारण प्राणियों पर पड़ने वाले मुख्य प्रभाव निम्नांकित है -

1. **कोशिका पर प्रभाव (Effect on cell) :** अत्यधिक न्यून तथा बहु त अधिक तापमान का कोशिका एवं इसके अतिरिक्त वातावरण पर घातक प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक कम ताप पर प्रोटीन के अणु टूट जाते है तथा जमकर बर्फ के क्रिस्टल में रूपान्तरित हो जाते है। बहु त अधिक तापमान के कारण जल की हानि होती है, जीवद्रव्य संद्रित हो जाता है। इससे प्रोटीन एवं एन्जाइम विकृत हो जाते है।

2. **उपापचय पर प्रभाव (Effect on metabolism) :** प्राणियों में होने वाली विभिन्न उपापचयी क्रियाओं का नियंत्रण, एंजाइमों के द्वारा होता है। एंजाइम की क्रियाविधि तापक्रम के द्वारा प्रभावित होती है। प्रारंभ में तापक्रम के बढ़ने के साथ-साथ एंजाइमी क्रिया-विधि बढ़ती है लेकिन एक निश्चित सीमा के बाद तापमान में वृद्धि होने पर एंजाइम की क्रियाविधि कम हो जाती है। वोटहोफ के नियम के अनुसार प्रत्येक 10 C के बाद उपापचय क्रियाओ की दर दो गुनी हो जाती है। जैसे पादपों में न्यून ताप पर अवशोषण दर कम होती है। तापमान के बढ़ने के साथ-साथ अवशोषण दर बढ़ती है लेकिन क्रांतिक बिन्दु के पश्चात् अवशोषण दर कम हो जाती है। इसी प्रकार ट्री क्रिकेट (Occanthus) में चँ चँ (Chirping) की दर गर्मियों में अधिक होती है जबकि सर्दियो में कम होती है।

3. **प्रजनन व्यवहार पर प्रभाव (Effect on reproductive behaviour) :** अधिकांश प्राणियों में प्रजनन व्यवहार का नियंत्रण तापमान के द्वारा होता है। कुछ प्राणियों में प्रजनन पूरे वर्ष

भर चलता रहता है, जैसे चूहे, खरगोश। कुछ में प्रजनन केवल प्रजनन काल में ही होता है। कुछ प्राणियों में वर्ष में दो बार प्रजनन काल आता है, जैसे कुत्ते।

4. **प्रजनन पर प्रभाव (Effect on Reproduction) :** अधिकांश प्राणियों में प्रजनन क्रियाओं का नियंत्रण तापमान के द्वारा होता है। प्राणियों में जनदों (Gonad) का विकास, युग्मकजनन (gametogenesis), युग्मकों की निर्मुक्ति एक विशिष्ट तापक्रम पर ही होती है। यह विशिष्ट तापक्रम अलग-अलग प्रजातियों में भिन्तित प्रकार का होता है। तापक्रम द्वारा प्राणियों की प्रजनन क्षमता भी प्रभावित होती है। जैसे मादा क्रोटोगोनस (Chrotogonous) 30 C पर लगभग 243 अण्डे देती है। लेकिन जब तापमान 35 C होता है तो अण्डों की संख्या घटकर 190 हो जाती है। इसी प्रकार के प्रेक्षण ग्रासहोफर की प्रजातियों में देखने को मिलते है। दूसरी तरफ कुछ कीट जैसे कोटन स्टेम वेविल (Pempherulus affinis) में प्रजनन क्षमता 32.8 C से अधिक तापमान के होने पर कम हो जाती है।

5. **लिंग अनुपात पर प्रभाव (Effect on sex ratio) :** कुछ प्राणियों में वातावरणीय तापमान द्वारा लिंग अनुपात प्रभावित होता है। जैसे डेफनिड्स (Daphnids) में सामान्य ताप पर अनिषेकजनन द्वारा अण्डों का परिवर्द्धन मादा में होता है लेकिन तापमान के बढ़ने के साथ-साथ निषेचित अण्डे नर या मादा में परिवर्द्धित हो सकते है। मगरमच्छ व कछुओं में भी यही प्रक्रिया होती है।

6. **वृद्धि पर प्रभाव (Effect on growth) :** विभिन्न पादपों तथा प्राणियों की वृद्धि तापमान के द्वारा प्रभावित होती है। जैसे ट्रॉट (Trout) में भोजन अन्तर्ग्रहण तथा वृद्धि तब तक नहीं होती है जब तक पानी का तापमान 10 C से अधिक न हो जाये। विभिन्न गेस्ट्रोपोड्स जैसे यूरोसालपिक्स (Urosalpix) तथा समुद्री अर्चिन (Echinus) में शरीर की सर्वाधिक लम्बाई पानी का तापमान अधिक होने पर होती है।

7. **व्यक्तिगत परिवर्द्धन पर प्रभाव (Effect on ontogenic development) :** तापक्रम के द्वारा असमतापिय प्राणियों का परिवर्द्धन प्रभावित होता है। सामान्य तौर पर अण्डों तथा लार्वा का परिवर्द्धन अधिक ताप में अधिक तेजी से होता है। उदाहरणार्थ - ट्रॉट के अण्डे 15 C से 5 C ताप की तुलना में चार गुना तेजी से परिवर्द्धित होते है। मेकेरेल (Mackerel) के अण्डों का परिवर्द्धन 10 C पर प्रारम्भ होता है। यह परिवर्द्धन 10 C से 21 C तक तेजी से होता है। 25 C ताप पर कोई परिवर्द्धन नहीं होता है।

8. **रंग प्रतिरूप (Colour Pattern) :** प्राणियों का आकार तथा रंग तापक्रम के द्वारा प्रभावित होता है। गर्म तथा नम प्रदेशों में पाए जाने वाले प्राणियों का रंग अपेक्षाकृत गहरा होता है जबकि ठण्डे तथा शुष्क प्रदेशों में पाए जाने वाले प्राणियों का रंग अपेक्षाकृत हल्का होता है। यह परिघटना ग्लोगर का नियम (Gloger’s rule) कहलाती है। हाइला (Hyla) तथा फ्रिनोसोमा (phrynosoma) में कम ताप के कारण वर्णक निर्माण प्रेरित होता है। प्रॉन (Prawn) की कुछ प्रजातियों में तापमान के बढ़ने के साथ-साथ रंग हल्का हो जाता है।

9. आकारिकी पर प्रभाव (Effect on morphology) : तापक्रम के द्वारा प्राणियों का आकार प्रभावित होता है। यदि विषुअत रेखा से ध्रुवों की ओर चले तो वातावरणीय तापमान कम होता जाता है व प्राणी का आकार बढ़ता जाता है। लेकिन असमतापीय प्राणियों का आकार ध्रुवीय क्षेत्रों में छोटा होता है। आकार का तापक्रम के साथ यह सम्बन्ध ऊष्मीय हास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तापक्रम का प्राणियों के आकार के साथ यह सम्बन्ध बर्गमन का नियम (Bergman's Rule) कहलाता है। बड़े आकार के प्राणियों में शरीर के संदर्भ में पृष्ठ सतह, छोटे प्राणियों की तुलना में कम होती है। इसके कारण विकिरणों द्वारा ऊष्मा की क्षति इनमें कम होती है। लेकिन गर्म प्रदेशों में बड़ा आकार प्राणियों के लिए अधिक हानिकारक होता है। इससे बचने हेतु गर्म प्रदेशों के प्राणी आकार में छोटे होते है। अत: इनकी पृष्ठ सतह बढ़ जाती है व शरीर के ताप नियमन हेतु ऊष्मा का हास अधिक होता है।

स्तनधारियों में सीमांतीय रचनाएँ जैसे पँछ, तुण्ड, कान तथा पैर, ठण्डे प्रदेशों के प्राणियों में छोटे आकार के होते है। गर्म प्रदेश के स्तनधारियों में इनका आकार बड़ा होता है। इसे एलन का नियम (Allen's Rule) कहते है। इस नियम का स्पष्ट उदाहरण लोमडी की तीन प्रजातियों आर्कटिक फोक्स (Alopex legopus), रेड फोक्स (Vulpes vulpes) तथा डिजर्ट फोक्स (Megalotis zerda)। लोमड़ियों में ऊष्मा का हास कानों के द्वारा होता है। अत: ध्रुवीय प्रदेश की लोमडियो के कान छोटे होते है ताकि ऊष्मा का हास कम हो तथा ऊर्जा का संरक्षण ज्यादा हो। जबकि मरूस्थलीय लोमडियों मे कान बडे होते है क्योंकि कान से ऊष्मा की क्षति अत्यधिक होती है एवं शरीर के ताप का नियमन हो जाता है।

पक्षियों की विभिन्न प्रजातियां जो ठण्डे प्रदेशों में रहती है उनके पंख अपेक्षाकृत संकरे तथा नोकिले (Acuminate) होते है। गर्म प्रदेशों में रहने वाले प्राणियों के पंख अपेक्षाकृत चौड़े होते है। इसे रेन्सेह का नियम (Renseh's Law) कहते है। तापक्रम द्वारा मछलियों की प्रजातियों में कशेरूकाओं की संख्या प्रभावित होती है। वे मछलियां जो कम ताप वाले पानी में रहती है उनमें कशेरूकाओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है जबकि गर्म स्त्रोतों में पाई जाने वाली मछलियों में कशेरूकाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। तापक्रम से संबंधित यह परिघटना जोर्डन का नियम (Jordan's Law) कहलाती है।

10. साइक्लोमोफोसिस (Cyclomorphosis) : कोकर (1939) ने बताया कि कुछ प्लेक्टोनिक प्राणियों जैसे डेपिनआ (Daphnia) में तापक्रम के मौसमीय परिवर्तन के साथ-साथ प्राणी का आकार तथा आकृति परिवर्तित हो जाती है। यह परिघटना साइक्लोमोफोसिस (cyclomorphosis) कहलाती है। सर्दियों में डेपिनआ का शीर्ष भाग गोलाकार होता है। बसंत ऋतु में शीर्ष भाग से हेल्मेट के समान प्रवर्द्ध निकलता है। गर्मियों में इस प्रवर्द्ध का आकार बढ़ जाता है व सर्दियों में इनका आकार पुन: कम होकर सामान्य हो जाता है।

11. प्राणियों के वितरण (Distribution of animals) पर ताप का प्रभाव : जीव-जन्तुओं के भौगोलिक वातावरण पर ताप का प्रभाव स्पष्ट है। असमतापी जन्तुओं के वितरण पर ताप अधिक प्रभावकारी होता है। उदाहरणार्थ -

– एटलांटिक लोबरटर (Atlantic Lobster) - 0 से 17 सेंटीग्रेड तक ताप वाले क्षेत्र में ही पाया जाता है। जबकि कोरल (Corals) 21 C से कम ताप वाले समुद्रों में जीवित नहीं रह सकते इसलिए ठण्डे समुद्रों में नहीं मिलते है।

– रेप्टीलिया वर्ग के अधिकांश जीव गर्म प्रदेशों में वितरित होते है। वास्तव में जन्तुओं और पौधों के भौगोलिक वितरण पर ताप एक अति प्रभावशाली सीमाकारी कारक के रूप में काम करता है।

2. प्रकाश (Light)

प्रकाश का मुख्य स्त्रोत सूर्य है इसकी विकिरण द्‌वारा ऊर्जा प्राप्त करके पौधे भोजन बनाते है। प्रकाश द्‌वारा संश्लेषित ऊर्जा ही सभी जीवधारियों के जीवन का मूलभुत आधार है। साधारणत: हम आँख से दिखने वाली बैंगनी, नीली, आसमानी नीली, हरी, पीली, नारंगी तथा लाल रंगों की किरणों को ही प्रकाश कहते है। परन्तु वास्तव में सूर्य के प्रकाश रो अनेकों अन्य किरणें भी विकसित होती है। कॉस्मिक किरणें (Cosmic Rays), गामा व एक्स किरणें (Gamma and X-Rays), अल्ट्रा-वाइलेट (पराबैंगनी), इन्कारेड किरणें, ताप तरंगे (heat waves), राडार तरंगें (radar waves), रेडियो तरंगे (radio waves), विद्‌युत चुम्बकीय तरंगे आदि भी सूर्य से पृथ्वी पर निरन्तर विकसित होती रहती है।

प्रकाश का प्रभाव : सभी जीवधारियों का भोजन पौधों द्‌वारा प्रकाश संश्लेषण ही है। इसके अतिरिक्त जन्तुओं और वनस्पतियों की अनेकों जैविक क्रियाओं पर प्रकाश का सीधा प्रभाव पडता है।

1. **प्रकाश का उपापचय पर प्रभाव :** पौधों में प्रकाश संश्लेषण प्रकाश की उपस्थिति में ही हो सकता है। भोजन निर्माण की इन उपापचय क्रियाओं के लिए प्रकाश एक आवश्यक कारक है। इसी प्रकार विभिन्न जन्तुओं में एन्जाइम्स की कार्य विधियों (enzyme-metabolism), लवणों की घुलनशीलता तथा गैसों की अनुक्रिया पर भी प्रकाश की तीव्रता का सीधा प्रभाव होता है। प्रकाश की तीव्रता बढने पर विभिन्न एन्जाइम्स की क्रिया तेजी से बढ़ती है और लवणों की घुलनशीलता भी बढ़ जाती है। गैसों की घुलनशीलता पर प्रकाश की तीव्रता का विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्राणियों में वर्णकों का उत्पादन भी उपापचय पर प्रकाश के प्रभाव का उदाहरण है।

2. **प्रकाश का जन्तुओं के रंगों और शरीर रचना पर प्रभाव :** गुफाओं (caves) में रहने वाले जन्तुओं में प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण उनकी त्वचा रंगहीन हो जाती है। इनकी आंखे भी लगभग निष्क्रिय या अवशेष (vestigeal) रूप में रह जाती है। भूमण्डल के विभिन्न भागों में प्रकाश की तीव्रता की भिन्नता के कारण जन्तुओं के रंगों में भी भिन्नता आ जाती है। गहरे समुद्र में जहां प्रकाश नहीं होता है अधिकतर जन्तु अंधे होते है। प्रकाश त्वचा के रंगों और आंखों की रचना पर विशेष प्रभाव डालता है।

3. **प्रकाश का वृद्धि और विकास पर प्रभाव :** साल्मोन मछली के लार्वा (Salmon's larva) तीव्र प्रकाश में तेजी से वृद्धि करते हुए विकसित होते है। अंधेरे अथवा मन्दिम प्रकाश में इनका विकास रूक जाता है और मृत्यु दर बढ़ जाती है परन्तु माइटीलस (Mytilus) में तीव्र प्रकाश का विकास और वृद्धि पर विपरीत प्रभाव होता है।

4. **प्रकाश का परिवर्धन पर प्रभाव :** प्रकाश परिवर्धन को तीव्र या धीमा कर देता है। जैसे साल्मन के डिंभकों को अपने सामान्य परिवर्धन के लिए पर्याप्त प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में उनका परिवर्धन असामान्य हो जाता है तथा इनकी मृत्यु दर भी बढ़ जाती है।

5. **प्रकाश का चालन गति (Locomotion) पर प्रभाव :** जन्तुओं की चलने-फिरने की क्रिया पर प्रकाश के प्रभाव को प्रकाश गतिक्रम (photokinesis) कहते है। यह प्रभाव विशेषकर छोटे जन्तुओं पर अधिक स्पष्ट होता है। पिनोधीरस केकड़े के लार्वा प्रकाश की तीव्रता बढाने पर अधिक गतिशील हो जाते है और तीव्रता घटाने पर अति धीमी गति से चलते हैं। टिड्डियों (locusts) के झुण्ड बादलों से प्रकाश अवरूद्ध होते ही उड़ान बन्द कर देते है और बादल हटने पर दुबारा उड़ना शुरू कर देते है।

6. **दृष्टि (Vision) पर प्रकाश का प्रभाव :** प्राणी में दृश्यांग कितने विकसित होंगे, यह वातावरण में उपलब्ध प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर करता है। समुद्र की गहराइयों तथा गुफाओं में रहने वाले प्राणियों के नेत्र लुप्त हो जाते है। कई मछलियों एवं क्रस्टेशियन्स के नेत्रों में शलाकाओं (rods), शंकुओं (cones) तथा वर्णकों का विशेष समायोजन होता है ताकि वे 500-700 मीटर तक की गहराई तक भी वस्तुओं को देख सके। कई मछलियों में अन्त:सर्पी नेत्र (telescopic eyes) होते है। उल्ल लॉरिस आदि जैसे कुछ थलीय प्राणियों में भी बड़े व उभरे हुए नेत्र पाए जाते है ताकि वे रात में देख सके।

7. **दीप्तिकालिता (Photoperidicity) :** प्रकृति में कई भौतिक नैंज आवतिर्त्तताएं (rhythms) प्रकाश से सम्बन्धित होती है। प्रकाश एवं अंधेरे की दैनिक नैज आवतिर्त्तताएं जल में एवं थल पर पौधों की कई क्रियाओं को नियंत्रित करती है। दैनिक अवधि (length of day) भी कई क्रियाओं को नियंत्रित करती है। दैनिक अवधि का नियंत्रणकारी प्रभाव दीप्तिकालिता कहलाता है। कई पक्षियों एवं स्तनधारियों के जनन-चक्र, प्रवास (migration), परों तथा बालों में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन इत्यादि दीप्तिकालिक क्रियाओं के ही उदाहरण है।

8. **प्रकाश के अन्य प्रभाव :**

(अ) अनेकों पौधों पर प्रकाश-कार्यकालता (photoperiodism) का प्रभाव होता है। कुछ फसलो के लिए अधिक प्रकाश-कार्यकालता आवश्यक है परन्तु अन्य फसलों को अल्प प्रकाश-कार्यकालता की आवश्यकता होती है। इसी कारण अलग-अलग मौसम में प्रकाश की विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न फसलें होती है। कुछ पौधें जिन्हें अल्प प्रकाश चाहिए जैसे कॉसमॉस, सोयाबीन आदि लघु दिवसी (short-day length) तथा कुछ पौधे जिन्हें अधिक प्रकाश चाहिए जैसे मूली, सलाद आदि दीर्घ दिवसी (long-day length) कहलाते है। प्रकाश-कार्यकालता पर पौधे में वृद्धि हारमोन, जिसे पलोरोजन कहते है, की उत्तेजना निर्भर करती है। यहीं हारमोन पौधों की वृद्धि बिन्दु की ओर अग्रसित करता है तथा पुष्पों को खिलने के लिए प्रेरित करता है। प्रकाश के प्रभाव का फसलों के लिए अत्यधिक आर्थिक महत्व है। भरपूर उत्पादन के लिए प्रकाश-कार्यकालता और लघु दिवसता या दीर्घ दिवसता का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी आधार पर पान के पीले पत्तों का उत्पादन करके उन्हें हरे पान की तुलना में अधिक आर्थिक लाभ पर बेचा जाता है।

(ब) विभिन्न जन्तुओं का शरीर यद्यपि त्वचा से सुरक्षित रहता है फिर भी प्रकाश की कुछ मात्रा त्वचा भेद कर जीवद्रव्य में प्रविष्ट होकर अनेकों प्रभाव डालती है। साधारणत: प्रकाश किरणें जीवद्रव्य उत्तेजना, क्रियाशीलता और ताप बढ़ा देती है परन्तु अल्ट्रा-वॉइलेट किरणों से जीवधारियों के **डी.एन.ए.** में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) भी सम्भव है।

3. जल (water)

पृथ्वी का लगभग 73 प्रतिशत भाग जल से ढका हुआ है। समस्त जैव-भूमण्डल (biosphere) के जीवधारियों के लिए सीधे या परोक्ष रूप से जल का असीमित महत्व है। बिना जल के जीवन की कल्पना करना भी कठिन है। जन्तुओं का सबसे बडा प्राकृतिक निवास जल में है। पृथ्वी पर जल का वितरण सब जगह एक समान नहीं है। कहीं-कहीं पर जल स्त्रोतों की गहराई एक मीटर भी नहीं है। विश्व के कुछ समुद्र 9750 मीटर (या लगभग 7 मील) तक गहरे नापे जा चुके है। दुनिया के सभी समुद्र एक-दूसरे से मिले हुए हैं और उनकी सारी जल राशि भूमि से लगभग 300 गुणा अधिक जैव निवास (habitat) का निर्माण करती है। समुद्रों के सभी भागों और गहराइयों में कोई न कोई जीवधारियों का समूह अवश्य रहता है। पृथ्वी के स्वच्छ जल के स्त्रोत, जिनमें पोखर, झीलें, नदियों सम्मिलित है, तुलनात्मक रूप से बहुत छोटे है। जल के बिना इकोसिस्टम की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। जीवन को साम्य में जल बिना नहीं रखा जा सकता है।

जल के विशिष्ट गुण : जल में कुछ अनोखे गुण है जिसके कारण यह जीवन को तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावित करता है। इसके भौतिक गुणों में हवा से अधिक भारीपन, पारदर्शिता, लसीलापन (viscosity) तथा ताप सम्बन्धी उल्लेखनीय गुण बहुत महत्वपूर्ण है। अधिक भारीपन के कारण जल में विभिन्न प्राणी सुविधापूर्वक तैर सकते है और पारदर्शी होने से जलीय प्राणी सरलतापूर्वक देख सकते है। जल का अत्यधिक लसीलापन स्वतंत्र विचरण में बहुत अधिक सहायक है। इस गुण के कारण प्राणियों को शारीरिक चोट का कोई खतरा नहीं रहता है। प्रत्येक प्राणी को जल की आवश्यकता होती है। इसलिए प्राणियों का वितरण जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। उपलब्ध जल के परिमाण की दृष्टि से पृथुजलीय (euryhydric) प्राणियों का सहनशीलता परिसर विस्तृत होता है। तनुजलीय (stenohydric) प्राणियों में जल के लिए सहनशीलता परिसर संकीर्ण होता है। थल पर पौधों का वितरण प्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। विशेष प्रकार की वनस्पति विशेष प्रकार के जन्तुओं का संभरण करती है। इसलिए थलीय जन्तुओं के वितरण में भी अप्रत्यक्ष रूप से, जल उपलब्धता का महत्व होता है।

क्षेत्र विशेष में जल की उपलब्धता वर्षा के परिमाण, आर्द्रता तथा मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है। वार्षिक वर्षा के आधार पर थलीय आवास को निम्न प्रकार के विभिन्न जीवोम (biomes) में विभक्त किया गया है।

0” - 10” वार्षिक वर्षा → मरूस्थल

10” - 30” वार्षिक वर्षा →घासस्थल, सवाना या खुली वनस्थली

30" - 50" वार्षिक वर्षा → उष्णकटिबन्धीय

50" से ऊपर वार्षिक वर्षा → नम वन

पौधों को उपलब्ध जल का परिमाण केवल वार्षिक वर्षा के मान पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि मृदा की जलधारी-क्षमता (water retaining capacity) पर भी निर्भर करता है। मृदा की जलधारी क्षमता मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है।

जल के गुणधर्म (Properties of water)

1. जल के ताप सम्बन्धी गुणों ने भी अन्य माध्यमों की अपेक्षा इसे अधिक रूचिकर बनाया है। समुद्री जल का हिमांक (freezing point) -1.9 C होता है जिसका ठण्डे प्रदेशों में जाडे में विशेष लाभ होता है। चूँकि जल 4 C पर सबसे अधिक भारी होता है अत: समुद्र की ऊपरी सतह पर बर्फ जमने पर भी 4 C का जल अपेक्षाकृत अधिक भार के कारण नीचे तल में चला जाता है और बर्फ के हिमखण्ड ऊपर तैरते रहते है। अत: जैविक क्रियाओं के लिए उपयुक्त जल उपलब्ध रहता है और प्राणी जमकर नष्ट होने के खतरे से बचे रहते है।
2. जल की उच्च तापग्रहिता (heat holding capacity) : वातावरण के तापक्रम को स्थिर रखने में सहायक होती है। जल समुद्र व झीली का तापमान जल के उच्च तापग्रहिता के कारण ही स्थिर रहता है। इसी प्रकार मानव शरीर का तापमान स्थिर होना भी जल के मुख्यत: इसी गुण के ऊपर निर्भर करता है।
3. समुद्री जल का खारापन (salinity) : लगभग सब जगह 3.5 प्रतिशत रहती है। समान खारेपन से जन्तुओं का विशाल क्षेत्र में वितरण सम्भव होता हैं।
4. जल का सर्व विलायक (universal solvent) : गुण भी अति उपयोगी है। खाद्य पदार्थ, खनिज और भिन्न गैसें जल में घुलकर ही जीवद्रव्य 'में प्रविष्ट होती है। जल से अच्छा कोई अन्य विलायक नहीं है। जल में O२ घुले होने के कारण मत्स्य जैसे जलीय प्राणी जीवित रह पाते हैं।

   पर्यावरण में वायु में सान्द्रता के आधार पर ही जल में गैसों की घुलनशील व संतृप्तता होती है। वे गैसें जल में सरलता से अधिक विलय हो जाती है जो कि जीवन के लिए आवश्यक होती है।
5. विभिन्न, अंगों में आवश्यक तत्वों का संवहन (transport) जल के माध्यम से ही होता है। मिट्टी में उपस्थित खनिज खाद्य पदार्थ जल में घुलकर ही पौधों के अंगों में पहुंचते है। वातावरण से अजैविक पदार्थ पारितन्त्र (ecosystem) के जैविक भाग में जल में घुलकर विलयन के रूप में प्रवेश करते है।
6. जल का उच्च सतही तनाव (surface tension) जीवाधारियो के लिए महत्वपूर्ण होता है तथा भूमिगत जलराशि भी सुरक्षित बनाए रखने में सहायक होता है। सतही तनाव विभिन्न आन्तरिक कार्यिकी तथा जैव-रासायनिक क्रियाओं (biochemical reactions) पर गम्भीर प्रभाव डालता है।

जल के प्रभाव

1. जल जीवधारियों को अनेकों प्रकार से प्रभावित करता है। रेगिस्तान (मरूस्थल) क्षेत्र की कमी के कारण जन्तुओं और पौधों में जल-संरक्षण (water conservation) के लिए अनेकों शारीरिक परिवर्तन हो जाते है, जिन्हें मरूस्थलीय अनुकूलन (desert-adaptation) कहते है।

2. जन्तुओं का भौगोलिक वितरण भी जल से प्रभावित द्येता है।

3. कुछ स्थलीय जन्तु पर्याप्त जल में ही प्रजनन, विकास और वृद्धि करते है। अत: मेंढक जैसे प्राणी का प्रजनन वर्षा पर निर्भर रहता है।

4. आर्द्रता (Humidity)

वायु में उपस्थित जल वाष्प की मात्रा को आर्द्रता कहते है। इसे दो प्रकार की होती है -

(अ) सम्पूर्ण आर्द्रता (Absolute Humidity)

(ब) सापेक्ष आर्द्रता (Relative Humidity)

(अ) सम्पूर्ण आर्द्रता : किसी स्थान पर वायु की प्रति इकाई में उपस्थित जल वाष्प की मात्रा का भार सम्पूर्ण आर्द्रता कहलाती है।

(ब) सापेक्ष आर्द्रता : यह समान ताप और दबाव पर संतृप्त बिन्दु की तुलना में वायु में जल वाष्प की वास्तविक प्रतिशत मात्रा दर्शाती है।

सापेक्ष आर्द्रता की मात्रा ही विशिष्ट प्रकार की वनस्पति और जीव-जन्तुओं की उपलब्धि और वितरण का निर्धारण करती है। उदाहरणार्थ-

– उभयजीवी प्राणी (amphibians), मच्छर और भूमिगत अकशेरूक प्राणी की उपस्थिति व अनुपरिथति आर्द्रता से अत्यधिक प्रभावित होती है।

– कई प्राणियों में आर्द्रता के लिए स्पष्ट सहनशीलता-सीमाएं भी पाई जाती है। जैसे लेपिस्मा (lepisma & silver fish) के प्रजनन के लिए 80-90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता की जरूरत होती है। इसी प्रकार आपेक्षिक आर्द्रता में वृद्धि कर देने से ट्राइबोलियम (Tribolium - flour beetle) के डिम्भक अवस्था (larval stage) का परिवर्धन तेज होता है।

5. मृदा या मिट्टी (Soil)

मृदा एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक है तथा स्थलीय समुदायों का मूल आधार है। यह कार्बनिक पदार्थो के क्षय तथा खनिज पदार्थो के पुर्नचक्रण का महत्वपूर्ण स्थल है। यह भूपर्टी (earthcrust) का सबसे ऊपरी स्तर है जो खनिज पदार्थो तथा कार्बेनिक पदार्थो से युक्त होती है। पौधों में पोषक पदार्थो तथा पानी की आपूर्ति के स्त्रोत के अलावा, खाद्य शृंखला का भी अच्छा स्त्रोत है। सभी स्थलीय जीवों के लिए मृदा अवलम्बन का भी कार्य करती है।

मृदा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के सोलम (solum) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है "पृथ्वी का वह पदार्थ जिसमें पादप वृद्धि करते है।" विज्ञान की वह शाखा जिसमें मिट्टी का अध्ययन किया जाता है, पीडोलोजी (Pedology) अथवा इडेफोलोजी (Edaphology) कहलाती है। मिट्टी का अध्ययन, कृषि बागवानी, फोरेस्ट्री, सिंचाई, फर्टिलाइजर के उपयोग में सहायक होता है।

एली व सहयोगियों (Alletal) के अनुसार मृदा पृथ्वी का ऊपरी छिछला स्तर है। इसका निर्माण नीचे स्थित चट्टानों पर वातावरणीय प्रभाव के कारण होता है। यह मृदा कार्बनिक पदार्थो तथा सुक्ष्मजीवों के साथ मिलकर, विभिन्न पादपों तथा प्राणियों के लिए उपयुक्त आवास का निर्माण करती है।

ट्रीसोव (Treshow-1970) के अनुसार ‘मृदा एक जटिल जैवभौतिकी (Biophysical) तंत्र है जो पादपों के लिए ओक्सीजन पोषण, पानी तथा आलम्बन प्रदान करती है।

मृदा पादपों को आलम्बित करने वाला अजैविक घटक है। यह लाखों सूक्ष्मजीवों, जीवाणुओं तथा कवको युक्त होती है। जैविक तथा अजैविक कारकों के मध्य अन्तःक्रिया के कारण मृदा एक जीवित तंत्र होता है। मृदा को एक त्रिविमीय इकाई के रूप में माना जाता है जिसमें लम्बाई, चौडाई तथा गहराई तीनों घटक उपस्थित होते हैं। इस त्रिविमीय इकाई के विभिन्न क्षैतिज पेडोन (pedon) कहलाते है।

मृदा का निर्माण (Soil formation or Pedogenesis)

मृदा, अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थो का स्तरित मिश्रण है। अकार्बनिक घटक मुख्य रूप से चट्टानों द्वारा प्राप्त होते है जबकि कार्बनिक घटक मृत पादपों, प्राणियों अथवा उपरिथत सजीवों की उपापचयी क्रियाओं के कारण प्राप्त होते है। वास्तव में मिट्टी का निर्माण एक जटिल प्राकृतिक प्रक्रिया है। इसमें अनेकों यांत्रिकी (mechanical) कारकों के साथ सूक्ष्म जीवों जैसे बैक्टिरिया और कवक का महत्वपूर्ण योगदान होता है। पृथ्वी की सबसे ऊपरी चट्टानों के खनिज पदार्थ सम्भवतया ऑक्सीकरण की प्रक्रिया से विघटित होते है। कॉर्बनडाइऑक्साइड (CO२) चट्टानों के विघटित करने में अत्यधिक शक्तिशाली कारक के रूप में जानी जाती है। विघटित चट्टानों पर जल रासायनिक क्रियाओं को प्रभावी बनाता है। ताप का उतार-चढ़ाव भी रासायनिश्क क्रियाओं को प्रेरित करके चट्टानों के विघटन को और आसान बना देता है। इस प्रकार चट्टानों के खनिजों के छोटे-छोटे कणों पर बैक्टिरिया और लाईकेन्स (Lichens) (कवक और शैवाल से बना पौधा) उत्पन्न होकर अन्य जीवधारियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करते है। केंचुए, कनखजूरा, तथा बिलों (burrows) में रहने वाले प्राणी उलट-पलट करके मिट्टी में वायु प्रविष्ट कराते है और मृत पौधे, पत्तियों और अन्य कार्बनिक पदार्थो को मिट्टी में मिलाकर मिश्रण तैयार करने में भी सहायक है।

मृदा परिच्छेदिका (Soil Profile)

पृथ्वी का उदग्र (vertical) काट, मृदा परिच्छेदिका कहलाता है। इसमें उपस्थित विभिन्न स्तर क्षैतिज (horizons) कहलाते है। प्रत्येक क्षैतिज मोटाई, रंग, रचना, छिद्रता, अम्लीयता तथा संगठन अलग-अलग प्रकार का होता है। सामान्यतया मृदा में पांच क्षैतिज होते है- O क्षैतिज (कार्बनिक) A, B, C (खनिज स्तर) तथा R स्तर (चट्टानी स्तर)। A तथा B स्तर वास्तविक मृदा का निर्माण करते है, इसे सोलम (Solum) कहते है। प्रत्येक क्षैतिज पुन: विभाजित होता है। (चित्र 3.1)

1. **O क्षैतिज (O-Horizons) :** मृदा परिच्छेद का ऊपरी स्तर O-क्षैतिज कहलाता है। वनीय क्षेत्रों की मृदा में यह स्तर पाया जाता है। मरूस्थलीय, घासीय क्षेत्र की मृदा में यह स्तर अनुपस्थित होता है। इसके दो मुख्य उप स्तर होते है

(a) **O_1 क्षतिज (O_1 -Horizons/Aoo or L-Horizon) :** यह मृदा का सबसे ऊपरी स्तर है। इसमें मृत पत्तियाँ, तने, छाल, पुष्प, फल, प्राणियों की विष्ठा आदि उपस्थित होती है। इस स्तर में पादपों तथा प्राणियों के अवशेष नग्न आँखों से देख सकते है। इनमें क्षय अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है। यह क्षेत्र मौसमीय (Seasonal) हो सकता है। पर्णपाती वनों में यह क्षैतिज सर्वाधिक मोटा होता है। जब पौधों की सभी पत्तियां झड़ जाती है। धीरे-धीरे क्षय होने के कारण यह स्तर पतला होता जाता है।

(b) **O_2 क्षैतिज (O_2 Horizons/ Ao or H-Horizon) :** यह क्षैतिज O, क्षेत्र के नीचे उपस्थित होता है। इसमें काले रंग की अविघटित मृदा उपस्थित होती है। O२, क्षैतिज के ऊपरी स्तर में आशिक रूप से विघटित दफ़्फ़ (Duff) उपस्थित होता है। अत: इस स्तर को दफ़्फ़ स्तर (Duff layer) कहते है। इसका निचला स्तर पूर्ण रूप से विघटित होता है, इसमें कार्बनिक ह्यूमस पाई जाती है। अत: इस स्तर को ह्यूमस स्तर (Duff layer) भी कहते है। इस क्षेत्र में कीट तथा सूक्ष्म प्राणी उपस्थित होते है।

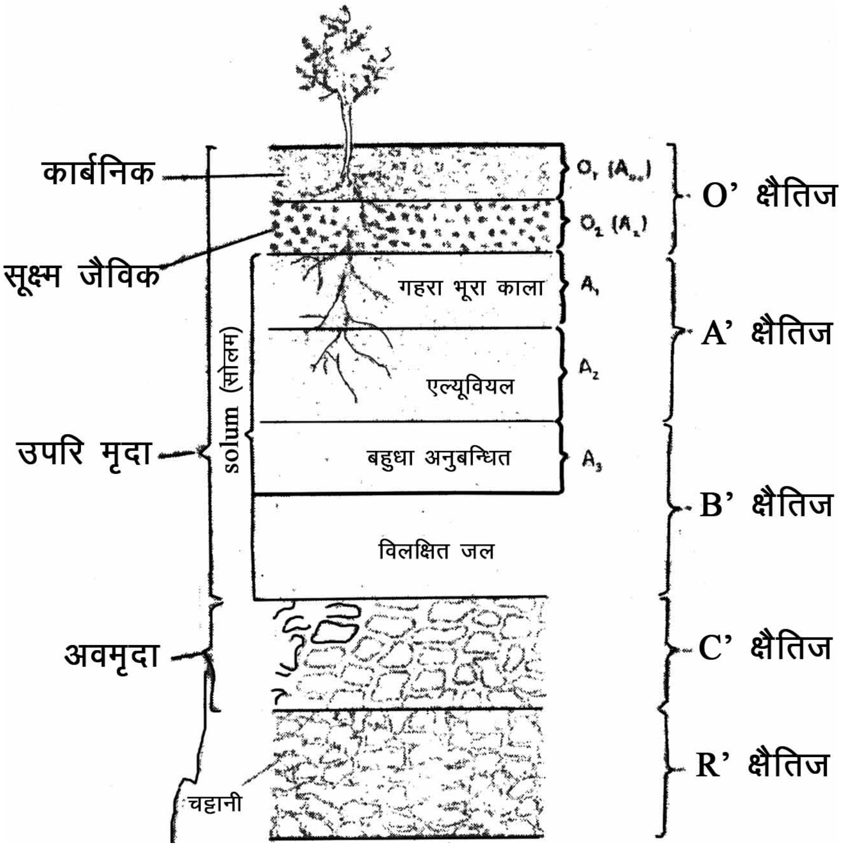

2. **A-क्षैतिज (A-Horizon) :** लिट्टर जोन के नीचे A क्षैतिज उपस्थित होता है। यह निक्षालन का क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में पदार्थ जलीय विलयन की स्थिति में उपस्थित होते है। निक्षालित

होने वाले तरल की मात्रा गुरूत्वीय जल की मात्रा के समानुपाती होती है। A क्षैतिज में तीन उपक्षेत्र भी होते है-

(a) **A_1 क्षैतिज (A_1 Horizon) :** इस क्षेत्र में ह्यूमस, मृदा खनिजों के साथ मिश्रित होती है। यह स्तर अपेक्षाकृत गहरे रंग का होता है। इसमें कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते है। इस स्तर में जीवाणु तथा कवक काफी संख्या में उपस्थित होते है।

(b) **A_2 क्षैतिज (A_2 Horizon) :** यह क्षेत्र A_1 स्तर के नीचे उपस्थित होता है। यहां पर निक्षालन की दर सर्वाधिक होती है। इस स्तर में ह्यूमस की मात्रा कम होती है तथा सिलिकेट, Fe के ऑक्साइड, Fe के ऑक्साइड, A1 सर्वाधिक दर से हटा दिए जाते हैं।

(c) **A_3 क्षैतिज (A_3 Horizon) :** यह स्तर प्राय: अनुपस्थित रहता है। यह A२ तथा B के मध्य का संक्रमण स्तर है।

3. **B-क्षैतिज (B- Horizon) :** यह स्तर A 'स्तर' के नीचे उपस्थित होता है। इस स्तर में विभिन्न पदार्थो का संग्रह होता है। इस स्तर में आयरन तथा अल्यूमिनियम के पदार्थ उपस्थित होते हैं। B-क्षैतिज को B B२ तथा B३ स्तरों में विभक्त किया जा सकता है। विभिन्न शाकों तथा पौधों की जडे इस स्तर तक पहुँच जाती है। A तथा B स्तर संयुक्त रूप से वास्तविक मृदा (true Soil) या सोलम (solum) कहलाते है।

4. **C- क्षैतिज (C-Horizon) :** यह स्तर अपेक्षाकृत मोटा होता है तथा B क्षैतिज के नीचे उपस्थित होता है। इस स्तर में पैतृक पदार्थ उपस्थित होते है। यह स्तर हल्के रंग का होता है तथा इसमें कार्बनिक पदार्थ अनुपस्थित होते है।

5. **R- क्षैतिज (R-Horizon) :** यह मृदा परिच्छेद का सबसे भीतरी स्तर है। इसमें पैतृक चट्टाने उपस्थित होती है।

यद्यपि विभिन्न क्षैतिजों की मोटाई तथा महत्व अत्यधिक परिवर्तनशीलं होता है। मृदा परिच्छेद की परिकल्पना अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे एक सामान्य आनुवंशिक मॉडल प्राप्त होता है जिससे विभिन्न क्षेत्रीय मृदा की तुलना की जा सकती है।

मृदा के प्रकार व संरचना (Types and Constituents)

1. **मृदा टेक्सचर (Soil texture) :** चूँकि मृदा के द्वारा उस क्षेत्र में उपस्थित फौना (Fauna) तथा फ्लोरा (Flora) प्रभावित होते है। मृदा के टेक्सचर (texture) का निर्धारण इसके कणों के आकार के आधार पर किया जाता है। इन कणों का नामकरण "International society of soil science" के द्वारा किया गया है। इस सोसायटी के अनुसार मिट्टी के कण 6 प्रकार के होते है।

क्र. सं.	कणों के प्रकार	व्यास (मि. मि. में)
01.	चिकनी मिट्टी	<0.002 mm.
02.	गाद	0.002-0.020 mm.
03.	महीन बालू	0.020-0.200 mm.
04.	मोटी बालू	0.200-2.00 mm.
05.	महीन बजरी	2.0-5.0 mm.

06.	मोटी बजरी	>5.0 mm.

विभिन्न प्रकार की मृदा का निर्माण, मृदा कणों के संयोजन के कारण होता है। ये मृदायें निम्न प्रकार की है।

1. **बालुई मिट्टी (Sandy Soil) :** इस मृदा में बालू कण अधिक होते हैं। ये कण शिथिल, शुष्क तथा पोषक पदार्थो से न्यून होते है। पानी को रोकने की क्षमता इस मृदा में कम होती है।
2. **खड़िया मिट्टी (Clay Soil) :** यह मुख्य रूप से क्लेय पार्टिकल की बनी होती है। ये कण कोलोइडी कणों के आकार के होते है। इनमें प्रत्यास्थता अधिक होती है तथा पानी को रोकने की क्षमता भी अधिक होती है। इस मृदा में पानी तथा वायु का सामान्य प्रवाह नहीं होता है, अत: पादप वृद्धि के लिए यह मृदा उपयुक्त नहीं है।
3. **दोमट मिट्टी (Loam Soil) :** इस मृदा में बालु मिट्टी, सिल्ट तथा क्लेय, अधिक या कम मात्रा में उपस्थित होती है। इस प्रकार की मृदा पादप वृद्धि के लिए उपयुक्त है।
4. **क्ले लोम मिट्टी (Clay loam Soil) :** इसमें क्ले कणों की मात्रा अधिक होती है तथा यह पादपों के लिए उपयुक्त होती है।
5. **सेण्ड लोम मिट्टी (Sand Loam Soil) :** इसमें बालू कणों की मात्रा अधिक होती है तथा यह मृदा भी पौधों के लिए उपयुक्त होती है।
6. **सिल्ट लोम मिट्टी (Silt Loam Soil) :** इसमें सिल्ट की मात्रा अधिक होती है। अत: इसमें वायु का प्रवाह कम होता है। पानी के कारण यह जलमग्न हो जाती है।

मिट्टी की रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature of Soil)

मिट्टी में अनेकों अकार्बनिक लवण, पोषक तत्व, कुछ कार्बनिक योगिक (जिनमें मुख्यत: पौधों और प्राणियों के विघटन से उत्पन्न प्रोटीन्स) आदि रासायनिक पदार्थ होते है। मिट्टी की अम्लता और क्षारीयता (acidity and alkalinity) भी सीमाकारी कारक है। खनिज कणों का आकार, वायु और जल की मात्रा को निर्धारित करके मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म प्राणियों जैसे बैक्टिरिया, कवक, प्रोटोजोआ तथा केंचुए आदि की वसन तथा अन्य जैविक क्रियाओं को प्रभावित करते है।

मिट्टी एक अति महत्वपूर्ण स्थलीय कारक (edaphic factor) है। यह अनेकों जीवधारियों का आवास (habitat) है। इसकी भौतिक और रासायनिक संरचना का सीधा और परोक्ष प्रभाव विभिन्न पौधों और जन्तुओं के वितरण तथा अनेकों जैविक क्रियाओं पर पड़ता है। ऊर्जा के अतिरिक्त सभी जीवों के पोषक तत्वों का भण्डार भी मिट्टी में है। किसी न किसी रूप में सभी जीवधारी मिट्टी से पोषक तत्व प्राप्त करते है।

मृदा जल (Soil Water)

मृदा में जल की अत्यधिक मात्रा होती है। मृदा जल का मुख्य स्त्रोत वर्षा है। भारी वर्षा के बाद मृदा पानी को कई रूपों में रखते है। मृदा द्वारा पानी रखने के आधार पर इसे गुरूत्वीय जल (gravitational water), केशिकीय जल (capillary water), आर्द्रताग्राही जल (hygroscopic water) और संयुक्त जल (combined water) में विभाजित किया जाता है।

प्राणियों पर मृदा के प्रभाव

मृदा का गठन (texture) व रासायनिक संगठन निर्धारित करते है कि (1) किस प्रकार के प्राणी इसे आबाद कर सकते है। (2) इसके द्वारा उनके समष्टियों की कितनी बड़ी परिमिति या आकार का पोषण किया जा सकता है।

मृदा की सरंध्रता, मृदा में परिसंचरित होने वाले जल एवं वायु के परिमाण तथा प्राणियों की वृद्धि एवं पोषण के लिए पदार्थो की उपलब्धता को निर्धारित कर प्राणियों को प्रभावित करते हैं।

1. **मृदा के गठन का प्राणियों पर प्रभाव :** केवल विशेष रूप से अनुकूलित प्राणी ही विभिन्न प्रकार के भूमि तलों पर रह सकते है। उदाहरणार्थ, चट्टानी भू-भाग पर एवं कठोर खुले प्रदेशों में तेज दौड़ने वाले प्राणी पाए जाते हैं जिनमें पादांगुलियों (limb digits) की संख्या प्राय: कम हो जाती है, जैसे-हिरन, बारहसिंगा एवं शुतुरमुर्ग।

2. **मृदा के गठन का पौधों पर प्रभाव :** ठोस चट्टानी आधार पर केवल मॉंस (Moss) एवं लाइकेन ही जीवित रह सकते हैं। बालू टीले (sand dunes) या बजरी-सर्पण (gravel slide) जैसे स्थूल, स्थानान्तरी (shifting) आधार पर वे ही पौधे पाए जा सकते है जिनका मूल-तन्त्र विस्तृत एवं मजबूत हो, जैसे- टीलों की घास तथा पारोंचिया (Paronchia)। यदि मृदा बहु त ही मुलायम हो तो यहां ऐसे पौधो की स्थापना नहीं हो सकती जिन्हें मजबूत पकड़ (anchorage) की आवश्यकता हो। यदि मृदा की सरंध्रता अधिक हो तो इसमें से जल शीघ्र रिस जाता है और पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता।

3. **मृदा के रासायनिक संघटन का पौधों पर प्रभाव :** पौधों को वृद्धि एवं उनके अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी कच्चे पदार्थ मृदा द्वारा प्रदान किए जाते है। लीबिग (Liebig) के नियमानुसार, जो पोषक पदार्थ मृदा द्वारा प्रदान किए जाते है तथा जो पोषक पदार्थ न्यूनतम परिमाण में उपलब्ध होता है वहीं पौधों की वृद्धि को सीमित करता है। परन्तु मृदा एक कारक की वृद्धि किसी दूसरे कारक की कमी को आंशिक रूप से पूरा कर सकती है। इसके अतिरिक्त मृदा की लवणता अत्यधिक उच्च हो तो जल अधिक परिमाण में उपलब्ध होने पर भी प्राणियों के लिए अधिक उपयोगी नहीं होता है। इसके अवशोषण से उनके शरीरों में लवणों का एकत्रीकरण। इसलिए ऐसी मृदाओं को कार्यिकीय रूप से शुष्क मृदाएं कहते है।

4. **मृदा के रासायनिक संघटन का प्राणियों पर प्रभाव :** मृदा का रासायनिक संघटन प्राणियों को भोजन के माध्यम से अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित करता है। कैल्सियमी खोलों (Calcareous shells) युक्त थल घोंघे (land snails) उन मृदाओं में विशेष रूप से अधिक पाए जाते है जिनमें चूने का अंश अधिक हो। चूना-पत्थर (lime-stone) वाले प्रदेशों में हैलिक्स (Helix) के खोल का भार कुल भार का 35 प्रतिशत होता है जबकि जिन मृदाओं में चूने का अंश कम होता है, उन क्षेत्रों में रहने वाले हैलिक्स के खोल का भार कुल भार का केवल 20 प्रतिशत होता है। इसी प्रकार चूना-पत्थर वाली मृदाओं में स्तनधारियों की अस्थियां भी अपेक्षाकृत अधिक भारी होती है। केंचुए, कीट, कई मकडियां, सूत्रकर्मियां (nematodes), प्रोटोजोआ इत्यादि मृदा में उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ का उपयोग भोजन के स्त्रोत के रूप में

करते है। इसलिए मृदा में कार्बनिक पदार्थो की सान्द्रता प्रत्यक्ष रूप में उनके जीवन से सम्बन्धित होती है।

6. प्रवाह (Current)

जलीय प्राणी, जिस माध्यम में निवास करते है वह प्राय: पूर्णतया स्थिर नहीं होता। यह निरन्तर गतिमान रहता है। तालाबों और झीलों में रहने वाले प्राणी हवा द्वारा उत्पन्न धाराओं या प्रवाहों से प्रभावित होते है। अलवण-जल स्त्रोतों में जल की एक ही दिशा में गति सभी निवासी जन्तुओं के जीवन से संबंधित होती है। समुद्री किनारे पर उत्क्रमणीय (reversible) या ढ़ोलनी (oscillatory) ज्वारीय धाराएं (tidal currents) पाई जाती है। किनारे से दूर महासागर में स्थायी प्रवाहें उपलब्ध होती है। ये धाराएं वास्तव में महासागर के महान् धारा-तन्त्र का निर्माण करती है।

उत्तरी गोलार्द्ध में पारिस्थितिक महत्व की दो मुख्य महासागरीय धाराएं पाई जाती है-

1. **गल्फ स्ट्रीम -** जो संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी किनारे के साथ-साथ ऊष्णकटिबन्धीय (tropical) जल को उत्तर की ओर ले जाती है।
2. **जापानी धाराएं -** जो अपेक्षाकृत गर्म जल को एल्यूटिया व अलास्का के किनारें तक लाती है।

वायु एवं जल का प्रवाह और दबाव भी महत्वपूर्ण भौतिक कारक है।

वायु : वायु प्रवाह और संवेग भौगोलिक और भौतिक कारणों से स्थान-स्थान पर भिन्न होती है। वायु वेग कीटों के वितरण को स्पष्टतया प्रभावित करता है। कीड़ों का छितराव या बिखराव (dispersal) वायु वेग वाली दिशा में, विपरीत दिशा की तुलना में अधिक तीव्रता से होता है। आंधी और तूफानी हवांए किसी भी स्थान पर जन्तुओं और पौधों की जनसंख्या का अनुपात नष्ट कर सकती है जिसे आने वाले अनेकों वर्षो में दुबारा सुधार पाना असंभव होता है। हवाओं के वेग के कारण वनों की मूल संरचना भी बदल जाती है।

जल : जल प्रवाह और वेग (current and stream) जीवधारियों को प्रभावित करता है। सूक्ष्म पौधे और जीव-जन्तु तीव्र प्रवाह वाली नदियों और जलधाराओं में निवास नहीं कर पाते है। जल का तीव्र प्रवाह शैवाल और प्रोटोजोआ वर्ग के सूक्ष्म जीवों को बहा ले जाता है। अत: तीव्र प्रवाह वाले जल में सूक्ष्म जीवधारियों का वितरण सम्भव नहीं हो पाता है।

प्रवाह के जीवधारियों प्रभाव : जीवधारियों पर प्रवाह के निम्नलिखित प्रभाव देखने को मिलते है -

1. प्रवाह स्थानबद्ध प्राणियों के अस्तित्व को सम्भव कर देती है गतिशील जल उन प्राणियों तक आवश्यक पदार्थ लाकर देता है।
2. जलीय प्राणियों के निषेचन में भी प्रवाह सहायक होती है। जलीय प्राणियों के नर-युग्मों (male gametes) को जल मादा युग्मकों (female gametes) तक ले जाता है अथवा इन प्राणियों द्वारा विसर्जित दोनों युग्मकों को निषेचन के लिए पास-पास लाया जाता है।
3. प्रवाह स्थानबद्ध प्राणियों के वितरण में भी सहायक होती है तथा नवीन क्षेत्रों का उपनिवेशन भी धाराओं द्वारा सम्भव होता है। वितरण एवं नवीन क्षेत्रों के उपनिवेशन के लिए युग्मकों या भिंडको को धाराएं एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है।

4. कई समुद्री प्राणी-समूह जल की परिवहन-क्रिया द्वारा प्रभावित होते है। यह क्रिया स्थायी प्लवकीय समष्टियों को तथा नितल जीवजात (benthos) एवं तरणकों (nekton) के डिंभकों को प्रभावित करती है। वे जातियां अधिकतर समुद्री वातावरण में पाई जाती है जिनके डिंभक प्लवकीय होते है। अलवण-जलीय प्राणी (fresh water animals) भी जल-परिवंहन तन्त्र का उपयोग करते है परन्तु यह उपयोग समुद्री प्राणियों की तुलना में कम किया जाता है।

5. धाराएं प्राय: तोड़ने वाले या भंजक (breaking) तरंगों का बल उत्पन्न करती है जिसके फलस्वरूप झीलों के किनारे व महासागरीय तटों पर रहने वाले प्राणियों को बह जाने का खतरा निरन्तर बना रहता है। जल के साथ बहने वाले बर्फ या बालू के टुकड़े उपस्थित प्राणियों को अपघर्षित करने या रूद्ध करने की निरन्तर कोशिश करते है। लहरों के ऐसे चर्वणी प्रभाव का मुकाबला करने के लिए प्राणियों में विशेष अंग पाए जाते है।

7. दाब (Pressure)

वायुमण्डल में बढ़ती हुई ऊंचाईयों के साथ-साथ वायुमण्डलीय दाब घटता है। जल में बढती हुई गहराई के साथ द्रवस्थैतिक दाब बढ़ता है। दाब के ऐसे परिवर्तन प्राणियों के लिए गम्भीर भी हो सकते है।

I. वायु-दाब परिवर्तनों के प्रभाव : ऊँचाई के साथ दाब में होने वाली कमियां पौधों, अकशेरूकियों तथा निम्न श्रेणी के कशेरूकियों के लिए कम हानिकारक होती है जबकि समतापी प्राणियों में ऊंचाई पर कम दाब उपलब्ध ऑक्सीजन के परिमाण में कमी कर देता है जो उनके श्वसन में बाधक होती है। इसके अतिरिक्त वायु की विरलता के कारण उड़ान कठिन हो जाती है और फलस्वरूप पक्षियों जैसे उड़नशील कशेरूकियों का जीवन कठिन हो जाता है।

II. जलदाब का प्रभाव : जल में गहराई के साथ दाब में अत्यधिक वृद्धि होती है। समुद्र की गहराइयों में अत्यधिक जल दाब के कारण प्राणी कुचलता नहीं, क्योंकि उनके शरीरों के अन्दर का दाब बाह्य दाब के समान होता है।

(i) जलीय वातावरण में दाब परिवर्तन का प्रभाव वायु-गुहिकाओं (air cavities) युक्त एवं वायु गुहिकाओं रहित प्राणियों में अलग-अलग होते है। कई समुद्री प्राणियों में वायु-गुहिकाओं का अभाव होता है परन्तु इनके वितरण की भी निश्चित उदग्र सीमाएं (vertical limit) होती है। परिसर की ये सीमाएं सम्भवत: दाब के कारण नहीं बल्कि तापक्रम, प्रकाश या भोजन जैसे अन्य कारकों के कारण होती है। दाब में अत्यधिक परिवर्तनों से कुछ कार्यिकीय क्रियाओं की दर बदल जाती है। अकशेरूकियों, वाताशय (swim-bladder) रहित मछलियों और जीवाणुओं को जब कई सौ एट्मोस्फिर के दाब कोष्ठों (pressure chamber) में रखा जाता है तो वे निष्क्रिय हो जाते है या मर जाते है। मध्यम दाब परिवर्तन सामान्य प्राणियों को हानि नहीं पहुँचाते परन्तु बड़े परिवर्तन उनकी जीवन-क्रियाओं पर सूक्ष्म परिवर्तन डाल सकते है। सामान्यतया, अत्यधिक दाबों का अवनमनकारी (depressing) प्रभाव होता है। इसलिए महासागर की गहराई में जीवन की प्रगति धीमी होती है।

(ii) जलीय वातावरण में वाताशय-युक्त मछलियों एवं डुबकी लगाने वाले पक्षियों व स्तनधारियों जैसे वायु-गुहिकाओं-युक्त प्राणियों के लिए दाब परिवर्तन एक गम्भीर समस्या होती है। मछली

का वाताशय **उत्प्लावकता** (buoyancy) प्रदान करता है। अत: जब मछली नीचे की ओर गति करती है तो वाताशय संपीडित (compressed) होता है और जब यह ऊपर की ओर तैरती है तो वाताशय प्रसारित (expand) होता है। वाताशय-युक्त मछलियों में यह उदग्र गति एवं उस गति का दाब सीमित करता है जिससे वे एक गहराई से दूसरी गहराई तक तैरती है। डुबकी लगाने वाले पक्षियों, स्तनधारियों तथा स्थल-वासियों के लिए जल में बढ़े हुए दाब की समस्या के साथ श्वसन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। डुबकी लगाते समय जब तक ये प्राणी जल के अन्दर रहते है, उन्हें ऑक्सीजन के नवीनीकरण के बिना काम चलाना पड़ता है।

जल का दबाव विशेषकर गहरे स्त्रोतों जैसे झीलों, समुद्रों और महासागरों में अधिक दिखाई देता है। जल दबाव समुद्री वातावरण में लम्बवत वितरण (vertical distribution) और जन्तुओं की संरचना दोनों को प्रभावित करता है। समुद्र की ऊपरी सतह पर जन्तुओं का जनसंख्या घनत्व सर्वोच्च होता है जबकि गहराई के साथ बढ़ते दबाव के कारण यह घटता जाता है और अन्त में समुद्र की तलहटी में यदाकदा ही कोई जन्तु पाया जाता है। अधिक गहरे समुद्री क्षेत्र में भारी दबाव के कारण जन्तुओं का शरीर संपीडित (compressed) और कोमल (fragile) हो जाता है।

8. गुरूत्व (Gravity)

गुरूत्व-बल पृथ्वी के केन्द्र से दूरी के साथ-साथ बदलता है परन्तु यह परिवर्तन उन प्राणियों को प्रभावित करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण नहीं होता जो भूमध्य रेखा के ध्रुवों तक यात्रा करते है या उदग्र दिशा में गति करते है।

वातावरण पर गुरूत्व के प्रभाव -

1. गुरूत्वीय खिंचाव महासागरों की अपेक्षा महाद्वीपों पर कमजोर होता है। इस कारण महाद्वीपीय उभारों (protuberances) में या उनके नीचे पाए जाने वाले पदार्थो की अपेक्षा महासागरों के नीचे विद्यमान पदार्थ भारी होते है। समस्थितिक सन्तुलन को स्थापित करने में गुरूत्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए विश्व के आवासों के प्राथमिक विभाजन को स्थापित करने में गुरूत्व का मौलिक महत्व रहा है।
2. गुरूत्व से वातावरण में स्तरण हो जाता है। पृथ्वी के जिन क्षेत्रों से कार्बन डाइऑक्साइड मुक्त होती है, वहाँ अधिक घनत्व के कारण यह गैस निम्नतर वायु में स्थान ले लेती है। ऐसे क्षेत्रों में प्राणी-जीवन असम्भव हो जाता है।
3. जलीय वातावरण में, गर्म व अलवण जल (fresh water) की अपेक्षा प्राणियों में गुरूत्व के कारण ठण्डे व लवण-युक्त जल (salty water) के नीचे रहने की प्रवृति अधिक पाई जाती है।
4. गुरूत्व, वायु या जल में निलम्बित ठोस कणों के चयनात्मक स्थिरण (selective settling) के लिए उत्तरदायी होता है। हल्के पदार्थो की अपेक्षा भारी पदार्थो में शीघ्र स्थिर होने की प्रवृति होती है।

5. गुरूत्व के खिंचाव के कारण ही महासागर की गहराइयों में पाए जाने वाले प्राणियों को भोजन प्राप्त होता है। ऊपरी स्तरों से सम्पूर्ण या विघटनशील शरीरों या उत्सर्ग के डूबने से ही उन क्षेत्रों के प्राणियों को भोजन प्राप्त होता है। गुरूत्व के खिंचाव के कारण ही वर्षा की बँदे गिरती हैं इसी के कारण जल निम्न स्तरों की तरफ बहता है। बहने वाला जल जो कार्य करता है, वह वास्तव में गुरूत्व-बल के फलस्वरूप ही होता है।

प्राणियों पर गुरूत्व का प्रभाव :

1. विन्यास (orientation) : प्राणी भू-ऋणात्मक (geo-negative), भू-धनात्मक (geopositive) या अनुप्रस्थ (transverse) हो सकते है। यदि प्राणी पृथ्वी के गुरूत्व केन्द्र से दूर हो तो वह भू-ऋणात्मक कहलाता है, यदि वह उस केन्द्र की तरफ वितरित व इकट्ठा हो तो उसे भू-धनात्मक कहते है। यदि वह गुरूत्व के खिंचाव की दिशा के समकोण पर विन्यासित हो तो वह अनुप्रस्थ कहलाता है।

2. संरचना पर प्रभाव : वायु की अपेक्षा जल में प्राणी के भार को साधने की अधिक क्षमता होती है। इसलिए जलीय जन्तु अपने स्थलीय सम्बन्धियों की अपेक्षा अधिक बड़े होते है। जलीय जन्तुओं पर गुरूत्व का खिंचाव निरन्तर पड़ता रहता है। यदि वे प्लवन-युक्तियों (floatation devices) को विकसित न करें या गुरूत्व के खिंचाव को तैरकर प्रतिसन्तुलित (counter-balance) न करें तो वे डूब जाएंगे।

प्राणियों के विभेदी उदग्र वितरण (differential vertical distribution) में भी गुरूत्व का योगदान रहता है। जल के ऊपरी प्रदेशों में पाए जानें वाले प्राणी अपेक्षाकृत छोटे होते है।

3.4.2 रासायनिक कारक (Chemical Factors)

निम्न मुख्य रासायनिक कारक जैविक क्रियाओं को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं।

(1) वायुमण्डल और वायुमण्डलीय गैसें (Atmosphere and Gases)

वायु के साधारण तत्वों में लगभग 20% ऑक्सीजन, 79% नाइट्रोजन तथा 0.03% कार्बन -डाइ- ऑक्साइड तथा शेष निष्क्रिय गैसें होती हैं। इनके अतिरिक्त मौसम के अनुसार जलवाष्प भी वायु में रहती है। निष्किय गैसों को छोडकर सभी गैसें महत्वपूर्ण उपापचयज (metabolites) के रूप में उपयोगी होती हैं तथा वायु के रूप में समस्त भूमण्डल के चारों ओर सदैव चक्कर काटती रहती हैं।

ऑक्सीजन जीवधारियों के लिये अति आवश्यक गैस है। स्थलीय एवं जलीय प्राणियों का श्वसन ऑक्सीजन से होता है। यही ऑक्सीजन आन्तरिक श्वसन में कार्बोहाइड्रेट्स या शर्करा का उपापचय करके जैविक कार्यो के लिये ऊर्जा (ATP) उत्पन्न करती है। बिना ऑक्सीजन के जीवन कुछ पलों में समाप्त हो सकता है। जल में ऑक्सीजन या तो प्रकाश संश्लेषण से या वायुमण्डल से मिलकर घुल जाती है। ऑक्सीजन स्थलीय और जलीय जन्तुओं के लिये एक महत्वपूर्ण सीमांतकारी कारक है।

कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की सहायता से पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा स्वयं अपने लिये और जन्तुओं के लिये भोजन का निर्माण करते हैं। परन्तु वायु में कार्बन -डाइ -ऑक्साइड की अधिकता जन्तुओं के लिये प्राणघातक सिद्ध होती है। जल में अत्यधिक घुलनशील होने के

कारण यह जल से मिलकर कार्बोनिक अम्ल (H2CO3) बनाती है। यह अम्ल आसपास के चूने (lime) से प्रतिक्रिया करके कार्बोनेट बनाता है। ये यौगिक समुद्र में कार्बन डाई ऑक्साइड के सुरक्षित भण्डार का काम करते हैं। परन्तु जल में इस गैस की अधिकता से मछलियाँ और जन्तु मर जाते हैं।

नाइट्रोजन गैस का प्राकृतिक चक्र अनेकों रासायनिक क्रियाओं के माध्यम से जन्तुओं का निर्माण करने के साथ-साथ ऑक्सीजन की ज्वलनशीलता पर भी नियंत्रण रखता है।

(2) पीएच (pH) या हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता

भूमण्डल पर सभी वस्तुएँ अम्लीय (acid) या क्षारीय (alkaline) गुणों वाली होती है अन्यथा वे उदासीन (neutral) होती है। अम्लीयता या क्षारीयता का गुण वस्तु विशेष में हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता पर निर्भर करता है और इसे (pH) से दर्शाते हैं।

pH 7.0 उदासीन बिन्दु है और 7.0 से ऊपर क्षारीयता तथा 7.0 से नीचे के अंक अम्लीयता की तीव्रता बताते हैं। पीएच भी जन्तुओं के वितरण में महत्वपूर्ण सीमान्तकारक है। मच्छर के लार्वा pH 5.0 (हल्का अम्लीय) या इससे नीचे पीएच वाले जल में अधिकतर मिलते हैं। परन्तु मोलस्का वर्ग के घोंघे, सीप आदि जन्तु पीएच 7.0 - 8.0 या इससे अधिक पीएच अर्थात क्षारीय जल और मिट्टी में रहना पसन्द करते हैं। अल्प पीएच वाली अम्लीय मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी होती है और इसमें उत्पादन भी कम होता है।

(3) मध्यम के पोषक तत्व

किसी भी जैविक माध्यम के पोषक तत्व जीवधारियों के विकास, वृद्धि और वितरण पर प्रभाव डालते हैं। पोषक तत्वों के उपयोग की मात्रा के आधार पर इन्हें दो उप-समूहों में बाँटा गया है :-

(अ) वृहत पोषक तत्व (Macro-nutrients)

इस उप-समूह के पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। अत: इनकी अधिक मात्रा में उपलब्धि आवश्यक है। जैसे, रीढ की हड्डी वाले (vertebrates) जन्तुओं की हड्डियों के विकास और वृद्धि के लिये तथा मौलस्का वर्ग में उनकी सीप या खोल (shell) बनाने के लिये भारी मात्रा में कैल्शियम का उपयोग होता है। अत: अपनी विकास और वृद्धि के लिये ये जन्तु उन्हीं क्षेत्रों में रहते हैं, जहाँ प्रचुर मात्रा में कैल्शियम उपलब्ध होता है।

(ब) सूक्ष्म पोषक तत्व (Micro-nutrients)

कुछ पोषक तत्व जन्तुओं व पौधों के लिये अत्यधिक आवश्यक हैं। इनका उपयोग अति सूक्ष्म मात्रा में होता है। ऐसे तत्वों को सूक्ष्म पोषक तत्व कहा जाता है। ये तत्व अपनी अल्प मात्रा में भी अधिक प्रभावकारी और सीमान्तकारी कारक हैं। यह कई प्रकार से हारमोन्स तथा विटामिन्स के निर्माण और स्त्राव पर नियंत्रण करके विभिन्न जैविक क्रियाओं का संचालन और नियंत्रण करते हैं। अधिकतर जन्तुओं में शरीर के उचित विकास और नियमित उपापचय क्रियाओं के लिये थायरॉइड (Thyroid) नामक ग्रन्थि का थाइरॉक्सिन हारमोन आवश्यक है। परन्तु इस हारमोन का निर्माण आयोडीन की अल्प मात्रा पर निर्भर करता है। साधारणत: आयोडीन पीने के पानी या खाने के नमक में प्राकृतिक रूप से अति सूक्ष्म मात्रा में पायी जाती

है। परन्तु कुछ स्थानों पर यह सूक्ष्मपोषक प्राकृतिक साधनों में उपलब्ध न होने पर वृद्धि, विकास तथा उपापचय की क्रियाओं का सन्तुलन बिगड जाता है जो प्राणघातक भी हो सकता है। इन क्रियाओं में कोबाल्ट (Co) की अति सूक्ष्म मात्रा कुछ कार्बनिक यौगिकों के सहयोग से विटामिन बी-12 (B12)का निर्माण करने में धातु उत्प्रेरक का कार्य करता है। इसकी अल्प मात्रा विटामिन बी-12 की उपापचय के लिये आवश्यक है।

इस प्रकार मैंगनीज, लोहा, क्लोरीन, जिंक, वैनेडियम आदि सूक्ष्मपोषक प्रकाश संश्लेषण के अविभाज्य तत्व हैं। इनके अतिरिक्त मॉलिब्डेनम, बोरॉन, कीपर, कोबाल्ट तथा सिलिका आदि मिलाकर कुल 10 सूक्ष्मपोषक तत्व पौधों और जन्तुओं दोनों के लिये समान रूप से महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं।

3.5 जैविक घटक (Biotic Factors)

जैविक कारक पर्यावरण के जीवित अंश होते हैं। प्रकृति में कोई भी सजीव दूसरे सजीवों से होने वाले प्रभावों से स्वतंत्र नहीं है। सजीवों के अस्तित्व के लिये, भोजन की प्राप्ति, आवास एवं प्रजनन क्रियाओं का होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये एक प्राणी, दूसरे प्राणी पर, एक प्राणी-दूसरे पादप पर, एक पादप-दूसरे प्राणी पर निर्भर रहता है। अत: अजैविक कारकों के साथ-साथ जैविक कारक भी सजीवों की जैविक क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं। किसी भी कारक की सफलता के लिये जैविक कारकों के मध्य कुछ विशिष्ट संबंधों के आधार पर अंत:क्रियाएँ (interactions) होती रहती हैं। ये अन्तःक्रियाऐ सहयोगी (cooperative) या असहयोगी (non-cooperative) के रूप में होती हैं।

प्राणियों में पाये जाने वाले आपसी संबंधों को दो वर्गो में विभाजित किया गया है :-

(1) अन्त: जातीय संबंध

(2) अन्तरजातीय संबंध

3.5.1 अन्त: जातीय संबंध (Intraspecific relation) - इसके अन्तर्गत प्राणी का अपनी ही जाति के सदस्यों के साथ संबंध स्थापित होता है। प्राणियों में पाया जाने वाला अन्त: जातीय संबंध सहयोगी अथवा असहयोगी प्रकार का हो सकता है।

(अ) सहयोगी अन्त: जातीय संबंध (Cooperative intraspecific relations)

इस प्रकार के पारस्परिक संबंधों में एक ही प्रजाति के विभिन्न सदस्य एक दूसरे को विशेष सहयोग देकर इन्हें सफल बनाने में अपना योगदान करते हैं। यह सहयोग निवहीकरण, पैतृक रक्षण आदि के रूप में पाया जाता है।

(1) निवहीकरण (colonization) : सर्वप्रथम आपसी सहयोग से निवहीकरण की प्रक्रिया को प्रोटोजोआ समुदाय ने अपनाया। निवहीकरण की सहयोगी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अनेकों प्रोटोजोआ जातियों ने अपनी सुरक्षा के साथ-साथ जैव-विकास क्रिया को भी आगे बढाया। निवहीकरण की प्रवृति से ही स्पन्ज समूह (Porifera) का विकास हुआ और कोशिकाओं में श्रम विभाजन प्रारम्भ हुआ जिससे आधुनिक जीवों की उत्पत्ति सम्भव हो रनकी। अत: निवही की घटना ने न केवल कुछ जातियों के बल्कि सम्पूर्ण प्राणी जगत के विकास में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण जैविक कारक के रूप में भूमिका निभाई है।

(2) **समूहीकरण (aggregation) :** समूहीकरण एक अस्थाई घटना है जिसमें विभिन्न प्राणी कुछ विशेष बाह्यपरिस्थितियों में मुकाबला करने के लिये एकत्रित हो जाते हैं। समूहीकरण की घटना दो प्रकार की होती है -

(1) अस्थाई समूहन (Temporary aggregation)

(2) स्थाई समूहन (Permanent aggregation)

(क) **अस्थाई समूहन (Temporary aggregation) :** इस प्रकार का समूहन अस्थाई धनात्मक अनुक्रिया है, जिसमें एक जाति में दूसरी जाति के सदस्यों को भी शामिल किया जाता है। उदाहरण काली चिडिया, मधुमक्खी, बर्र रात्रि में विश्राम के समय साथ-साथ आती हैं जबकि दिन में एक दूसरे से अलग-अलग हो जाती हैं।

(ख) **स्थाई समूहन (Permanent aggregation) :** इस प्रकार का समूहन अत्यधिक जटिल अत्यधिक विकसित होता है। उदाहरण : दीमक तथा चीटियां इनमें वर्ण व्यवस्था पाई जाती है। समूह का प्रत्येक सदस्य संरचनात्मक एवं क्रियात्मक रूप से भिन्न होता हैं। इनमें आनुवांशिकी द्वारा निर्धारित आपसी सहयोग क्री प्रवृत्ति पाई जाती है। इस समूहन में प्राणी भोजन के सामूहिक क्षेत्रों पर एकत्रित होते हैं लेकिन अपनी ही जाति के दूसरे सदस्यों से अपना प्रजनन स्थान बचाये रखते हैं।

अस्थाई व स्थाई समूहन के लाभ :

- **उत्तरजीविता (Survival value) :** प्राणियों में भोजन, प्रजनन तथा सुरक्षा हेतु समूहन की घटना होती है। इस समूहन के कारण विभिन्न पारिस्थितिकीय आपदाओं से सामना आसानी से हो जाता है। कीटों तथा विभिन्न कशेरूकी प्राणियों में सर्दियों में समूहन के कारण ऊष्मा के संरक्षण में सहायता मिलती है।
- **सुरक्षा (Protection) :** समूहन के कारण भक्षक (predator) प्राणियों से रक्षा हो जाती है। समूहन, नवजात शिशुओं की सुरक्षा में सहायक होता है।
- **भोजन का एकत्रण (Food gathering) :** समूहन के कारण भोजन के स्त्रातों को ढँढने तथा एकत्र करने में सहायता मिलती है। समुहन के कारण खाद्य स्त्रोतों का पता लगाने में कम समय लगता है। किसी शिकार को पकडने में भी समूहन सहायक होता है।
- **लैंगिक प्रजनन (Sexual reproduction) :** लैंगिक प्रजनन हेतु दो या अधिक सजीवों का समूहन आवश्यक होता है। नर मेढक द्वारा उत्पन्न ध्वनि के कारण मादा मेढक, तालाब की तरफ गमन करती है तथा प्रजनन में भाग लेती है।
- **ताप संरक्षण (Heat/thermal conservation) :** अत्यधिक जाडे में ताप की गिरावट से निपटने के लिये अक्सर अनेकों कीट, चिडिया और पशु आदि समूह बनाकर रहते हैं। सामूहिक रूप से श्वसन द्वारा उत्पन्न ताप जाडे का मुकाबला करने में सहयोग देता है।
- **घौंसलों का निर्माण (Construction of nests) :** प्राणियों के समूहन के कारण विभिन्न संरचनाओं के निर्माण में सहायता मिलती है। सामाजिक कीटों में घौंसलों का निर्माण समूहन के कारण होता है। पक्षियों में भी नेपोटेस्टिक व्यवहार पाया जाता है जिसमें घौंसलों के निर्माण

से लेकर प्राणी की सम्पूर्ण उत्तरजीविता का दायित्व, प्रजाति के विभिन्न सदस्यों के द्वारा होता है।

- **श्रम विभाजन (Division of Labour) :** समूहन के कारण प्राणियों में श्रम विभाजन का विकास हुआ, साथ ही इनमें संरचनात्मक, क्रियात्मक एवं व्यावहारिक विशेषताएँ भी उत्पन्न हुई। जैसे चींटी तथा दीमक में वर्ण व्यवस्था पाई जाती है। अलग-अलग कार्यो का निष्पादन, अलग-अलग वर्ण के सदस्यों द्वारा किया जाता है।
- **आक्रमणकारी प्रवृत्ति (Offensive tendency) :** कुछ प्राणी अपनी जाति की सुरक्षा के लिये सदैव झुण्ड में रहते हैं। उदाहरणार्थ टिड्डियों के विशाल झुण्ड, फसलों को व्यापक पैमाने पर नुकसान पहुँचाते हैं। इसी प्रकार अन्य प्राणी भी पारस्परिक सहयोग के द्वारा विपरीत परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम होते हैं।

(3) **सामाजिक संगठन (Society formation) :** कुछ प्राणियों में अत्यधिक विकसित समाजिक संगठन व समाज निर्माण की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रवृति के कारण अपनी जाति की सुरक्षा, उत्थान एवं सफलता में सहायता मिलती है। अत्यधिक विकसित प्रकार का सामाजिक संगठन मधुमक्खी, चींटी, दीमक, बर्र, वास्प आदि में देखने को मिलता है।

(4) **पैतृक संरक्षण (Parental care) :** पैतृक रक्षण का गुण सभी प्राणियों में समान रूप से नहीं पाया जाता है। ज्यों-ज्यों प्राणी का संगठन स्तर व आकार बढता जाता है, इनमें पैतृक रक्षण की दर भी बढती जाती है। पक्षियों तथा स्तनधारियों में पैतृक रक्षण की घटना सर्वाधिक विकसित होती है। पैतृक रक्षण की परिघटना विभिन्न प्राणियों के विकास एवं उत्तरजीविता में एक महत्वपूर्ण जैविक कारक के रूप में कार्य करती है। जिन प्राणियों में पैतृक रक्षण का अभाव होता है, उनमें अपनी प्रजाति को विलुप्त होने से बचाने के लिये, स्वयं की सारी शक्ति प्रजनन क्रियाओं पर लगानी पडती है ताकि अधिक से अधिक संख्या में संतति का निर्माण हो क्योंकि पैतृक रक्षण के अभाव में अधिकांश संतानों की मृत्यु हो जाती है, केवल कुछ ही संतानें जीवित रहने में सफल हो पाती है।

(ब) **असहयोगी अन्त:जातीय संबंध (Non-cooperative intraspecific relations)-** इस प्रकार के सम्बन्धों में एक प्रजाति के सदस्य आपस में सहयोग नहीं करते हैं। यह असहयोगी संबंध भोजन स्पर्द्धा तथा सीमित शत्रुता के रूप में पाया जाता है।

1. **भोजन स्पर्द्धा (Food competition) :** सभी प्राणियों में शरीर की वृद्धि, मरम्मत तथा नियंत्रण के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। अलग-अलग प्रजातियों में भोजन अलग-अलग होता है। एक ही प्रजाति के सदस्यों का भोजन, एक समान पदार्थो का बना होता है अत: इनमें भोजन के लिये स्पर्द्धा पाई जाती है। इस स्पर्द्धा के कारण आपसी सहयोग पर विपरीत प्रभाव पडता है। भोजन के लिये स्पर्द्धा शाकाहारी प्राणियों की अपेक्षा माँसाहारी प्राणियों में अधिक होती है। इसी कारण शाकाहारी प्राणी बडे-बडे झुण्डों में पाये जाते हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों में इनका भौगोलिक वितरण घनी जनसंख्या के रूप में होता है, जैसे गायें, हिरण, भेड, भैंस आदि झुण्ड के रूप में रहते हैं। माँसाहारी प्राणियों में अधिक स्पर्द्धा के कारण इनका भौगोलिक वितरण भी अधिक छितरा होता है। जैसे बडे-बडे घने जंगलों में शेर, चीते आदि अधिकांशत: अकेले

या अधिक से अधिक अपने परिवार में मादा और छोटे बच्चों के साथ पाये जाते हैं। परन्तु ये प्राणी अपने भोजन क्षेत्र में अन्य सदस्यों को बर्दाश्त नहीं करते और सामना होने पर मिड जाते हैं। अन्तत: दोनों में से एक या तो क्षेत्र छोडकर भाग जाता है अथवा मारा जाता है। अत: इस स्पर्द्धा का इन प्राणियों की जनसंख्या और वितरण पर विपरीत प्रभाव पडता है।

2. **सीमित शत्रुता (Definite Hostility) :** सभी प्राणियों में अपनी जाति के सदस्यों के प्रति स्नेह तथा वैमनस्य की भावना, प्राकृतिक स्वभाव में पाई जाती है। यही स्वभाव, स्वजातिय सदस्यों में भोजन, आवास एवं प्रजनन के अधिकारों के लिये कई बार संघर्ष का रूप ले लेता है। यदि कोई श्रमिक मधुमक्खी भूल से किसी अन्य छत्ते में पहुँच जाये तो उस छत्ते की मुधमक्खियाॅ तुरन्त हमला करके उसे मार डालती हैं। पक्षियों एवं स्तनधारियों में यह सीमित शत्रुता अधिक स्पष्ट होती है। कुछ माँसाहारी प्राणी इस प्रवृत्ति के कारण अपने ही बच्चों को भक्षण कर जाते हैं।

सीमित शत्रुता का प्राणियों की विभिन्न क्रियाओं पर प्रभाव पडता है। जिन जीवधारियों में सीमित शत्रुता कम होती है, उनमें समूहीकरण और निवहीकरण अधिक होता है तथा उनका वितरण और जनसंख्या घनत्व भी अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसके विपरीत शत्रुता आधिक होने पर उग्रता और संघर्ष का वातावरण संबंधित जातियों के वितरण और जनसंख्या घनत्व पर विपरीत प्रभाव डालता है।

3.5.2 अन्तरजातीय सम्बन्ध (Interspecific relation)

प्रकृति में पाये जाने वाले अधिकांश प्राणी स्वतंत्रजीवी होते हैं। फिर भी ये प्राणी अपनी प्रजाति के सदस्यों के अलावा, दूसरी प्रजाति के सदस्यों के साथ भी अंतःक्रियाएँ करते हैं। दो या दो से अधिक प्रजातियों के मध्य पाये जाने वाले संबंध को अन्तरजातीय संबंध (Interspecific relation) कहते हैं। ये संबंध दोनों ही जातियों के लिये (1) लाभदायक, (2) हानिकारक या (3) उदासीन प्रकार के हो सकते हैं। अन्तरजातीय संबंधों की तीन श्रेणियां होती है -

(अ) **सहजीविता (Symbiosis) :** इसमें एक अथवा दोनों ही प्रजातियों को लाभ पहुँचता है तथा किसी भी सदस्य को हानि नहीं पहुँचती है।

(ब) **विरोधिता (Antagonism) :** इसमें कम से कम एक प्रजाति को नुकसान होता है।

(स) **उदासीनता (Neutralism) :** इसमें कोई भी जाति किसी को नुकसान नहीं पहुँचाती है और न ही कोई लाभ होता है। इन संबंधों को निम्न तालिका में दर्शाया गया है -

जीवों के अन्तरजातीय सम्बन्ध

सम्बन्ध का प्रकार	**जाति 'अ'**	**जाति 'ब'**	**सम्बन्ध का प्रभाव**
सहयोगी)Cooperative(			
1. उदासीनता)Neutralism)	0	0	कोई भी जाति किसी को प्रभावित नहीं करती।
2. सहपरोकारिता)Mutualism)	+	+	दोनों का पारस्परिक आदानप्रदानिक - लाभ।
3. सहभोजिता	+	0	'अ' सहभोजी के लिये लाभकारी व 'ब'

	)Commensalism)			पोषक अप्रभावित
असहयोगी)Non-cooperative(				
4.	प्रतिजीविता)Antibiosis)	-	0	'अ' पर प्रतिकूल प्रभाव, लेकिन 'ब' अप्रभावित।
5.	परजीविता)Parasitism(	+	-	'अ' परजीवी के लिये लाभकारी व 'ब' पोषक के लिये हानिकारक।
6.	परभक्षण)Predation)	+	-	'अ' परभक्षक के लिये लाभकारी लेकिन छू' परभक्षित के लिये हानिकारक।
7.	प्रतियोगिता)Competition)	-	-	एक या दूसरी जाति के लिये हानिकारक

नोट : ऊपर दी गई सारणी में '+' लाभकारी प्रभाव, '-' हानिकारक प्रभाव व '0' अप्रभावी लक्षण को दर्शाता है।

(अ) सहजीविता (Symbosis) : विभिन्न प्रजातियों के मध्य सहजीवी संबंध भोजन, आवास, आधार अथवा परिवहन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु होते हैं। सहजीवी संबंध सतत (continuous), क्षणिक' (transistory), अविकल्पी (obligatory) या विकल्पी (facultative) प्रकार के हो सकते हैं। सहजीविता को भी दो प्रकार में बाँटा जा सकता है

(1) सहोपकारिता (mutualism) (2) सहभोजिता (commensalism)

1. सहोपकारिता (Mutualism) : प्रकृति में अनेक प्रजातियाँ अन्य प्रजातियों के सहयोग से अपना जीवन निर्वाह करती हैं। इस संबंध में दोनों ही प्रजातियाँ एक दूसरे को लाभ पहुँचाती हैं। निर्भरता के अनुपात के आधार पर सहोपकारिता दो प्रकार की होती है -

(क) अविकल्पी सहोपकारिता (obligatory mutualism)

(ख) विकल्पी सहोपकारिता (facultative mutualism)

(क) अविकल्पी सहोपकारिता (Obligatory mutualism) - यह सहोपकारिता एक प्रकार का स्थाई संबंध है जिसमें दोनों सदस्य आपस में सघनता से जुडे रहते हैं लेकिन कार्यिक रूप से एक दूसरे से आंशिक रूप से स्वतंत्र होते हैं। यह सहोपकारिता पादपों तथा प्राणियों में भी पाई जाती है। अविकल्पी सहोपकारिता उदाहरण हैं -

(i) राइजोबियम व लेग्यूमिनस मूल के बीच सहपरोपकारिता (mutualism)

(ii) सहपरोपकारिता का अन्य उदाहरण जिसमें हरमिट केंकडा गैस्ट्रोपोड शैल के अन्दर रहता है व इस शैल के ऊपर समुद्री एनीमोन (एडम्सिया) रहता है।

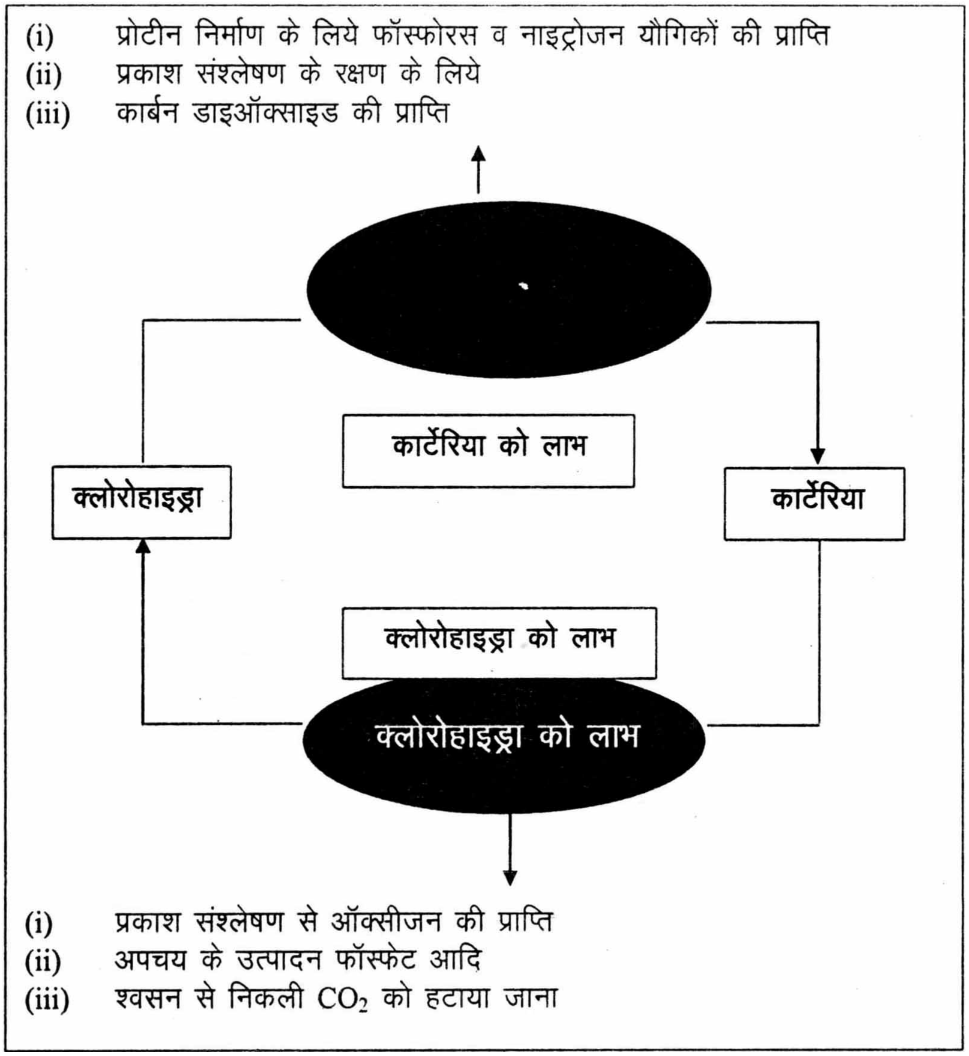

चित्र 6.2 : क्लोरोहाइड्रा (Chlorohydra) तथा हरे शैवाल कार्टिरिया (Carteria) के मध्य सहजीविक संबंध

(ख) विकल्पी सहोपकारिता (Facultative mutualism) : विकल्पी सहोपकारिता में सहयोगी पक्ष एक-दूसरे को लाभकारी सहयोगतो देते हैं, परन्तु दोनों के अलग हो जाने पर उनके जीवन को कोई खतरा उत्पन्न नहीं होता है। इस तरह के सहवास को आदि सहजीवन या मूल सहयोग भी कहा गया है। उदाहरण:

(i) गाय-भैंसों की त्वचा पर साधारणत: परजीवी कीडे चिपके रहते हैं। काग या कौआ आदि कुछ चिडियाँ इनके शरीर से परजीवी कीडों को छुडा कर खा जाते हैं। चिडियों को भोजन लाभ होता है और बदले में पशु परजीवी कीडों के शोषण और त्वचीय उत्तेजना से मुक्ति पाते हैं।

(ii) मगरमच्छ मछलियों का भोजन करने के बाद नदी किनारे रेत में आराम करते समय अपना मुँह फाड कर लेटा रहता है। नदी किनारे मछली खाने वाली चिडियाँ मगरमच्छ के मुँह में बैठकर उसके दाँतों में फँसे मछलियों के टुकड़े निकाल कर खाती हैं। मगरमच्छ को चिड़ियों के इस

सहयोग से इतना आनन्द मिलता है कि वह बड़े आराम से तब तक मुँह खोले रहता है, जब तक चिडियाँ सारे दाँत साफ करके सुरक्षित उड नहीं जातीं।

2. **सहभोजिता (Commensalism) :** जब दो भिन्न जातियों के प्राणी एक साथ जीवन यापन करे लेकिन दोनों के मध्य किसी प्रकार का कार्यिकीरा संबंध न हो तो ऐसे प्राणी सहभोजी कहलाते है। इस घटना को सहभोजिता (commensalism) कहते है। इस संबंध एक सदस्य को तो लाभ होता है लेकिन दूसरे सदस्य को न तो कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि। भोजन के अलावा सुरक्षा, समर्थन, आश्रय आदि सहयोग को सहभोजिता में शामिल किया गया है। इसके दो प्रकार निम्न हैं -

(i) **सतत सम्पर्क युक्त सहभोजिता (Commensalism with continuous contact) :** इस सहभोजिता में परपोषी के साथ सम्पर्क स्थाई प्रकार का होता है। यह सहभोजिता भी दो प्रकार की होती है -

(i) **बाह्य सहभोजिता (ectocommensalism) -** कुछ अधिपादप जैसे ओर्किड (Orchid) तथा आद्रताशोषी पादप (hygroscopic plant) पेडों की शाखाओं तथा टहनियों पर उगते हैं। ये अधिपादप (epiphyte) पौधों को केवल सम्पर्क एवं आवास हेतु उपयोग में लेते हैं, लेकिन अपना भोजन स्वयं प्रकाश संश्लेषण द्वारा बनाते हैं। चूँकि ये अधिपादप परपोषी के ऊतकों से अपना पोषण नहीं लेते हैं अत: यह संबंध बाहा सहभोजिता कहलाता है।

(ii) **अन्त:सहभोजिता (endocommensalism) -** कुछ हरित शैवाल जैसे बेसिक्लेडिया (Basicladia), प्रोटोजोआ, कवक, मृतोपजीवी जीवाणु, उच्च स्तरीय प्राणियों तथा पौधों के ऊतकों के अंदर रहते हैं। इनसे परपोषी को कोई हानि नहीं होती है। उदाहरण : मनुष्यों की आंत्र में पाया जाने वाला E. coli

3. **असतत सम्पर्क युक्त सहभोजिता (Commensalism without continuous contact) -** इस प्रकार की सहभोजिता में दोनों सदस्य अस्थाई रूप से एक दूसरे के साथ संबंधित होते हैं। इस प्रकार की सहभोजिता, गिलहरी, बंदर, वृक्ष, मेढक, साँप, विभिन्न पक्षी, कीटों तथा पौधों के मध्य पाई जाती है। इनमें यह संबंध आवास तथा प्रजनन स्थल हेतु होता है।

उदाहरण (1) : चूषक मछली (Echineis) अपने चूषकों की सहायता से शार्क मछली की अधर सतह के साथ चिपक जाती है। शार्क के साथ-साथ चूषक मछली का भी भ्रमण हो जाता है तथा शार्क को इस सम्पर्क में किसी प्रकार का कोई नुकसान नहीं होता है।

उदाहरण (2) : पोलीनिक्स (Polynyx-crustacean decapod), समुद्री कीटोप्टेरस (chaetopterus) के U आकार के बिल में रहता है। यह कृमि के पेरापोडिया की पम्पिग क्रिया के कारण बिल में आने वाले पानी से भोजन तथा ऑक्सीजन को प्राप्त करता है। इस प्रकार कुछ पायलोट मछलियाँ, शार्क के पीछे-पीछे चलती हैं तथा भक्षकों से बच जाती हैं। कुछ मछलियाँ जैली फिश (Jelly fish) के छाते के नीचे आवास करती हैं। कुछ प्राणी वलेला (vellela) के स्पर्शकों में आवास करते हैं।

(ब) असहयोगी अन्तरजातीय कारक (Non-cooperative Interspecific Factors)

एक ही भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाली अनेकों जातियां समान भोजन पर निर्भर करती है। अत: इनमें भोजन स्पर्द्धा का होना एक स्वाभाविक क्रिया है। जब समान भोजन पर निर्भर करने वाली जातियों के सदस्यों की जनसंख्या किसी क्षेत्र में बढ़ जाती है, तब स्पर्द्धा भयंकर रूप धारण कर लेती है। फलस्वरूप प्राणियों में संघर्ष होने लगता है। इसमें कुछ कमजोर जातियों का भोजन मजबूत जाति के सदस्य छीनकर या तो उन्हें लड़ाई में मार देते है या ये भूख से स्वयं मर जाते है। ऐसी परिस्थिति में कमजोर प्राणी अन्य सुरक्षित क्षेत्रों की ओर पलायन करने लगते है या संघर्ष करने के लिए शारीरिक क्षमताएं उत्पन्न करते है। अत: इस स्पर्द्धा के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रभाव पड़ते है-

1. जीवसंख्या नियंत्रण।
2. जातियों (species) का विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में पलायन या वितरण।
3. अन्ततः नई उपजातियों का जैव-विकास।

भोजन स्पर्द्धा में मृत्यु, निवास स्थानों, घोंसलों आदि का विनाश और भोजन की उपलब्धि की कमी का सीधा प्रभाव जनसंख्या या समष्टि नियंत्रण पर पड़ता है।

(ब) विरोधिता (Antagonism) : विभिन्न जातियों के सदस्यों के मध्य पाए जाने वाले विरोधी सम्बन्धों में एक अथवा दोनों ही सदस्यों को हानि होती है। ये सम्बन्ध प्राय: चार प्रकार के होते हैं -

1. प्रतिजीविता (Antibiosis)
2. परभक्षण (Predation)
3. परजीविता (Parasitism)
4. प्रतिस्पर्धा (Competition)

1. प्रतिजीविता (Antibiosis) : विभिन्न प्राणियों द्‌वारा उत्पन्न हानिकारक स्त्राव, दूसरे प्राणियों के लिए हानिकारक होते है। जैसे कवक के द्‌वारा पेनिसिलिन (Penicilin), स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin), ऑरोमाइसिन (Auromycin) प्रकार की प्रतिजेविक (Antibiotics) उत्पन्न की जाती है। इससे विभिन्न रोगजनक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, तथा मानव प्रजाति को विभिन्न रोगों सं छुटकारा मिलता है। जल में माइक्रोसिस्टिस (Microcystis) नामक नील हरित शैवाल के द्‌वारा हाइड्रोक्सिल एमिन स्त्रावित किया जाता है, जिस को पीने के कारण मछलियों तथा पशुओं की मृत्यु हो जाती है।

2. परभक्षण (Predation) - परभक्षी (Predation) स्वतंत्रजीवी प्राणी है जो दूसरी प्रजाति के सदस्यों को पकड़कर उन्हें मार कर भक्षण करते हैं। परभक्षण (Predation) की घटना परजीविता (Parasitism) से पूर्णतया भिन्न है। एक परजीवी अपना पोषण, परपोषी से प्राप्त करता है जिसमें परपोषी को हानि तो होती है लेकिन तुरन्त ही मृत्यु नहीं होती है। दूसरी तरफ परभक्षण में, परभक्षी अपने शिकार को पकड़कर मार देता है। प्राय: सभी प्राणी परभक्षी होते है, कुछ पादप भी परभक्षी होते है। वे प्राणी जो दूसरे प्राणी को खाते है माँसाहारी (carnivorous) होते है। जो प्राणी पादपों को भोजन के रूप में लेते है वे शाकाहारी (herbivorous) होते है।

3. **परजीविता (Parasitism) -** परजीवी वह प्राणी है जो किसी दूसरे परपोषी के अन्दर या बाहर वास करता है तथा अपना पोषण परपोषी के ऊतकों से प्राप्त करता है। परजीविता में केवल परजीवी को ही फायदा होता है जबकि परपोषी को कोई फायदा नहीं होता है। किसी परपोषी की मृत्यु, परजीविता के द्वितीयक प्रभाव के कारण होती है। उदाहरण: परजीवी प्रोटोजोअन्स, प्लेटीहेल्मिंथीज, नीमेटोड्स तथा कुछ आर्थोपोडस।

परजीवी के प्रकार (Types of Parasites)- सामान्य रूप से परजीवी दो प्रकार के होते है-

(अ) आंशिक परजीवी (Partial parasites)

(ब) स्थाई परजीवी (Permanent parasites)

(A) **आंशिक परजीवी (Partial parasites) :** वे परजीवी जो अपने जीवन चक्र का कुछ ही भाग, परपोषी में सम्पन्न करते है, आंशिक परजीवी (Partial parasite) कहलाते हैं। जैसे ग्लोकिडियम लार्वा अपने हुककी सहायता से मछली की गिल्स में धंस जाते है। इस अवस्था में ये कुछ सप्ताह रहने के पश्चात्, नवजात (young)ए में रूपान्तरित हो जाते है।

(B) **स्थाई परजीवी (Permanent parasites) :** वे परजीवी जो अपने जीवन चक्र का सम्पूर्ण भाग, परपोषी में सम्पन्न करते है, स्थाई परजीवी (Permanent parasites) कहलाते है। जैसे पौधों पर पाए जाने वाले परजीवी, फाइटोपेरासाइट (phytoparasite) तथा प्राणियों पर पाए जाने वाले परजीवी, जूपेरासाइट (zooparasite) कहलाते है। परजीवी की आवासीय स्थिति के आधार पर स्थाई परजीवी भी दो प्रकार के होते है-

(i) **बाह्य परजीवी (Ectoparasite) :** वे परजीवी जो अपना पोषण, परपोषी की त्वचा या बाहरी आवरण से चिपक कर प्राप्त करते है, बाह्य परजीवी (Ectoparasite) कहलाते है। उदाहरणार्थ जूँ, मच्छर, खटमल, जौंक, कवक इत्यादि मनुष्य व अन्य जन्तुओं के बाह्य परजीवी है।

(ii) **अन्त: परजीवी (Endoparasite) :** वे परजीवी जो अपना पोषण, परपोषी के विभिन्न अंगों जैसे-आँत, देहगुहा, यकृत, रूधिर संस्थान आदि में प्रवेश करके प्राप्त करते है। जैसे फीता-कृति, प्लाजमोडियम एन्टअमीबा, एस्केरिस मनुष्य के अन्त:परजीवी है। ये परजीवी अपना जीवन चक्र एक परपोषी में (monogenetic) अथवा दो परपोषियों (digenetic) में सम्पन्न करते है। उपरोक्त दोनों प्रकार के परजीवी विकल्पी (facultative) या अविकल्पी (obligatory) हो सकते है। सामान्यत अन्त: परजीवी, अविकल्पी एवं हानिकारक होते है।

4. **प्रतिस्पर्द्धा या प्रतियोगिता (competition) :** क्लीमेण्ट तथा शैलफोर्ड (Clement and Shelford- 1939) के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा “एक ही प्रजाति के दो सदस्यों या अलग-अलग प्रजातियों के सदस्यों के मध्य एक ही ट्रेफिक स्तर, रहने के स्थान, बच्चे देने के स्थान के लिए होने वाली सक्रिय मांग है। इसके कारण एक समुदाय का घनत्व एवं जैवविविधता प्रभावित होती है।”

प्रतिस्पर्द्धा के अंत में स्थाई साम्य स्थापित हो जाता है अथवा एक प्रजाति का प्रतिस्थापन दूसरी प्रजाति के द्वारा हो जाता है। एक दूसरे से सम्बन्धित प्रजातियां जिनका जीवन चक्र,

आवास एवं वास स्थान एक समान हो, ऐसे सदस्य एक ही स्थान पर वास नहीं करते है। एक दूसरे से सम्बन्धित प्रजातियों का पारिस्थितिकीय पृथक्करण गॉस के नियम अथवा हर्डिन के प्रगिस्पर्द्धात्मक अपवर्जन सिद्धान्त (competitive exclusion principle) के द्वारा और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इनके अनुसार "एक या अधिक प्रजातियों के स्थाई सदस्यों के द्वारा पारिस्थितिकीय निकेत (Niche) का एक साथ एवं पूर्ण रूप से अधिग्रहण नहीं होता है।" अर्थात् यदि इन प्रजातियाँ जिनका पारिस्थितिकीय निकेत एक समान हो, ऐसी प्रजातियां एक ही पर्यावरणी क्षेत्र में लम्बे समय तक नहीं रह सकती है। इनमें अन्त में प्रतिस्पर्द्धा होती है।

(स) **उदासीनता (Neutralism) :** कोई भी समुदाय एक-दूसरे को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करता है। इसमें दो समुदायों के मध्य कोई अन्तःक्रिया होती है तो यह सामान्यतया अप्रत्यक्ष प्रकार की होती है। किन्हीं भी दो प्रजातियों की उपस्थिति एक दूसरे की जीव समष्टि (population) को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करती है। उदाहरण - रोबिन चिड़िया तथा गिलहरी दोनों एक ही वृक्ष पर रहते है, लेकिन दोनों एक-दूसरे को न तो कोई फायदा पहुँचाते है व न ही कोई नुकसान।

इस प्रकार एक समुदाय में प्रत्येक प्राणी अपनी ही जाति के सदस्यों, पड़ौस की अन्य जातियों के सदस्यों तथा वातावरण के भौतिक एवं रासायनिक सभी के प्रभावों के प्रति अनुक्रियाएं (react or response) करता है।

3.6 बोध प्रश्न

1. किसी भी खाद्य श्रृंखला में हरे पौधे प्रथम कड़ी होते है, क्योंकि -
   (अ) हरे पौधे भोजन का संश्लेषण कर सकते है। (ब) ये प्रत्येक को खा सकते है।
   (स) वे एक स्थान पर नियत होते है। (द) उपरोक्त कोई नहीं।
2. वे पादप जो कि बालू मिट्टी में वृद्धि करते है, कहलाते है-
   (अ) लिथोफाइट (ब) सैमोफाइट (स) हैलोफाइट (द) हाइड्रोफाइट
3. ह्यूमस शब्द प्रयोग होता है -
   (अ) सूखी मृदा के लिए (ब) कार्बनिक पदार्थो से पूर्ण मृदा के लिए
   (स) कैल्शियम एवं मैग्नीशियम से पूर्ण मृदा के लिए (द) नई मृदा जो क्षयी चट्टानों से बनती है।
4. पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा है -
   (अ) पौधों जन्तुओं एवं सूक्ष्म जीवों के विभिन्न समुदाय जो भौतिक रसायन वातावरण में साथ-साथ रहते है।
   (ब) सूक्ष्म जीव एवं पौधों के विभिन्न समुदाय जो भौतिक रसायन वातावरण में साथ-साथ रहते हैं।
   (स) बहुत से जन्तु एवं पौधों की स्थानीय समिति
   (द) उपरोक्त कोई नहीं।
5. बायोसिनोसिस शब्द किसने दिया था -

(अ) टेन्सले (ब) कार्ल मॉबियस (स) वार्निग (द) ओडम

6. इकोसिस्टम शब्द किसके द्‌वारा दिया गया था?

(अ) वेबर एवं क्लीमेन्ट (ब) ए.जी. टेन्सले (स) ई.पी. ओडम (द) सभी के द्‌वारा

7. पीडोलॉजी अध्ययन है -

(अ) जन्तु एवं पौधों में गति का (ब) मृदा का

(स) पादपों का (द) पादप रोगों का

8. जब एक जीव अन्य जीव को बिना कोई नुकसान पहुंचाए लाभान्वित होता है तो कहलाता है -

(अ) सहोपकारिता (ब) सहजीवन (स) परजीविता (द) मृतोपजीवन

9. पर्यावरण कारकों के दो मुख्य समूह होते है जिन्हें .... कारक कहते है।

10. वे प्राणी जो तापक्रम के लम्बे परिसर को सहन कर सकते है .... कहलाते है व छोटे तापक्रम परिसर वाले प्राणी .... कहलाते है।

11. पोषक तत्वों के उपयोग की मात्रा के आधार पर इन्हें दो उप-समूहों में बांटा गया है, ये है .... एवं ....।

12. कुछ जन्तु भोजन के लिए अन्य जन्तुओं की मार खा जाते है, इस प्रक्रिया को .... कहते है।

13. जब दो भिन्न जातियों के जीव एक साथ व्यापन करें और इनमें से एक पक्ष को तो दूसरे से लाभ हो, परन्तु दूसरे पक्ष को न तो कोई लाभ हो, न कोई हानि हो, ऐसे सहजीवन को .... कहते है।

14. परजीवन का प्रभाव परजीवी और .... दोनों की शारीरिक रचना कार्यिकी और वितरण पर पड़ता है।

15. राइजोबियम व लेग्यूमिनस मूल के बीच सम्बन्ध .... का उदाहरण है।

3.7 सारांश (Summary)

पारितन्त्र, पारिस्थितिकी विज्ञान की मूलभूत इकाई है जो जैविक एवं अजैविक घटकों की बनी होती है। इस प्रकार जैविक समुदाय एवं इसके अजैविक वातावरण का सुयक्त रूप पारितंत्र (ecosystem) के द्‌वारा निरूपित होता है। अत: एक पारितंत्र का निर्माण जैविक एवं अजैविक घटकों के द्‌वारा होता है, ये घटक एक-दूसरे से संबंधित होते हैं तथा इनके मध्य पारस्परिक क्रिया भी होती है।

किसी भी संतुलित पारितन्त्र में सौर ऊर्जा के अतिरिक्त दो मूलभूत घटक पाये जाते हैं :-

(अ) जैविक घटक -

(1) उत्पादक

(2) उपभोक्ता

(3) विघटक

(ब) अजैविक घटक -

(1) अकार्बनिक पदार्थ

(2) कार्बनिक पदार्थ

(3) भौतिक वातावरण

ताप, प्रकाश, जल, आर्द्रता, मिट्टी, प्रवाह, दबाव एवं गुरूत्व आदि मुख्य भौतिक कारक हैं, जो जीवधारियों को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते हैं और वृद्धि, विकास, स्वास्थ्य, विकिरण आदि क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

भौतिक कारकों की भाँति रासायनिक कारक भी जैविक क्रियाओं को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं। पृथ्वी पर सभी प्रकार के जीवधारी साथ-साथ रहते हैं, कोई भी जीव स्वतंत्र रूप से अस्तित्व प्रदर्शित नहीं करता। यहाँ पेड़-पौधे एवं प्राणी एक साथ रहते हैं। इस साथ रहने में वे निरन्तर एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। ये समस्त प्राणी न केवल एक दूसरे को प्रभावित करते हैं अपितु ये एक साथ संयुक्त रूप से पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। बदले में आसपास के वातावरण से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार 'सजीवों के एक-दूसरे पर एवं समान्वित रूप (combined manner) से पर्यावरण पर पडने वाले प्रभावों को जैविक कारक (biotic factors) कहा जाता है।" अनेक जैविक क्रियाओं, जैसे - पोषण, वृद्धि, प्रजनन इत्यादि के लिये इन्हें एक-दूसरे पर एवं आसपास की परिस्थितियों पर निर्भर करना पडता है। परिणामस्वरूप, इन आवश्यक कार्यो को सम्पादित करते समय विभिन्न प्राणियों के बीच लगातार अन्तर्क्रिया या पारस्परिक क्रियाएँ (interactions) होती रहती हैं। जीवों के बीच मौजूद ये आपसी संबंध एक-दूसरे के लिये लाभदायक, हानिकारक या एक के लिये लाभदायक एवं दूसरे के लिये हानिकारक हो सकते हैं।

समस्त जीवधारी अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक-दूसरे पर आधारित रहते हुए अपने पारस्परिक जैविक संबंधों (biotic relationship) को बनाये रखते हैं। इन संबंधों में एक ही प्रजाति के प्राणी, यदि एक-दूसरे से पारस्परिक क्रिया करते हैं, तो इसे अन्त:जातीय संबंध (intraspecific relationship) कहते हैं। विभिन्न प्रजातियों के एक-दूसरे पर पडने वाले प्रभावों को अन्तरजातीय संबंध (interspecific relationship) एवं इनके बीच निरन्तर जारी रहने वाली स्पर्धा को अन्तरजातीय स्पर्धा (interspecific competition) कहा जाता है। अत: विभिन्न सजीवों के बीच उपस्थित पारस्परिक क्रियाओं में प्रतिस्पर्द्धा (competition) अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार अनेक सजीवों में पाये जाने वाले आपसी संबंध, दोनों के लिये लाभदायक या हानिकारक अथवा एक प्रजाति के लिये लाभदायक एवं दूसरी के लिये हानिकारक या लाभ-हानि से परे उदासीन (neutral) हो सकते हैं।

यदि सजीवों के बीच होने वाली पारस्परिक क्रिया में शामिल दोनों जीवधारी लाभान्वित होते हैं तो इसे सहजीवन (symbiosis) कहा जाता है। लेकिन यदि पास-पास उपस्थित दोनों सजीवों की पारस्परिक क्रिया (interaction) में कम से कम किसी एक सजीव को नुकसान पहुँचता है तो इसे विरोध (antagonism) कहा जाता है।

3.8 शब्दावली (Glossary)

1. **पारितन्त्र (Ecosystem) :** किसी भी समुदाय के जैविक सदस्यों और उनके अजैविक वातावरण में, ऊर्जा-प्रवाह और खनिज पदार्थ चक्र को पूरा करने के लिये निरन्तर रचनात्मक और कार्यात्मक पारस्परिक अनुक्रियाएँ।
2. **अन्त:जातीय संबंध (Intraspecific relations) :** प्राणी के अपनी जाति के सदस्यों के साथ ही अनुक्रियाएँ।
3. **अन्तरजातीय संबंध (Interspecific relations) :** दो या दो से अधिक जातियों के बीच पाई जाने वाली अनुक्रियाएँ।
4. **परजीवी (Parasites) :** जीव जो अन्य जीव पर पूर्ण रूप से निर्भर रहकर अपना भोजन प्राप्त करता है।
5. **विघटक (Decomposers or Microbes) :** प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप जीवों के मृत शरीर को विघटित करके मूलभूत तत्वों को फिर से उद्‌गम स्त्रातों में वापस भेजने का कार्य करने वाले सूक्ष्मजीव।
6. **सहोपकारिता (Mutualism) :** विभिन्न जातियों के दो जीवों का साथ-साथ रहना जिससे दोनों को परस्पर लाभ होता है।
7. **सहजीवन या सहजीविता (Symbiosis) :** दो भिन्न जातियों के जीवों का साथ-साथ रहना। इस संबंध में दोनों जीवों को पहुँचने वाले लाभ्हानि के आधार पर इसके बाद कई भेद माने जाते हैं, जैसे सहोपकारिता, सहभोजिता, परजीविता आदि।
8. **सहभोजिता (Commensalism) :** अलग-अलग जाति के दो जीवधारियों के एक साथ भोजन करने और रहने की अवस्था, जिससे एक को लाभ किन्तु दूसरे को विशेष लाभ न होकर हानि भी नहीं पहुँचती।

3.9 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Animal ecology and distribution of animals - Veerbala Rastogi & M.S. Jayaraj
2. Ecology-P.D. Sharma
3. Ecology, Environmental Biology and Animal Distribution -Dr.A.L. Bhatia & Dr.K.S. Kohli
4. Concept of Ecology (Environment Biology)-P.S. Verma & V.K. Agaral
5. प्राणी पारिस्थितिकी एवं जैवसांख्यिकी - के.सी. सोनी

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अ))	2. (ब)	3. (ब)
4. (अ(	5. (स(	6. (ब(
7. (ब(	8. (अ(	

9. अजैविक, जैविक	10. पृथुतापी)eurythermal(, तनुतापी)stenothermal(
11. वृहत पोषक तत्व, सूक्ष्म पोषक तत्व	12. प्रभक्षण
13. सहभोजिता	14. पोषक
15. सहोपकारिता	

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. पारितन्त्र किसे कहते हैं? उसके विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिये।
2. प्राणी समूह पर तापमान एवं प्रकाश के पारिस्थितिकी प्रभावों का उल्लेख कीजिये।
3. वातावरण के भौतिक कारकों का वर्णन कीजिये। ये कारक प्राणियों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
4. वातावरण में मृदा का क्या प्रभाव पडता है? मृदा की संरचना, प्रकार तथा रासायनिक प्रकृति का उल्लेख भी कीजिये।
5. परजीविता पर विस्तृत में लिखिये।
6. अन्तरजातीय तथा अन्तः जातीय संबंधों में विभेद करते हुए सोदाहरण विवेचना कीजिये।
7. जातियों के बीच पारस्परिक संबंधों से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में सहजीवन का वर्णन कीजिये।
8. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये :-

   (1) परभक्षिता (Predation)
   (2) सहजीवन (Symbiosis)
   (3) प्रतिजीविता (Antibiosis)
   (4) विरोध (Antagonism)
   (5) परजीविता (Parasitism)

इकाई 4

पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह एवं आहार शृंखला

(Energy Flow in Ecosystem-Food Chain in Ecosystem)

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 पारितंत्र के मूलभूत घटक
    4.2.1 अजैविक घटक
    4.2.2 जैविक
4.3 पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह
4.4 आहार शृंखला
    4.4.1 चारण आहार-शृंखला
    4.4.2 अपरद आहार-शृंखला
4.5 पारिस्थितिकीय स्तूप
    4.5.1 संख्याओं का पिरेमिड
    4.5.2 जीव-भार के पिरेमिड्स
4.6 तालाब एक पारिस्थितिकीय तंत्र
4.7 शब्दावली
4.8 संदर्भ पुस्तकें

4.0 उद्देश्य (Objective)

किसी भी प्राकृतिक क्षेत्र में पादप, प्राणियों तथा पर्यावरणीय कारकों से सम्मिलित रूप से बनने वाले तंत्र को पारितंत्र कहते हैं। पारितंत्र के निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण हैं:-

1. मूलभूत घटक
2. आहार शृंखला
3. पारिस्थितिकीय स्तूप
4. तालाब, पारिस्थितिकीय तंत्र का एक उदाहरण

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

टान्सले(1935) 'इकोसिस्टम' (ecosystem) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। अन्य वैज्ञानिकों ने पारिस्थितिकीय तंत्र के लिए 'माइक्रोज्म' एवं 'बायोसिस्टम' शब्दों का प्रयोग किया।

पारिस्थितिक तंत्र एक जटिल संकल्पनात्मक इकाई हैं। यह प्राणियों तथा उनके वातावरण से बनी होती हैं। अन्तनिर्भर 'कारण-प्रभाव' इसके मुख्य लक्षण हैं। मौलिक रूप से यह एक ऊर्जा द्रव्य एवं सूचना

स्थानान्तरण तंत्र हैं। इसमें होने वाली अन्तःक्रियाएं वास्तव में पु:न विशिष्ट क्रियाएं हैं। ये पारिस्थितिक तंत्र में पाए जाने वाले प्राणियों के विकास एवं संख्या को नियन्त्रित करती हैं (पैटन, 1959)। इसमें पाये जाने वाले प्राणियों के मूल समूहों को "समष्टियाँ (population) कहते हैं। उन प्राणियों का समूह समष्टि कहलाता हैं जिनका आनुवंशिक उद्भव तथा ऊर्जा सम्बन्ध सामान्य हैं। विशिष्ट पारिस्थितिक-तंत्रों में समष्टियाँ 'समुदाय' नामक समुच्चयों में बंधी रहती हैं। उन समष्टियों के समूह को 'समुदाय' (Community) कहते हैं। इनमें अन्तनिर्भर क्रियात्मक सम्बन्ध होता हैं। पारिस्थितिक-तंत्र वे संकल्पनात्क इकाइयाँ हैं जिनमें समुदाय आपस में तथा अपने भौतिक वातावरण से ऊर्जा, द्रव्य एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। ये आदान-प्रदान आवश्यक होते हैं। पृथ्वी पर सजीव प्राणी भौतिक तथा जैविक विलगाव (Physical & biological isolation) में जीवित रहीं रह सकते। प्राणियों को जीवित रहने के लिए आपस में तथा वातावरण के भौतिक लक्षणों एवं रासायनिक पदार्थो से अन्तःक्रियाएँ करनी पड़ती हैं। पारिस्थितिक-तंत्र का अध्ययन करना वास्तव में प्रकृति की स्थूल शारीरिकी तथा कार्यिकी का अध्ययन करना हैं। तालाब, वन, गाँव इत्यादि पारिस्थितिक-तंत्रों के उदाहरण हैं।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

1. इकोसिस्टम शब्द का प्रयोग .... ने किया था।
2. समशिटयाँ .... को कहते हैं।
3. समुदाय .... को कहते हैं।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. माइक्रोकाज्म किसे कहते हैं?
   ....
2. समष्टि का उदाहरण बतायें।
   ....
3. समुदाय किसे कहते हैं?
   ....

4.2 पारितंत्र के मूलभूत घटक (Fundamental Elements of Ecology)

4.2.1 अजैविक घटक (Abiotic Elements)

इनमें पारिस्थितिक तंत्र के निम्न निर्जीव घटक सम्मिलित हैं।

(a) **अकार्बनिक पदार्थ :** जैसे कार्बन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइ ऑक्साइड, जल इत्यादि। ये पदार्थ पारिस्थितिक तंत्र में चक्रीय पथों से गुजरते हैं।

(b) **कार्बनिक पदार्थ :** इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसाएँ ए.टी.पी., डी.एन.ए. क्लोरोफिल इत्यादि शामिल हैं। ये पारिस्थितिक-तंत्र के अजीवीय तथा जीवीय तत्वों को जोड़ने में प्रयुक्त होते हैं।

(c) **जलवायु :** इनमें तापक्रम, प्रकाश, नमी इत्यादि भौतिक कारक सम्मिलित हैं। अजीवीय तत्व पारिस्थितिक-तंत्र को दो प्रकार से प्रभावित करते हैं :

(i) विशिष्ट भौतिक तथा रासायनिक लक्षण, पारिस्थितिक-तंत्र की प्रकृति निर्धारित करते हैं। क्योंकि ये लक्षण पारिस्थितिक-तंत्र की समष्टियों में पाये जाने वाले प्राणियों को सीमित कर देते हैं।

(ii) अन्य भौतिक तथा रासायनिक कारकों के साथ, ये लक्षण समष्टियों में परस्पर होने वाली क्रियाओं को निर्धारित करते हैं।

4.2.2 जैविक (Biotic Elements)

पारिस्थितिक-तंत्र में जीवित प्राणियों / पौधों तथा रोगाणुओं (microbes) की समष्टियाँ होती हैं। ये समष्टियां संयुक्त रूप से पारिस्थितिक तंत्र के समुदाय बनाती हैं। समुदाय में पाये जाने वाले सम्पूर्ण जैविक द्रव्य को जीवभार (biomass) कहते हैं।

जैविक तत्व में प्राणियों के निम्नलिखित संवर्ग होते हैं :

(1) **उत्पादक (Producers) :** पारिस्थितिक-तंत्र के वे सजीव जो कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थो से भोजन का संश्लषण करते हैं, उत्पादक कहलाते हैं। इस प्रकार ये स्वपोषित प्राणी होते हैं। पारिस्थितिक-तंत्र में उत्पादक प्राय: प्रकाश संश्लेषी पौधे होते हैं। तालाबों तथा झीलों में सूक्ष्मदर्शीय पौधे, जल वाले पौधे तथा तैरने वाले पौधे, समुद्र में शैवाल, घास स्थलों में विभिन्न प्रकार की घास तथा वनों में बड़े-बड़े वृक्ष उपरोक्त पारिस्थितिक-तंत्रों में उत्पादक हैं।

(2) **उपभोक्ता (Consumers) :** पारिस्थितिक-तंत्र के वे सजीव सदस्य जो उत्पादकों द्वारा संश्लेषित भोजन का उपयोग करते हैं, उपभोक्ता कहलाते हैं।। इस संवर्ग में निम्न प्रकार के प्राणी सम्मिलित हैं:

(i) शाकाहारी प्राणी: अपने पोषण के लिए पौधों पर निर्भर रहते हैं, इसलिए वे पारिस्थितिक-तंत्र में प्राथमिक उपभोक्ता (primary consumers) होते हैं। जंगल में हरिन प्राथमिक उपभोक्ता होता हैं, जबकि प्रेअरी (एक प्रकार के घास के मैदान) में बिसन नामक प्राणी प्राथमिक उपभोक्ता होता हैं। इसी प्रकार, प्रोटोजोअन्स, क्रस्टेशियन्स तथा मोलस्का जो समुद्रों तथा तालाबों में पाये जाने वाले शैवालों को खाते हैं, अपने-अपने पारिस्थितिक-तंत्रो के प्राथमिक उपभोक्ता हैं। कीट तथा राडेट्स स्थलीय वातावरण के मुख्य शाकाहारी प्राणी होते हैं। पारिस्थितिक तंत्र का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं शाकाहारियों की उपस्थिति के कारण होता हैं। एल्टन ने इन प्राणियों को 'मुख्य उद्योग प्राणी' कहा हैं।

(ii) प्राथमिक मांसाहारी प्राणियों का भोजन शाकाहारी प्राणी होते हैं।

(iii) द्वितीयक मांसाहारी प्राणियों का भोजन प्राथमिक प्राणी होते हैं तथा

(iv) तृतीयक मांसाहारी प्राणियों का भोजन द्वितीयक मांसाहारी प्राणी होते हैं। ये सभी मांसाहारी प्राणी संयुक्त रूप से द्वितीयक उपभोक्ता कहलाते हैं। इस प्रकार आहार शृंखला बन जाती हैं। पारिस्थितिक-तंत्र में ऐसी कई आहार- शृंखलाएं होती हैं जिनमें "आहार-जाल" बन जाता हैं प्राथमिक तथा द्वितीयक उपभोक्ता को **गुरू-उपभोक्ता** (food chain) **भक्षकपोषी परपोषित** प्राणी कहते हैं।

(3) **अपघटक (Decomposers)-** ये भी पारिस्थितिक तंत्र के सजीव प्राणी होते हैं। इस संवर्ग में अधिकतर जीवाणु तथा कवक जैसे सूक्ष्मजीव सम्मिलित होते हैं। ये प्राणी उत्पादक एवं उपभोक्ता के मृत शरीरों पर क्रिया करते हैं तथा जटिल पदार्थों के अपघटक से सरल पदार्थ बनाते हैं। इन सरल पदार्थों को वातावरण में मुक्त कर दिया जाता हैं तथा उत्पादक इसका उपभोग कर लेते हैं। अपघटकों को **सूक्ष्म-उपभोक्ता(मृतपोषी परासरण पोषी)** भी कहते हैं। अपघटन के कुछ उत्पादों का वे स्वयं अवशोषण कर अपने में प्रयुक्त करते हैं तथा अन्य पदार्थो को उत्पादकों के प्रयोग के लिए वातावरण में मुक्त कर देते हैं। ये प्राणी कुछ कार्बनिक पदार्थो को भी वातावरण में मुक्त करते हैं। जो या तो ऊर्जा-स्त्रोत हो सकते हैं या वे **पारिस्थितिक-तंत्र** में अन्य जैविक घटको के लिए उत्तेजक या संदमनकारी हो सकते हैं।

(4) **रूपान्तरणकारी (Modifier)- क्लार्क** के अनुसार आहार-शृंखला में भाग लेने वाले अन्तिम प्राणी रूपान्तरणकारी होते हैं। ये अपघटन के उत्पादों पर क्रिया करके उन्हें ऐसे कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित कर देते हैं जो उत्पादकों द्वारा प्रयोग में लिये जा सके। रूपान्तरणकारी भी जीवाणु होते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में पौधे मुख्य उत्पादक होते हैं, जन्तु उपभोक्ता होते हैं जबकि सूक्ष्मजीव अपघटक एवं रूपान्तरणकारी होते हैं।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

1. अजैविक तत्व .... के उदाहरण हैं।
2. जैविक तत्व .... के उदाहरण हैं।
3. .... प्रेअरी के उदाहरण हैं।
4. .... मुख्य उद्योग के प्राणी हैं।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. अजैविक तत्वों के नाम बताइयें।
   ....
2. जैविक तत्वों के नाम बताइयें।
   ....
3. अपघटकों का कार्य समझाइये।
   ....
4. उत्पादकों के उदाहरण बतायें।
   ....
5. आहार-जाल क्या हैं?
   ....
6. रूपान्तरकारी क्या हैं?
   ....

4.3 पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecology)

जीवन-क्रियाएं सम्पन्न करने के लिए प्रत्येक प्राणी को ऊर्जा की आवश्यकता होती हैं। यह ऊर्जा अन्ततोगत्वा सौर-विकिरण से प्राप्त होती हैं। सूर्य की ऊर्जा स्वपोषी प्राणियों द्वारा ग्रहण की जाती हैं। यहीं परपोषी प्राणियों को भोजन के रूप में दी जाती हैं। इस प्रकार पारिस्थिति-तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह आहार-शृंखलाओं पर होता हैं। ऊर्जा का यह प्रवाह अचक्रीय तथा एक ही दिशा में होता हैं।

सौर विकिरण-ऊर्जा का एक निश्चित परिणाम पृथ्वी के बाह्य वायुमण्डल पर पहुँचता हैं जिसे सौर-अभिवाह (Solar flux) कहते हैं। इस सौर अभिवाह का मान 1.94 ग्राम / सेमी2 / मिनट होता हैं। पृथ्वी के घूर्णन (rotation) के कारण एक पर इसे अभिवाह में दैनिक परिवर्तन आते हैं। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के दीर्घवृत्त कक्ष (elliptical) के कारण अक्षाश के अनुसार ऋतु-सम्बन्धी परिवर्तन आते हैं। जब ये प्रकाश-विकिरण वायुमण्डल से गुजरते हैं तो इनके लगभग 40 प्रतिशत भाग को बादल तथा धूल कणों के द्वारा परावर्तित कर दिया जाता हैं; लगभग 10 प्रतिशत भाग को ओजोन, ऑक्सीजन, जल-वाष्प इत्यादि द्वारा अवशोषित कर लिया जाता हैं; तथा शेष 48 प्रतिशत भाग पृथ्वी तल पर पहुंचता हैं (गाइगर: 1950)। इस प्रतिशत का ही कुछ भाग चमकीली सतहों द्वारा पुन: वायुमण्डल में परावर्तित हो जाता हैं। इसका कुछ भाग पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण में प्रयुक्त होता है।

प्रकाश-संश्लेषण में निर्मित शर्करा का परिणाम पारिस्थितिक-तंत्र के प्राथमिक उत्पावन (primary production) का द्योतक होता हैं। अपनी जीवन-क्रियाएं सम्पन्न करने के लिए पौधों को भी ऊर्जा चाहिए। यह शर्करा के ऑक्सीजन से प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार प्रकाश-संश्लेषण में निर्मित शर्करा का कुछ अंश पौधों द्वारा ही अपनी जीवन-क्रियाएं सम्पन्न करने में प्रयुक्त हो जाता हैं। शेष भाग मण्ड (starch), वसा या प्राटीन में परिवर्तित हो जाता है। ऑक्सीजन के पश्चात् शर्करा का शेष परिमाण नैट प्राथमिक उत्पादन (net primary production) का द्योतक हैं।

जब उपभोक्ताओं द्वारा पौधे उपभोग किये जाते हैं तो उत्पादन-स्तर (producer level) की नेट ऊर्जा प्राथमिक उपभोक्ताओं (primary consumers) मे स्थानान्तरित हो जाती हैं। प्रत्येक पोषणी-स्तर (trophic level) पर ऊर्जा का स्थानान्तरण तथा उपभोग ज्ञात करने के लिए प्रत्येक स्तर के जीवभार (biomass) या स्टैडिंग क्रॉप (standing crop) का आकार (size) ज्ञात करना आवश्यक हैं। भोजन के उपभोग को प्राणी ऊर्जा (gross energy intake) कहते हैं। इस ऊर्जा का काफी भाग जन्तुओं द्वारा अपना अस्तित्व बनाए रखने तथा कार्य करने में प्रयुक्त हो जाता हैं। कार्य का करने के लिए ऊर्जा का एक रूप से दूसरे रूप में स्थानान्तरण होता हैं तथा ऊष्मागतिकी (thermidyonamics) के द्वितीय नियम के अनुसार इस स्थानान्तरण में स्वतन्त्र ऊर्जा का ह्रास होता हैं। कार्य करने में प्रयुक्त कुल ऊर्जा को श्वसन-ऊर्जा (respirator energy) कहते हैं।

सकल-अन्तर्ग्रहीत-ऊर्जा तथा श्वसन-ऊर्जा का अन्तर उपभोक्ता-स्तर का नेट उत्पादन होता हैं। जिस दर से नेट उत्पादन एकत्रित होता है उसे नेट उत्पादकता (net productivity) या उत्पादकता (porductivity) कहते हैं। किसी पोषण-स्तर का नेट उत्पादकता उम्सर्ग (exreta) एवं मृत प्राणियों के विघटन में प्रयुक्त स्थानान्तरित हो सकता हैं।

प्रत्येक पोषणी-स्तर पर अन्तर्ग्रहीत भोजन की ऊर्जा (सकल अन्तर्ग्रहीत ऊर्जा) का कुछ भाग प्राणियों द्वारा विष्ठा तथा उत्सर्ग के निकाल दिया जाता हैं यह उत्सर्जन ऊर्जा कहलाती हैं। कुछ प्राणी पर-भक्षण (predation) के अलावा बीमारी, दुर्घटना, बुढ़ापा, भुखमरी इत्यादि कारणों से मरते है। इन प्राणियों में संग्रहीत-ऊर्जा उच्च पोषणी स्तर में स्थानान्तरित नहीं होती। केवल वे ही प्राणी जो परभक्षियों (predators) के द्वारा मारे तथा खाये जाते हैं उस ऊर्जा के द्योतक होते हैं जो उच्च पोषणी स्तर में स्थानान्तरित होती हैं। यह भी सम्भव हैं कि परभक्षी द्वारा शिकार पूरी नहीं खाया जावे। ऐसी स्थिति में, परभक्षी द्वारा खाया हुआ शिकार का अंश ही उच्च पोषणी स्तर द्वारा उपभोग की गई ऊर्जा (consumed energy) का द्योतक हैं। शिकार का अप्रयुक्त भाग अपशिष्ट ऊर्जा (wasted energy) का द्योतक हैं। इस प्रकार, प्रत्येक पोषणी-स्तर पर उत्सर्ग (escreta) के रूप में, परभक्षी के अलावा अन्य कारणों से हुई मृत्यु के रूप में तथा परभक्षियों द्वारा किए गए शिकार के अपशिष्ट (waste) के रूप में ऊर्जा का ह्रास होता हैं। इस ऊर्जा का मृताहारियों (saprovores) तथारूपान्तरणकारियों द्वारा उपभोग किया जाता हैं। यही ऊर्जा रूपान्तरणकारी स्तर से उच्च पोषणी स्तरों में पुन: परिसंचरित हो जाता हैं।

प्रत्येक पोषणी स्तर पर उत्सर्ग के रूप में, परभक्षण के अलावा अन्य कारणों से हुई मृत्यु के रूप में; तथा परभक्षियों द्वारा किये गये शिकार के अपशिष्ट के रूप बेकार जाने वाली ऊर्जा को नेट उत्पादन में घटाने के पश्चात् जीवभार के परिवर्तन कहलाते हैं। ये धन (plus) या ऋण (minus) हो सकते हैं।

प्राणियों की वृद्धि से जीवभार बढ़ता हैं। वृद्धि का तात्पर्य है जैव-पदार्थ बढ़ने से प्राणी का परिमाप तथा संख्या बढ़ना। प्रजनन से प्राणियों की संख्या बढ़ती हैं। परन्तु जीवभार का बढना आवश्यक नहीं हैं। जीवभार तभी बढ़ता हैं जब संतान का साइज बढ़े। अधिकतर जातियों में वृद्धि की सीमाएं होती है। प्रजनन, समुदाय की शक्य उत्पादकता (potential productivity) बढ़ा देता हैं। यह वृद्धि ऐसे प्राणियों की संख्या बढ़ने के कारण होती हैं जो अपना साइज बढ़ाने में समर्थ हैं।

इसे दर्शाने के लिए निम्न समीकरण का उपयोग किया जाता हैं।

$$I_A = E + R + D + W + I_A + b$$

जहां IA = सकल अन्तर्ग्रहीत ऊर्जा हैं; E= उत्सर्जन ऊर्जा है, R = श्वसन ऊर्जा हैं; D = वह ऊर्जा हैं जो परभक्षण के अलावा अन्य कारणों से हुई मृत्यु के रूप में बेकार जाती हैं; W = वह ऊर्जा जो परभक्षियों द्वारा अप्रयुक्त शिकार के रूप में छोड़ दी जाती हैं IA + I पोषणी स्तर द्वारा उपभोग की गई ऊर्जा हैं तथा b जीवभार में हुआ परिवर्तन हैं। प्रत्येक पोषणी स्तर की उस ऊर्जा का परिमाण विशेष महत्वपूर्ण हैं, जो अगले उच्च पोषणी स्तर में स्थानान्तरित होने योग्य हैं। यह ऊर्जा निम्न समीकरण द्वारा दिखाई जाती हैं।

$$I_A + I = I - E - R - D - W - b$$

इस समीकरण के प्रत्येक कारक को प्रत्येक पोषणी स्तर एवं जाति के लिए मापना आवश्यक हैं।

ऊष्मा गतिकी के नियम (Laws of Thermodynamics)

ऊर्जा को कार्य करने की क्षमता से परिभाषित कर सकते हैं। यह क्षमता अणुओं में बन्धित होती हैं इसे स्थितिज ऊर्जा कहते हैं। इस ऊर्जा का स्त्रोत सूर्य होता हैं किसी वस्तु को गति करने के लिए आवश्यक ऊर्जा को गतिज ऊर्जा कहते हैं। गतिज ऊर्जा वस्तु के आकार और उसकी गति पर निर्भर करती हैं।

यहां पर KE = गतिज ऊर्जा

m = वस्तु का भार/द्रव्यमान

v = वस्तु की गति

ऊष्मागतिकी के दो नियम हैं :

प्रथम नियम : इसके अनुसार ऊर्जा न तो सृजित की जा सकती हैं और न ही नष्ट की जा सकती हैं। इसका अर्थ यह हैं कि किसी प्रक्रम में ऊर्जा में कोई परिवर्तन नहीं होता हैं। ऊर्जा के प्रथम नियम को निम्नगणना द्वारा समझा जा सकता हैं:

DE = q - w

जहां DE = प्रक्रम की आन्तरिक ऊर्जा में परिवर्तन

q = प्रक्रम द्वारा ऊर्जा अवशोषण

w = कार्य निस्पादन

द्वितीय नियम : इस नियम के अनुसार ऊर्जा का शीत भण्डार से ऊष्ण भण्डार में परिवर्तन संभव नहीं हैं जब तक कि उस समय कुछ ऊष्मा कार्य निस्पादन में प्रयुक्त न कि जाएं।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. ऊष्मा गतिकी के .... नियम हैं।

(2) भोज्य ऊर्जा के स्थानान्तरण को .... कहते हैं।

(3) प्राणियों की एक श्रेणी से भोजन ऊर्जा का स्थानान्तरण .... कहलाता हैं।

निम्न पर टिप्पणी लिखें :

1. श्वसन ऊर्जा

....

2. उत्सर्जन ऊर्जा

....

3. ऊर्जा का पिरामिड

....

4. सरल ऊर्जा

....

5. ऊष्मा गतिकी के नियम

....

लघुत्तरात्मकं प्रश्न :

1. ऊर्जा के सिद्धान्त लिखें

....

2.	अन्तर्ग्रहीत ऊर्जा का भविष्य समझायें।
	....

4.4 आहार शृंखला (Food Chain)

आहार-शृंखला भरकों (feeders) एवं खाद्यों (foods) की रेखीय श्रेणी होती हैं। इस श्रेणी में खाये जाने की पुनरावृति होती हैं। इसके माध्यम से पौधों के स्त्रोत से अन्य प्राणियों तक खाद्य-ऊर्जा का स्थानान्तरण होता हैं। आहार-शृंखला की वर्गीकीय सत्ता (taxonomic enity) को आहार-कड़ी (food link) कहते हैं। जैसे-जैसे एक कड़ी से दूसरी कड़ी तक ऊर्जा का स्थानान्तरण होता हैं स्थितिज-ऊर्जा के अधिकांश भाग की ताप के रूप में हानि हो जाती हैं। इसलिए एक आहार-शृंखला में कम से कम तीन कड़ियों का होना आवश्यक हैं: पौधे - शाकाहारी - मांसाहारी। प्राय: बड़े मांसाहारी प्राणियों द्वारा छोटे मांसाहारी प्राणियों का शिकार किया जाता हैं। यही क्रम जारी रहता हैं जब तक कि चार या पांच कड़ियाँ सम्मिलित नहीं हो जाये। आहार-शृंखला में पांच से अधिक कड़ियाँ केवल कभी-कभी ही पाई जाती हैं। थाइनेमैन (Thinemann: 1926) ने आहार-कड़ियों के समूहों को उत्पादक, अपघटक एवं रूपान्तरणकारी नाम दिया था।

आहार-शृंखलाओं के दो मौलिक प्रकार होते हैं : चारण आहार-शृंखला (grazing food chain) तथा अपरद आहार शृंखला (defrutus food chaing)

4.4.1 चारण आहार-शृंखला (Grazing Food Chain)

ऐसी आहार शृंखला हरे पौधे से प्रारम्भ होती हैं, शाकाहारियों तक जाती हैं तथा मांसाहारियों में समाप्त होती हैं। चारण आहार- शृंखलाओं को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया हैं।

(1) परभक्षी आहार-शृंखलाएँ (Predatory Food Chain)

ऐसी आहार-शृंखलाओं में खाद्य-ऊर्जा का स्थानान्तरण परभक्षण (predation) द्वारा होता हैं। उदाहरण: सौर-ऊर्जा का उपयोग पादप-प्लवकों द्वारा किया जाता हैं, जिन्हें प्राणी प्लवक खाते हैं, जिन्हें छोटी मछलियाँ खाती हैं, जिन्हें बड़ी मछलियाँ खाती हैं तथा बड़ी मछलियों को मनुष्य खाता हैं।

पारिस्थितिक-तंत्र में पाई जाने वाली ऐसी अन्तरनिर्भरताएँ सम्बन्धित प्राणियों को साइज को प्रभावित करती हैं। पादप उत्पादकों के आकार भिन्न होते हैं। बड़े-बडे वृक्षों से छोटे-छोटे पादप प्लवकों तक विभिन्न आकार के पौधे उत्पादक होते हैं। जिन वनस्पतियों पर शाकाहारी प्राणी जीवन-निर्वाह करते हैं उनकी अपेक्षा या तो छोटे या बडे हो सकते हैं। शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारी अधिक शक्तिशाली एवं बड़े होते हैं। परभक्षी शृंखलाओं (predator chains) में उतरोत्तर स्तरों पर प्राणी प्राय: बडे होते रहते हैं।

(2) परजीवी आहार-शृंखलाएँ (Parasite Food Chain) :

ऐसी आहार-शृंखलाओं में खाद्य ऊर्जा का स्थानान्तरण परजीविता (parasitism) द्वारा होता हैं। पौधों तथा जन्तुओं पर निर्वाहा करने वाले परजीवी भी उपभोक्ता हैं। क्योंकि ये अपनस पोषण जन्तु या पादप ऊतकों से प्राप्त करते हैं। ऐसी परजीवी शृंखलाओं (parasite chains) में उतरोत्तर स्तरों पर प्राणी छोटे से छोटे होते जाते हैं। उदाहरण वनस्पतियों की जडों पर नीमेटोटस परजीवी

होते हैं। जिन पर परजीवी के रूप में जीवाणु या अन्य छोटे प्राणी पाये जा सकते हैं। सामान्यतया स्तनधारियों व पक्षियों पर पिस्यु परजीवी के रूप में पाये जाते हैं। इन प्राणियों पर लैप्टोमोनास (Leptomonas) नामक प्रोटोजोअन परजीवी के रूप में पाया जाता हैं। ऐसे कम हु ए आकार के कारण परभक्षी शृंखलाओं की अपेक्षा परजीवी शृंखलाएँ प्राय: छोटी होती हैं।

(3) मिश्रित आहार शृंखलाएं (Mixed Food Chain) :

कुछ आहार शृंखलाओं में खाद्य ऊर्जा का स्थानान्तरण आंशिक रूप से परभक्षण एवं आंशिक रूप से परजीविता द्वारा होता हैं। जैसे पौधों को खरहे; हिरण जैसे शाकाहारियों द्वारा खाया जाता हैं। इन शाकाहारियों को मनुष्य खाता हैं। मनुष्य में खाद्य-ऊर्जा का स्थानान्तरण परभक्षण द्वारा होता हैं। इन शाकाहारियों को मनुष्य खाता हैं। मनुष्य में खाद्य-ऊर्जा का स्थानान्तरण परभक्षण द्वारा होता हैं। परन्तु मनुष्य से प्लाज्मोडियम; एस्केरिस, टीनिया इत्यादि परजीवियों तक यह स्थानान्तरण परजीविता द्वारा होता हैं। अर्थात् पौधे - खरहा - मनुष्य - एस्केरिस एक मिश्रित आहार-शृंखला हैं।

4.4.2 अपरद आहार-शृंखला (Detrotis Food Chain)

प्रत्येक आहार-शृंखला आवश्यक रूप से जीवित पौधे से ही प्रारम्भ नहीं होती। कई आहार- शृंखलाएँ मृत कार्बनिक पदार्थ से प्रारम्भ होती हैं। इस पदार्थ का उपभोग सूक्ष्म प्राणियों द्वारा किया जाता हैं। अपरद भोजियों एवं उनके परभक्षियों द्वारा खाये जाते हैं। ऐसी आहार-शृंखलाएँ जो मृत कार्बनिक पदार्थ से प्रारम्भ होती हैं अपरद आहार-शृंखलाएँ कहलाती हैं। इन आहार- शृंखलाओं को भी फिर निम्नलिखित तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

(1) परभक्षी आहार-शृंखलाएँ : ऐसी शृंखलाओं में खाद्यऊर्जा का स्थानान्तरण परभक्षण द्वारा होता हैं। जैसे अपरद- घोंघा - श्रू (Shrew) - उल्लू या अपरद - नीमेटोड्स - चिचड़ी - कूट वृश्चिक (Pseudos corpion) ऐसी शृंखलाएँ हैं जो मृत कार्बनिक पदार्थ से प्रारम्भ होती हैं। ओडम ने ऐसी अपरद आहार-शृंखला का चिरसम्मत उदाहरण दिया हैं जो दक्षिण फ्लोरिडा के उथले वेलासंगभी (estuarine) जल में गिरने वाली मेग्रोव (mangrove) पत्तियों पर आधारित है। इन पत्तियों के टुकडों पर मृतपोषी (saprotrophs) क्रिया करते हैं तथा इनके साथ शैवाल उपनिवेशित हो जाते हैं। फिर इन पत्तियों के दुकड़ों को क्रेब्स, बाइवैल्व्स, नीमेटाडस, कीटों के डिंभक, श्रिम्प्स, एमफीपॉडस इत्यादि छोटे-छोटे आखेट मीनों (game fish) का भोजन होते हैं। ये आखेट मीन फिर बड़ी आखेट मीनों तथा बगुले (herons), बलाको (stroks) जैसे मछली खाने वाले पक्षियों को भोजन प्रदान करती हैं। इन शृंखलाओं में भी परभक्षण होता हैं। इसलिये उत्तरोतर स्तरों पर प्राणियों की साइज बड़ी से बड़ी होती होती जाती हैं।

(2) परजीवी आहार खलाएँ : कई आहार-शृंखलाओं में अपरद भोजीयों से अगली आहार-कडियों तक खाद्य-ऊर्जा का स्थानान्तरण परजीविता द्वारा होता हैं। ऐसी आहार-शृंखलाओं को निमित आहार-शृंखलाएँ कहते हैं।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. परस्पर संबन्धित आहार शृंखलाओं को .... कहते हैं।

2. विशाल प्राणियों से छोटे प्राणियों की तरफ .... भोज्य शृंखला चलती हैं।

3. .... छोटे से बड़े प्राणियों की ओर जाने वाली आहार शृंखला हैं।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. पारिस्थितिकी तंत्र में आहार शृंखला का क्या स्वरूप होता हैं?

   ....

2. आहार-जाल को बताइये।

   ....

3. उपभोक्ता कौन होते हैं?

   ....

4. अजैविक घटक कौन से हैं?

   ....

5. जैविक घटक बताइये।

   ....

निम्न पर टिप्पणी लिखें:

1. पारिस्थितिकी तंत्र

   ....

2. उपभोक्ता

   ....

3. उत्पादक

   ....

4. अजैविक घटक

   ....

5. जैविक घटक

   ....

6. आहार शृंखला

   ....

4.5 पारिस्थितिकीय स्तूप (Ecological Pyramids)

साइज उपापचर्यो सम्बन्धी एवं आहार-शृंखला के घटनाओं की पारस्परिक क्रियाओं के कारण समुदायों में विशिष्ट पोषणी-संरचना पाई जाती हैं। पोषणी-सरचना प्राय: विशिष्ट प्रकार के पारिस्थितिक-तंत्र की अभिलाक्षणिक होती हैं। इसे मापा जा सकता हैं। पोषणी संरचना का वर्णन उत्तरोतर पोषणी-स्तरों पर प्रति इकाई क्षेत्र द्वारा प्रति इकाई समय में स्थरीकृत ऊर्जा के रूप में अथवा प्रति इकाई क्षेत्र पर स्थित शस्य के रूप में किया जाता हैं। पोषणी-संरचना एवं पोषणी क्रिया का आलेखी निरूपण पारिस्थितिकीय पिरेमिड्स द्वारा किया जा सकता हैं पारिस्थितिकीय पिरेमिड्स में उत्पादक-स्तर को आधार के रूप में

तथा उत्तरोतर स्तरों को सोपानों के रूप में निरूपित किया जाता हैं। उत्तरोतर स्तर रूपी सोपान इन पिरेमिड्स के शीर्ष का निर्माण करते हैं।

पारिस्थितिकीय पिरेमिड्स तीन प्रकारों के होते हैं। (1) संख्याओं का पिरेमिड्स (2) जीव-भार का पिरेमिड्स एवं

(3) ऊर्जा का पिरेमिड्स

4.5.1 संख्याओं का पिरेमिड (Pyramid of Numbers)

इस प्रकार के पिरेमिड्स में व्यष्टि प्राणियों की संख्याओं को चित्रित किया जाता हैं। ऐसा पिरेमिडस वास्तव में तीन घटनाओं का परिणाम होता हैं। इनका प्रचालन प्राय: समकालिक होता है। इनमें से एक घटना त्यामिती तथ्य होता हैं, अर्थात् एक बड़े प्राणी के भार के समान भार प्राप्त करने के लिए छोटे प्राणियों एवं छोटे प्राणियों के कुल भार समान हो तो बडें प्राणियों की अपेक्षा छोटे प्राणियों की संख्या बहु त अधिक होगी।

कुछ छोटे प्राणी एवं कई बड़े प्राणी वाले समुदाय प्रतिरूप में योगदान देने वाली दूसरी घटना आहार-शृंखला होती हैं। ऊर्जा-स्थानान्तरण के समय आहार- शृंखला के प्रत्येक स्तर पर उपयोगी ऊर्जा का ह्रास होता हैं। इसके फलस्वरूप उच्चतर पोषणी स्तरों को बहु त कम ऊर्जा उपलब्ध हो पाती हैं। वे परिस्थितियां इस सामान्यीकरण का अपवाद है जिनमें कार्बनिक पदार्थ का आयात होता हैं।

इस प्रकार मृदा के कई क्विंटल घास के कई लेकिन कम क्विंटल भरण कर सकते हैं। इसी प्रकार घास, शाकाहारियों का भरण करती हैं। सभी शाकाहारियों का भार घास से कम होता हैं। ऐसे समुदाय में रहने वाले सभी मांसाहारियों का भार अपेक्षाकृत बहु त कम होगा। इसलिए 150 पौंड वजन वाले व्यक्ति के भरण के लिए कई एकड़ भूमि ही पर्याप्त होती हैं।

संख्या-पिरेमिड्स से सम्बन्धित तृतीय कारक व्यत्क्रम साइज उपापचय-दर प्रतिरूप होता हैं। संख्या पिरेमिड्स के रूप में विभिन्न समुदाय में भिन्न-भिन्न होते हैं। यह रूप इस तथ्य पर निर्भर करता हैं कि उत्पादकों का साइज छोटा हैं अथवा बड़ा।

4.5.2 जीव-भार के पिरेमिड्स (Pyramids of Biomass)

इन पिरेमिड्स के सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय समूह पर आहार-शृंखला संबधों के सकल प्रभाव का स्थूल चित्र प्राप्त होता हैं। यदि प्राणियों की साइज में बड़ा अन्तर न हो तो उत्तरोतर पोषणी-स्तरों के प्राणियों के सम्पूर्ण भार को अलिखित करने पर धीरे-धीरे ढलवे पिरेमिड्स के प्राप्त होने की आशा की जा सकती हैं। यदि निम्न-स्तरों के प्राणियों की अपेक्षा उच्च स्तरों के प्राणी बहु त बड़े हो तो जीवभार पिरेमिड व्युत्क्रमित हो सकता हैं।रहती हैं। उदाहरण: जब उत्पादक बहु त छोटे एवं उपभोक्ता बहु तबड़े हो तो किसी भी समय उपभोक्ताओं का कुल भार अपेक्षाकृत अधिक हो सकता हैं। ऐसी दशा में, यद्यपि उपभोक्ता-स्तरों की अपेक्षा उत्पादक स्तर से अधिक ऊर्जा का पारण होता हैं, छोटे उत्पादकों के द्रुत उपापचय एवं पलटान के कारण कम स्थिर शस्य जीवभार से भी उत्पादकों द्वारा अधिक उत्पादन की आवश्यकता पूर्ण कर जी जाती हैं। झीलों एवं समुद्र में बसन्त ऋतु की 'युवावस्था' जैसे उच्च प्राथमिक उत्पादकता के समय में उत्पादकों (पादप प्लवक) का भार प्राय: उपभोक्ताओं (जन्तु प्लवक) से अधिक होता हैं। परन्तु शीतकाल जैसे अन्य समय में यह दशा विपरीत हो जाती हैं।

जीवभार पिरेमिड्स के संदर्भ में निम्नलिखित सामान्यीकरण महत्वपूर्ण हैं-

(1) **थलीय एवं उथले जलीय पारिस्थितिकीय-तंत्रो** में जहाँ उत्पादक बड़े एव अपेक्षाकृत दीर्घायु वाले होते हैं, यह आशा की जा सकती हैं कि पिरेमिड चोड़े आधार वाले एवं अपेक्षाकृत स्थायी होगें। पुरोगामी अथवा नव-स्थापित समुदायों में यह प्रवृति होती हैं कि उत्पादकों से उपभोक्ता कम हो। थलीय एवं उथले जलीय समुदायों में हरे पादपों की अपेक्षा उपभोक्ता प्राणियों के जीवन-चक्र एवं आवासीय आवश्यकताएं अधिक समय की आवश्यकता होती हैं।

(2) **विवृत जलीय एवं गहरी जलीय परिस्थितियों** में जहा। उत्पादक छोटे एवं अल्प-आयु के होते हैं; स्थित शस्य परिस्थिति अत्यधिक परिवर्तनशील होती हैं। यहां जीव-भार पिरेमिड त्युत्क्रमित हो सकता है। थलीय एव जलीय समुदायों की अपेक्षा स्थिर शस्य की सकल साइज भी सम्भवत: कम होगी; यद्‌यपि कुल वार्षिक स्थिरीकृत ऊर्जा दोनों दशाओं में समान होगी।

(3) **झीलों एवं तालाबों** में बड़े मूलीय पौधे एवं सूक्ष्म शैवाल दोनों ही महत्वपूर्ण होते हैं। इसलिये इन पारिस्थितिक तंत्रों में स्थित इकाइयों की व्यवस्था मध्यवर्ती होगी।

4.5.3 ऊर्जा का पिरेमिड (Pyramid of Energy)

ऊर्जा पिरेमिड समुदायों की क्रियात्मक प्रकृति का सर्वोत्तम चित्र प्रदान करता हैं। प्रत्येक परिस्थिति में हर स्तर पर आधारित प्राणियों की संख्या एवं भार हर समय नीचे वाले स्तर में उपलब्ध खाद्‌य-ऊर्जा के परिणाम पर निर्भर नहीं करते बल्कि खाद्‌य उत्पादन की दर पर निर्भर करते हैं। ऊर्जा-पिरेमिड आहार-शृंखलाओं पर खाद्‌य-संचरण की दर का चित्रण होता हैं। इसका आकार प्राणियों के साइज एवं उपाचय दर की विभिन्नताओं से प्रभावित नहीं होता। यदि ऊर्जा के सभी स्त्रोंतो पर विचार किया जाये तो गतिकी के द्‌वितीय नियम के कारण यह पिरेमिड हमेशा सीधा रहेगा।

ऊर्जा-पिरेमिड समष्टियों के आपेक्षिक महत्व के मूल्याकंन के आधार होते हैं। छोटे प्राणियों के महत्व को संख्या तथा बड़े प्राणियों के महत्व को जीव-भार अतिप्रभावित कर देता हैं। इसलिए जो समष्टिया साइज उपापचय सम्बन्धों में भिन्न होती हैं उनकी क्रियात्मक भूमिका की तुलना के लिये संख्या एवं जीवभार दोनों ही विश्वसनीय कसौटियाँ नहीं होती, इन दोनों में जीवभार प्राय: अधिक विश्वसनीय होता हैं। इसलिए पारिस्थितिक-तंत्र के किसी एवं सभी घटकों की तुलना के लिये ऊर्जा-प्रवाह अधिक उपयुक्त सूचक होता हैं।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(1) .... संख्या पिरेमिड का उदाहरण हैं।

(2) व्युत्क्रमित पिरेमित .... होते हैं।

(3) प्राणियों की एक श्रेणी से भोजन ऊर्जा का स्थानान्तरण .... कहलाता हैं।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

(1) पारिस्थितिकीय स्तूप क्या हैं?

....

(2) संख्याओ के पिरेमिड से आप क्या समझते हैं?

....

(3) ऊर्जा सूची स्तम्भ क्या हैं?

……………………………………………………………………………………

निम्न पर टिप्पणी लिखें :

(1) पोषणी स्तर

……………………………………………………………………………………

(2) पारिस्थितिय पिरेमिड

……………………………………………………………………………………

(3) पारिस्थिकीय तंत्र में ऊर्जा प्रवास

……………………………………………………………………………………

(4) उत्पादकता

……………………………………………………………………………………

(5) जीव-भार

……………………………………………………………………………………

4.6 तालाब, एक पारिस्थितिकी तंत्र (Pond an ecosytem)

अलवण-जल युक्त तालाब को एक प्रारूपिक पारिस्थितिक-तंत्र के रूप में देखा जा सकता हैं। इसमें पारिस्थितिक तंत्र की मौलिक इकाइयाँ भली प्रकार निरूपित हैं तालाब के अजीवीय पदार्थो में जल, कार्बन डाई ऑक्साइड, ऑक्सीजन, कैल्शियम, नाइट्रोजन, फॉरफोरस, एमीनों अम्ल इत्यादि शामिल हैं। जीव संबन्धी पोषक-तत्वों का कुछ अंश जल में विलीन रहता हैं तथा प्राणियों को हर समय उपलब्ध रहता हैं। परन्तु ये तत्व अधिकांशत: निर्विक्त द्रव्य (विशेषतया तल के अवसादों) में तथा स्वयं प्राणियों की देहों में निश्चित (reserved) रहते हैं। हैज(Haye: 1951) ने बतलाया कि तालाब या झील, केवल पोषक-तत्व युक्त जल का पिण्ड ही नहीं बल्कि यह जल एवं ठोस पदार्थो का संतुलित तंत्र हैं। सामान्य अवस्थाओं में इसमें पाये जाने वाले लगभग सभी पोषक-तत्व ठोस अवस्था में पाये जाते हैं। ठोस पोषक-तत्वों की मुक्त की दर, सोर निविष्ट (Solar input) तथा तापक्रम, दिवस अवधि (day-length) एवं अन्य जलवायवीय प्रवृतियों के चक्र की महत्वपूर्ण विधियाँ है जो सम्पूर्ण पारिस्थितिक-तंत्रो के दैनिक कार्यो को नियन्त्रित करती हैं।

उत्पादकों में दो प्रकार के पौधे सम्मिलित होते हैं-(1) **मूलीय तथा प्लवमान** (floation) पौधें एवं (2) **पादप प्लवक** (phytoplankton) कुछ बड़े तालाबों में पादप प्लवक मुख्य उत्पादक होते हैं क्योंकि मूलीय पौधों का अभाव होता हैं। प्राथमिक उपभोक्ता, अर्थात् शाकाहारी प्राणी जो जीवित पौधों या पौधों के अवशेषों पर निर्भर रहते हैं निम्न प्रकार के होते हैं-

(1) **प्राणी-प्लवक** (zooplankon) एवं (2) **तल-वासी** (bottom dwellers) जैसे मोलस्क्स तथा कुछ कीट (insects)। तालाब के द्वितीयक उपभोक्ता अर्थात् मांसाहारी प्राणी मछलियाँ; कीट इत्यादि होते हैं। ये प्राथमिक उपभोक्ताओं पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। तृतीयक उपभोक्ता अर्थात् द्वितीयक मांसाहारी प्राणी, जो प्राथमिक मांसाहारी प्राणियों पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। प्राय बड़ी मछलियाँ होती हैं। तालाब के **अपघटक** (decomposers) जीवाणु तथा **कवक** (fungi) होते हैं।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(1) .... तालाबों के उत्पादक होते हैं।

(2) .... तालाबों के अपघटक होते है।

(3) .... तल-वासी कहलाते हैं।

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

(1) दिवस अवधि व सौर प्रवाह क्या हैं?

....

(2) अलवण जल के अकार्बनिक तत्व कौन से होते हैं?

....

(3) तालाब के द्वितीयक उपभोक्ता बताइये।

....

4.7 शब्दावली (Glossary)

1. इकोसिस्टम -)Ecosystem (
2. समष्टियाँ -)Population(
3. समुदाय -)community (
4. अजैविक तत्व -)Abiotic Elements (
5. जैविक -)Biotic Elements (
6. उत्पादक -)Producers (
7. उपभोक्ता -)Consumers (
8. अपघटक -)Decomposers (
9. रूपान्तरणकारी -)Modifier (
10. सौरअभिवाह - -)Solar flux (
11. मौसमविज्ञान - -)Meteorology (
12. दीर्घवृत्तीय कक्ष -)Elliptical orbit(
13. प्राथमिक उत्पादन -)Primary production (
14. प्राथमिक उत्पादन -)Gross primary production (
15. पोषणीस्तर- -)Trophic level (
16. ऊष्मागतिकी -)Thermodyonamics(
17. परभक्षण - -)Predation (
18. उत्सर्ग -)Excreta (
19. शक्य उत्पादकता -)Potential productivity (
20. वर्गीकीय सत्ता -)Taxonomic entity (
21. आहार-कड़ी -)Food link (
22. प्लवमान -)Floating (
23. पादप प्लवमान -)Phytoplankton (
24. प्राणीप्लवक- -)Zooplankton (
25. तलवासी- -)Bottom dwellers (

4.8 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. भाटिया एवं कोहली : पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी, रमेश बुक डिपो, जयपुर - नई दिल्ली।
2. शर्मा, पी.डी. इकोलोजी एण्ड एन्वायरमेंट, रस्तोगी पब्लीकेशन, मेरठ
3. आडम एवं बेस्ट : फण्डामेंटलस ऑफ इकोलॉजी, थामसनस बु/कोली, सींगापुर।

इकाई 5
जैव भूरासायनिक चक्र
(Biogeochemical cycle)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 जैव भूरासायनिक चक्र- गैसीय चक्र
    5.2.1 कार्बन चक्र
    5.2.2 नाइट्रोजन चक्र
    5.2.3 नाइट्रोजन स्थिरीकरण
    5.2.4 आक्सीजन चक्र
    5.2.5 जल चक्र
5.3 जैव भूरासायनिक चक्र-अवसादी चक्र
    5.3.1 गंधक चक्र
    5.3.2 गंधक का खनिजीकरण
    5.3.3 फास्फोरस चक्र
5.4 बोध प्रश्न
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य (Objective)

वातावरण (जल, स्थल एवं वायु) में अनेकों ऐसे भौतिक पदार्थ होते हैं, जो जीवों की रचना के लिए आवश्यक हैं। जीव, पृथ्वी पर प्राप्त जीवनोपयोगी भौतिक पदार्थों को ग्रहण करते हैं। उनकी मृत्यु पश्चात् इन कार्बनिक पदार्थों का अपघटन होता है। इसके फलस्वरूप पदार्थ पुन: वातावरण में व्याप्त हो जाते हैं। यह पदार्थो का प्राकृतिक चक्रीयकरण (natural cycle) कहलाता है।

जीव द्रव्य के मूलभूत तत्वों सहित सभी रासायनिक तत्व कुठ विशिष्ट चक्र द्वारा वायुमण्डल में तथा पुन: वातावरण में मुक्त होकर जीव मण्डल (Biosphere) में प्रवाहित होते रहते हैं। इन्हीं चक्रों को जैव-भूरासायनिक चक्र (bio-geochemical cycle) कहते हैं।

जैव-भूरासायनिक चक्र दो प्रकार के होते हैं :

I. गैसीय चक्र
   (i) कार्बन चक्र

(ii) नाइट्रोजन चक्र

(iii) नाइट्रोजन स्थिरीकरण

(iv) ऑक्सीजन चक्र

(v) जल चक्र

II. अवसादी चक्र

(i) गंधक चक्र

(ii) गंधक का खनिजीकरण

(iii) फास्फोरस चक्र

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

जीवों को जटिल कार्बनिक पदार्थ पौधों से प्राप्त होते हैं। ये पदार्थ समस्त उपभोक्ता वर्ग को पौधों से ही मिलते हैं। इससे सूर्य से प्राप्त ऊर्जा रूपान्तरित होकर कार्बनिक पदार्थ में संचित हो जाती है। पौधे एवं जंतुओं की मृत्यु के पश्चात अपघठकों जैसे जीवाणु, कवक इत्यादि की जैविक क्रियाओं द्वारा मृत जीव के कार्बनिक पदार्थ विघटित हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप पदार्थो का कुछ भाग अपघटकों के शरीर निर्माण में लग जाता हैं।

जीवन के लिए आवश्यक तत्वों व अकार्बनिक यौगिकों के प्रवाह को खनिजों का चक्रिय प्रवाह कहते हैं।

प्रत्येक चक्र को दो भाग होते हैं -

(1) निचय कुण्ड (reservoir pool)

(2) चक्रीय कुण्ड (cyclic pool)

निचय कुण्ड बडा व मंद गतिशील होता है। यह साधारणतया जैविक घटक नहीं होता। इसे विशाल अजैविक कुण्ड (non-biological compartment) भी कहते हैं। इसमें उपस्थित पोशक द्रव्यों का सीधा उपयोग स्वंयपोषी पादप अथवा कोई भी जीवधारी नहीं कर सकता हैं। चक्रीय कुण्ड छोटा एवं सक्रिय घटक होता है। यह वातावरण व प्राणी के बीच विनिमयषील होता है। इसे लघु जैविक कुण्ड (biological compartment) भी कहते हैं।

5.2 जैव भूरासायनिक चक्र

सभी जीवों को संश्लेषण व उपापचय क्रियाओं के लिए रासायनिक तत्वों की आवश्यकता होती है। कार्बोहाइड्रेटस व लिपिडस, कार्बन, हाइड्रोजन व आक्सीजन से बने होते हैं। प्रोटिन्स में इन तीनों के अलावा नाइट्रोजन भी पायी जाती हैं। ये खनिज तत्व भूमि से बार बार पौधों द्वारा अवशोषित होकर विभिन्न जीवों में होते हुए निरन्तर सक्रिय पथ में भ्रमण करते रहते हैं। ये सभी तत्व वायु, जल तथा स्थलमण्डल में पाये जाते है। इन स्थलों से जीव अपनी अवश्यकतानुसार इन तत्वों का अवशोषण कर एक चक्र के रूप में इन्हें पुन: लौटा दिया जाता है। इस प्रकार खनिज तत्वों के सक्रिय भ्रमण को जैव भूरासायनिक चक्र कहते हैं। ये मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं -

(1) गैसीय चक्र (gaseous type)

(2) अवसादी चक्र (sedimentary cycle)

गैसीय चक्र में निचय कुण्ड, वायुमण्डल या जलमण्डल होता है।

5.2.1 कार्बन चक्र (Corbon Cycle)

- जीवों का शरीर कार्बनिक यौगिकों से बना होता है। वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन डाई ऑक्साइड ही जीवों के लिए कार्बन का प्रमुख स्त्रोत हैं।
- कार्बन समस्त प्रकार के कार्बनिक पदार्थो में एक प्रमुख तत्व के रूप में पाया जाता है।
- कार्बन डाइ ऑक्साइड व जल मिल कर जीव द्रव्य का निर्माण करते हैं।
- कार्बन व ऑक्सीजन जो कार्बन डाइ ऑक्साइड के साथ प्रवेश करती है, जीव में मृत्यु हाने तक रहती है। मृत्यु के पश्चात जीवणु, कवक व अन्य सूक्ष्म जीवाणु अपघटन द्वारा कार्बन को पुन: वायुमण्डल को लौटाते है।
- कुछ मात्रा में पौधे व जंतु अपनी श्वसन क्रिया द्वारा उत्पन्न कार्बन डाइ ऑक्साइड वायुमण्डल को लौटाते हैं। पैट्रोल, डीजल, कारखानों से निकलने वाला धुआँ इत्यादि से भी कार्बन डाइ ऑक्साइड प्राप्त होती रहती है।
- जलीय पारिस्थितिक तंत्रों से कार्बन डाइऑक्साइड वायुमण्डल से जल में विसरण द्वारा घुल जाती है। इसके अतिरिक्त वर्षा द्वारा भी वायुमण्डलीय कार्बन डाइऑक्साइड पानी से क्रिया करती है। यह एक उत्क्रमणीय क्रिया होती है। यह वायुमण्डल एवं जल दोनों में से, जिसमें से इसकी सांद्रता कम होती है, उसी और विसरित होकर संतुलन बनाये रखती है।

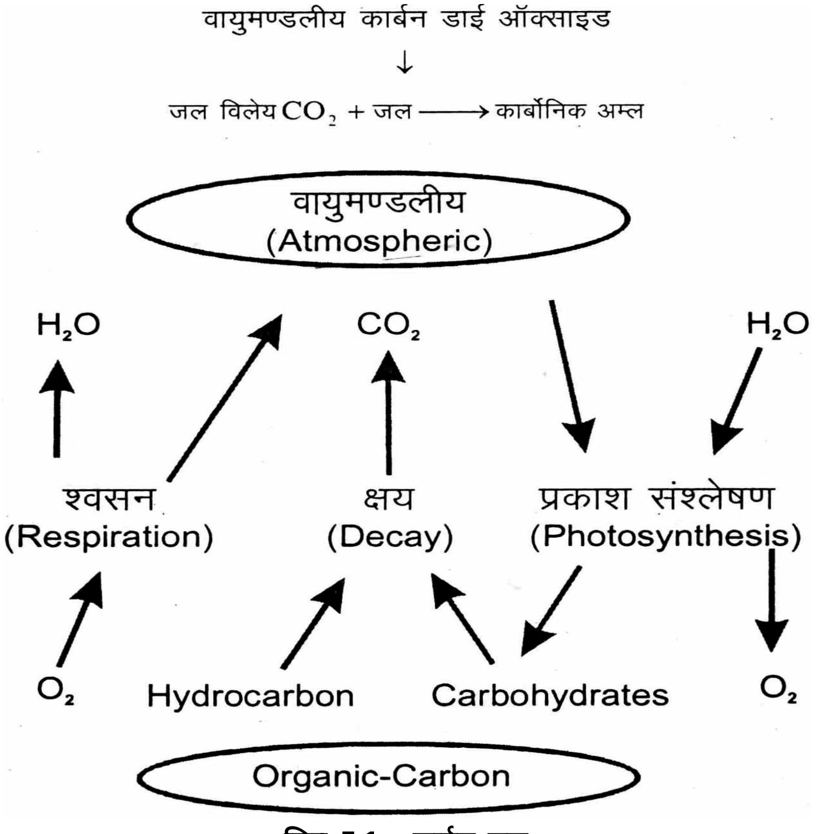

चित्र 5.1 : कार्बन चक्र

5.2.2 नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)

- सभी जीवों को नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। प्रोटीन, जीव द्रव्य का प्रमुख अंश है तथा प्रोटीन में नाइट्रोजन अनिवार्य रूप से उपस्थित रहती है।
- वायुमण्डल में नाइट्रोजन 79 प्रतिशत मात्रा में उपस्थित होती है। अधिकतर जीव इसका सीधे उपयोग नहीं कर सकते हैं।
- प्रकृति में नाइट्रोजन का सीधा उपयोग करने की क्षमता कुछ जीवाणुओं व हरे नीले रंग के शैवाल में होती है। ऐसे जीवाणु जो नाइट्रोजन को नाइट्रेट में परिवर्तित करते हैं, उन्हें नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु कहते हैं।
- अधिकतर जीव नाइट्रोजन का उपयोग नाइट्रेट आयन (Nitrate) के रूप में करते है। नाइट्रेट आयन का अवशोषण पादपों द्वारा वातावरण से होता है।
- प्रकृति में विधुत चमकने पर वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन व ऑक्सीजन आपस में क्रिया कर नाइट्रोजन के ऑक्साइड बनाते हैं।
- ये नाइट्रोजन ऑक्साइड वर्षा के जल में घुलकर नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं जो भूमि पर गिरने पर मिट्टी में उपस्थित क्षारों से क्रिया कर लवण बनाते हैं।
- ये लवण पादपों द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। पौधों के शरीर में इन नाइट्रोजन यौगिकों को प्रोटीन या अन्य कार्बनिक यौगिकों में बदल दिया जाता है।
- जब पौधों या उनके किसी भाग को जंतु खाते हैं तो नाइट्रोजन जंतुओं के शरीर में पहुंचती है। जन्तु व पौधों के अवशेष मल, मूत्र आदि के रूप में यह नाइट्रोजन के रूप में यह नाइट्रोजन यौगिक भूमि में पहुंचते हैं। जहां सूक्ष्म जीव इन्हें अपघटित कर पौधों के अवशोषिण योग्य बना देते हैं।
- भूमि में उपस्थित विनाइट्रीकारक जीवाणु नाइट्रोजन यौगिकों को नाइट्रोजन के रूप में बदल देते हैं, जो पुन: वायुमण्डल में पहुंच जाती है।
- कई उद्योग भी वायुमण्डल की नाइट्रोजन को यौगिकों में बदलते हैं जिनका उपयोग उर्वरक के रूप में किया जाता है। प्रकृति में नाइट्रोजन के निरन्तर होने वाले प्रवाह को नाइट्रोजन चक्र कहते हैं।

वायुमण्डलीय नाइट्रोजन $\xrightarrow[\text{जीवाणु}]{N_2\text{ स्थायीकारी}}$ कार्बनिक नाइट्रोजन

अमोनिया $\xrightarrow[\text{नाइट्रिकारी जीवाणु}]{}$ नाइट्रेट

नाइट्रेट $\xrightarrow[\text{जीवाणु}]{\text{विनाइट्रिकारी}}$ वायुमण्डलीय नाइट्रोजन

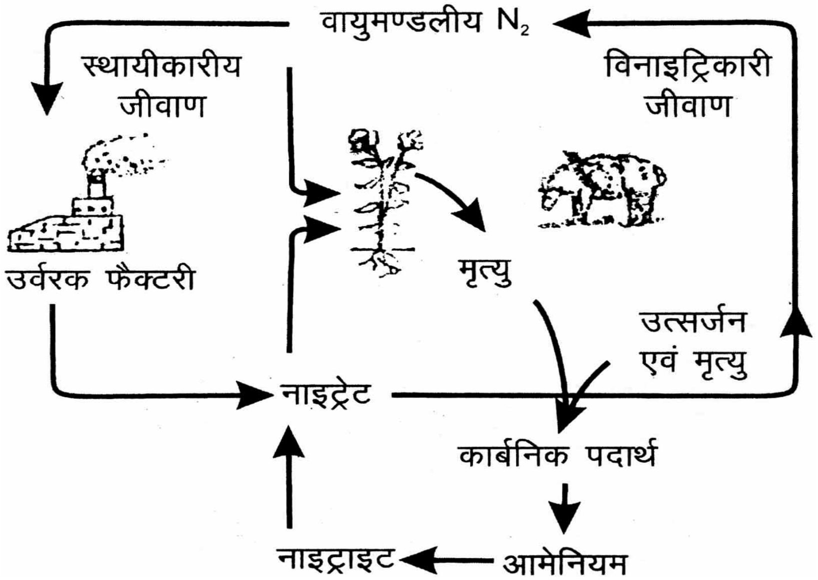

चित्र 5.2 : नाइट्रोजन चक्र

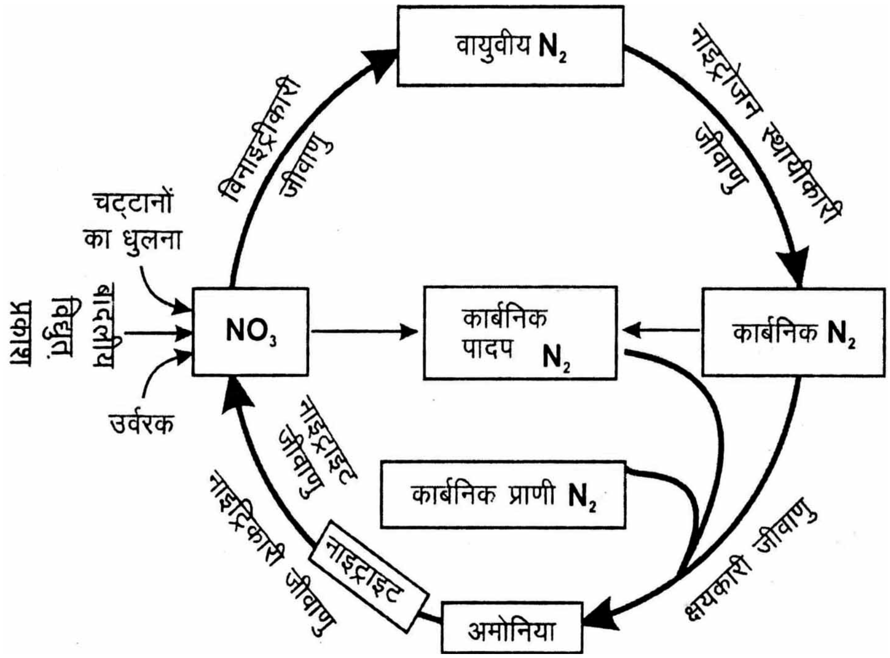

चित्र 5.3 : नाइट्रोजन चक्र

5.2.3 नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation)

वातावरण में लगभग 80 प्रतिशत नाइट्रोजन विद्यमान है। प्रत्येक जीवधारी का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवयव है। नाइट्रोजन का स्थिरीकरण द्वारा वायुमंडल की निष्क्रिय नाइट्रोजन गैस का अमोनिया के रूप में स्थिरीकरण हो जाता है। यह स्थिरीकृत नाइट्रोजन (fixed N_2) पौधों तथा अन्य सूक्ष्म जीवों द्वारा अमीनों अम्ल तथा अन्य नाइट्रोजन युक्त पदार्थो के निर्माण में काम आती है।
दलहनी पौधे (Leguminous) नाइट्रोजन की सीमित मात्रा होने की दशा में भी उग, पनप सकते हैं क्योंकि ये नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं (राइजोबियम) के साथ सहजीवन स्थापित करते हैं। ये जीवाणु अपनी व दलहनी फसलों की वृद्धि के लिए वायुमण्डल की नाइट्रोजन को भूमि में स्थापित करते हैं। जब ये पौधे मर जाते है तो उनकी नाइट्रोजन मिट्टी में मिल जाती हैं। इस प्रकार मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है।
नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य नाइट्रोजिनेस रिडक्टेज नामक एन्जाइम द्वारा होता है। यह एन्जाइम नाइट्रोजिनेज को अपचयित करता है। इस क्रिया में प्राप्त इलेक्ट्रोन नाइट्रोजन को अपचयित करने के काम आते हैं। इस प्रकार नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता रहता है।

5.2.4 आक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)

अधिकांश जीवों को जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन जरूरी है। इसे जीवन गैस के नाम से भी पुकारते है। स्थलीय वायुमण्डल से तथा जलीय जीव जल से ऑक्सीजन प्राप्त करते हैं। हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं। यह ऑक्सीजन सूक्ष्म जीवों, पादपों व जंतुओं द्वारा श्वसन में उपयोग में लायी जाती है। सामान्यत: जितनी ऑक्सीजन उपयोग में ली जाती है, उतनी ही वातावरण में उत्पन्न होती है। इस प्रकार इनकी मात्रा स्थिर बनी रहती है। आक्सीजन का निश्चित अनुपात बनाये रखने के लिए प्रकृति में निरन्तर ऑक्सीजन चक्र चलता रहता है। मगर वनों की कटाई होने के कारण संतुलन बिगड गया है तथा कार्बन डाई आक्साईड की मात्रा वायुमण्डल में बढने लगी है। इस कारण ग्रीन हाऊस प्रभाव जैसे बुरे प्रभाव बढने लगे हैं।

– आक्सीजन गैस के रूप में श्वसन क्रिया से जीवधारियों के शरीर में प्रवेश करती है और इस क्रिया में CO_2 व H_2O उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निर्मित उपापचयी जल शरीर में उपस्थित जल में मिल जाता है।
– परन्तु कुछ भाग उत्सर्जन द्वारा वापिस पर्यावरण में चला जाता है तथा कुछ मात्रा पौधों में प्रकाश संश्लेषण में काम आ जाती है।
– प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न O_2 वापिस फिर वायुमण्डल में मिलकर चक्र पूरा करती है। इस प्रकार जैव चक्र से पारिस्थितिक तंत्र में आक्सीजन का संतुलन बना रहता है।

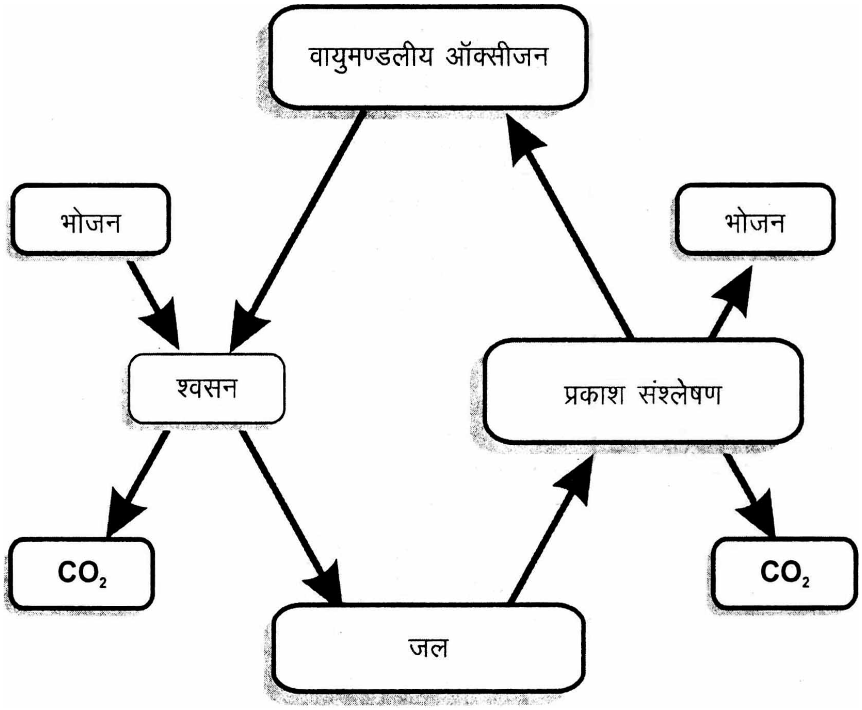

चित्र 5.4 : ऑक्सीजन चक्र

5.2.5 जल चक्र (Water Cycle)

जल जीवन के लिए प्रमुख आवश्यक द्रव्य हैं। पृथ्वी पर उपस्थित जल का 97 प्रतिशत स्त्रोत समुद्र है। पहाडों व ध्रुव पर इसकी मात्र 2% बर्फ के रूप में जमा है। शेष एक प्रतिशत जल ही जलचक्र के रूप में जीवों के उपयोग के लिए उपलब्ध है। जल स्त्रोत से जल वाष्प बनकर वर्षा एवं हिमं के रूप में नदियों द्वारा आंशिक रूप से पुन: सागर में वाष्पन द्वारा वायुमण्डल में मिल जाता है। कुछ अंश पृथ्वी के निचले स्तरों में भूमि जल के रूप में इकट्ठा होता रहता है। जल की कमी को पूरा करने के लिए वर्षा से प्राप्त जल को एकत्रित कर उसका समुचित उपयोग आवश्यक है।

वायुमंडलीय आकरीजन इसी रूप में उपापचय में केवल श्वसन के द्वारा ही प्रवेश करती है तथा उपापचय से प्रकाश संश्लेषण द्वारा बाहर निकलती है। तब यह जल से मिलती है और इस रूप में यह जल चक्र से या अप्रत्यक्ष रूप से कार्बन चक्र से संबंधित हो सकता है (चित्र 5.5)। इस तरह तीनों चक्रों के बीच एक प्रकार का आपसी संबंध रहता है।

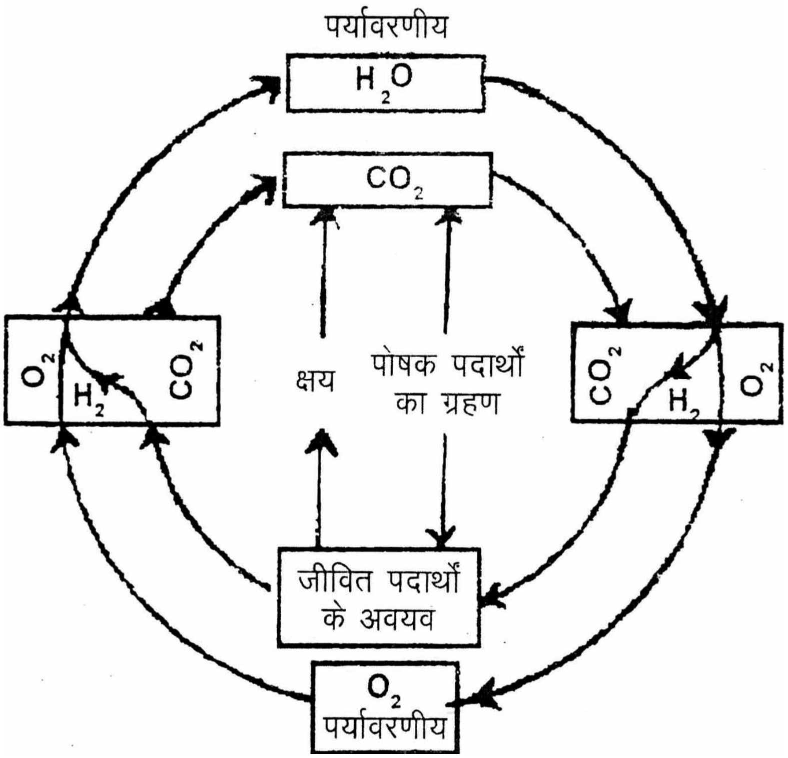

चित्र 5.5 : ऑक्सीजन, जल और कार्बन चक्रों में परस्पर सम्बन्ध

5.3 अवसादी चक्र (Sedimentary Cycle)

इसमें गैसों के रूप में उपस्थित तत्वों का परिसंचरण होता है। समस्त खनिज पोषक द्रव्य इसी समूह में आते है। अवसाद के द्वारा उनके पिण्ड कुण्ड का निर्माण होता है। अवसादीय जीव भूरासायनिक चक्रों का भ्रमण पथ अधिक अपूर्ण होता है। क्योंकि ये मुख्य रूप से भूमि से सम्बंधित होते हैं।

5.3.1 गंधक चक्र (Sulphur Cycle)

गंधक चक्र भी अवसादी चक्र है। गंधक कुछ एमीनों अम्लों में आवश्यक तत्व के रूप में पाया जाता है। जीवों में गंधक की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती हैं। गंधक गैस के रूप में हाइड्रोजन सल्फाइड (H2S) व सल्फर डाइ ऑक्साइड (SO2) के रूप में वायुमण्डल के रूप में पाया जाता है। यह मृदा में सल्फेट, सल्फाइड व कार्बनिक सल्फर के रूप में पाया जाता है।

लावा की क्रियाओं से व जीवाश्म ईधनों के जलने से सल्फर डाइ ऑक्साइड गैस तथा जीवाणुओं के अपघटन क्रिया से हाइड्रोजन सल्फाइड गैस निकलकर वायुमण्डल में आती है। कुछ जीव भी गंधक के लिये सल्फर डाइ ऑक्साइड या हाइड्रोजन सल्फाइड का उपयोग कर सकते है जैसे लाइकेन। अधिकांश जीव गंधक का उपयोग अकार्बनिक सल्फेट के रूप में करते हैं। पौधों को गंधक मृदा से सल्फेट के रूप में प्राप्त होती हैं। जंतुओं को गंधक पादपों द्वारा प्राप्त होती है।

5.3.2 गंधक का खनिजीकरण (Mineralization of Sulphur)

पदप, जंतुओं की मृत्यु के पश्चात उनमें संग्रहित गंधक अपघटन व खनिजीकरण के परिणामस्वरूप पुन: मृदा को लौट जाता है। गंधक के अपघटन में कवक व जीवाणु महत्वपूर्ण योगदान करते है। विशेषकर

एश्चेरिचिया (Escherichia) व प्रोटियस (Proteus), वायु की अनुपस्थिति में, तथा एस्परजिलस (Aspergillus) और न्यूरोस्पोरा (Neurospora) वायु की उपरिथति में अपघटन में सहायता करते हैं। खनिजीकरण की क्रिया के कारण कार्बनिक गंधक सल्फेट में परिवर्तित होती है। परन्तु वायु की कमी पर सल्फाईड विशेष कर हाइड्रोजन सल्फाईड गैस बनाते हैं।

प्राय: पौधे मुख्य रूप से सल्फेट के रूप में गंधक का अवशोषण करते हैं। ये अपचयित होकर प्रोटिन निर्माण में भाग लेते हैं। कई जीवाणु सल्फेट का अपचयन ऑक्सीजन की कमी में करते हैं। इस प्रकार के जीवाणु मृतजीवी कहलाते है। ये सल्फेटों का उपयोग कार्बनिक पदार्थो के आक्सीकरण में करते हैं। इस प्रकार के मुख्य जीवाणु हैं - ऐयरोबेक्टर, एश्चेरिचिया डिसल्फोंवाइब्रो, वाइब्रोयस्तूरी आदि।

जलाशय के तल की मृदा व गहरे समुद्रों में हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा अधिक होती हैं। अपचयन की क्रिया निम्न प्रकार होती है -

RCH2OH + SO4 → RCOOH + H2O + NH4

CH2NH2COOH + H2O + SO4 → H2O + H5 + HCO3 + NH4

उपरोक्त क्रिया द्वारा बना गंधक और सल्फाइड कुछ जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीजन की उपस्थिति में सल्फर डाई आक्साईड और गंधक के अस्त में परिवर्तित हो जाता है।

उदाहरण बोगियाटो और थायोबेसिल्स (Beggiatoa and Thiobacillus) जीवाणु सल्फाइडों को गंधक सल्फर डाई आक्साईड और सल्फेटों में बदल देते हैं।

$$H_2S + 2O_2 \rightarrow H_2SO_4$$

$$S + 3O_2 + H_2O \rightarrow H_2SO_4$$

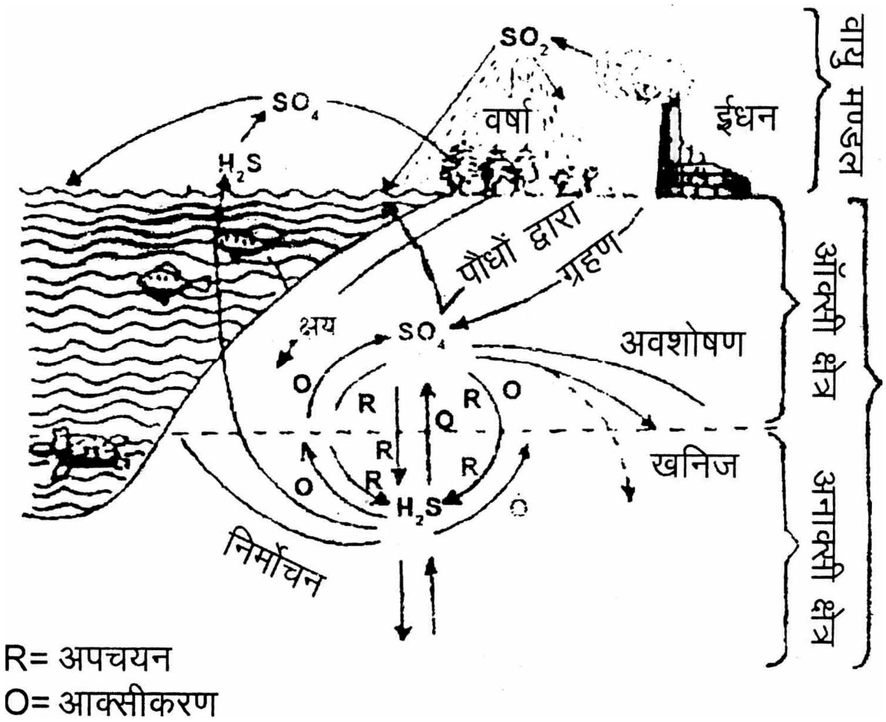

5.3.3 फास्फोरस चक्र (Phosphorus Cycle)

फॉस्फोरस चक्र एक अवसादी चक्र है। यह जीव द्रव्य का एक प्रमुख घटक है। यह न्यूक्लिक अम्लों, फॉस्फोलिपिडस व अन्य कई यौगिकों में पाया जाता है। फॉस्फोरस सभी जैव क्रियाओं में होने वाले ऊर्जा के अर्न्तपरिवर्तन हेतु अति आवश्यक पोषक तत्व हैं। जीव जगत में फॉस्फोरस पादपों द्वारा प्रवेश करते हैं। फॉसफोरस विभिन्न चटटानों के अपरदन क्रिया के कारण मष्दा में इकट्ठा होता रहता है। यहाँ से यह पौधों द्वारा अवशोषित कर पादपों व जंतुओं के शरीर में प्रवेश करता है। मष्त्युपरान्त अपघटन क्रिया द्वारा पुन: मष्दा में लौट आता है व पौधों के लिये उपलब्ध होता है।

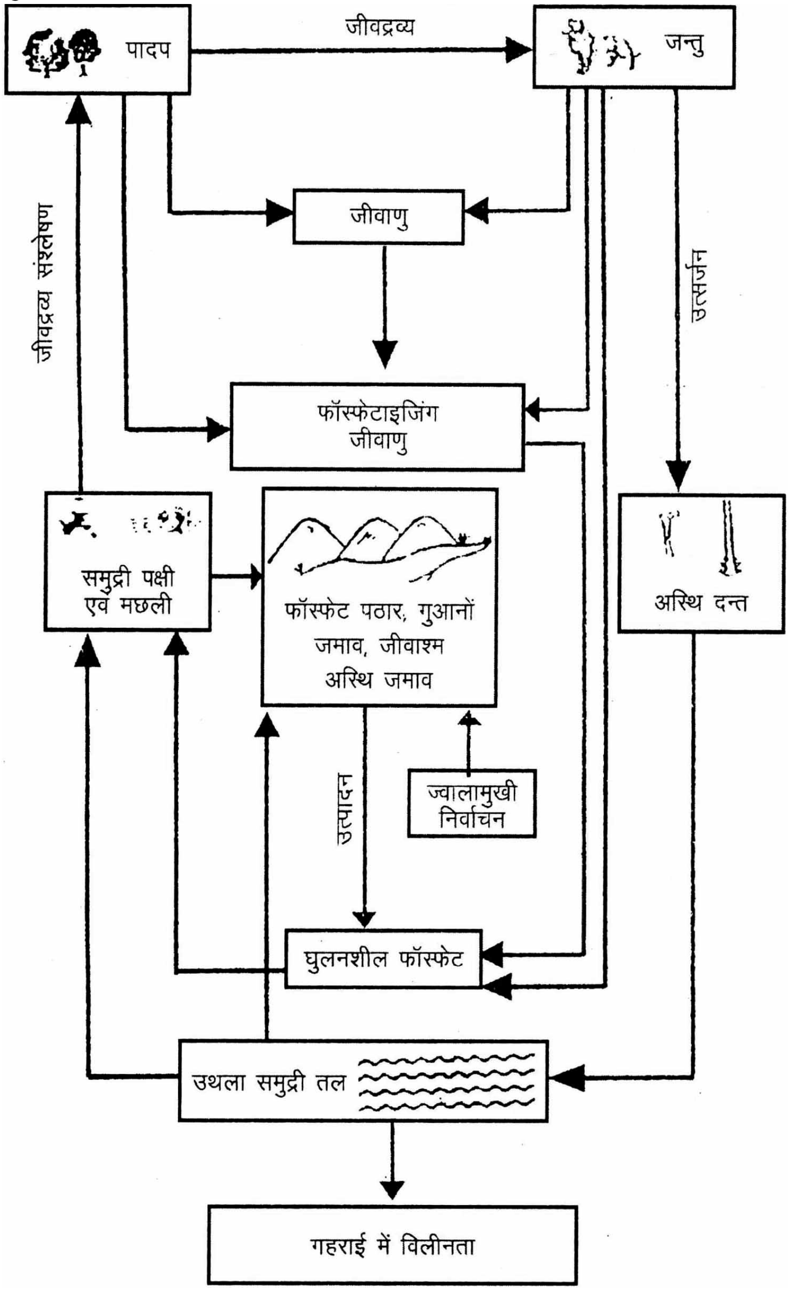

चित्र 5.7 : फॉस्फोरसचक्र

सामान्यत: पौधे आर्थोफास्टेस (orthophosphate) आयन के रूप में अकार्बनिक फारफेट अवशोषित करते हैं। यह फॉस्फेट कार्बनिक फॉस्फेट के रूप में जंतुओं व अपघटक (decomposurs) के शरीर में स्थान्तरित होकर अपघटन (decomposition) व खनिजीकरण (miniralization) द्वारा पुन: मृदा को चक्रण के लिए उपलब्ध हो जाती हैं।

सामान्यत: फॉस्फेट के अपरदन से मृदा में फॉस्फेट इकट्ठा होता है। इस फॉस्फेट का अधिकतर भाग जल के प्रवाह के साथ समुद्र में इकट्ठा हो जाता है। इस विशाल फॉस्फोरस के भंडार का बहुत कम भाग जंतुओं द्वारा लौटाया जाता है। मछलियों द्वारा फॉस्फोरस की कुछ मात्रा पृथ्वी पर लौटाई जाती है। पृथ्वी पर फॉस्फोरस की मात्रा कम होती जा रही है। आधुनिक कृषि में मानव फॉस्फोरस की बहुत अधिक मात्रा उर्वरकों के रूप में काम ला रहा है। इससे फॉस्फोरस का चक्रण अव्यवस्थित हो रहा है। क्योंकि भूमि में मिलाये गये फॉस्फोरस की अधिकतर मात्रा जल द्वारा प्रवाहित होकर समुद्र के जलों में इकटठी होती जा रही है।

5.4 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न-(अ)

नोट - 1. अपना उत्तर दिये गये स्थान पर ही लिखें।

2. अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलायें।

प्र01 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) जीवन के लिए आवश्यक तत्वों के प्रवाह को................ कहते हैं।

(ii) निचय कुण्ड को विशाल................ भी कहते है।

(iii) चक्रीय कुण्ड को लघु................ भी कहते हैं।

(iv) खनिज तत्वों के सक्रिय भ्रमण को...................................... कहते हैं।

(v) कार्बन डाई ऑक्साईड व जल मिल कर .... का निर्माण करते हैं।

(vi) गंधक चक्र एक .... चक्र है।

(vii) पौधों को गंधक मृदा से.......................... के रूप में प्राप्त होती है।

(viii) फॉस्फोरस चटटानों की......................... क्रिया के कारण मृदा में इकटठा होता रहता है।

(ix) गंधक के अपघटन में .... व.......................... महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

प्र02 बहुविकल्पी प्रश्न

(i) हरे पोधों द्वारा सौर ऊर्जा का रूपान्तरण होता है-

(अ) कार्बनिक पदार्थो में (ब) अकार्बनिक पदार्थो में

(स) खनिज तत्वों में (द) रासायनिक तत्वों में

(ii) मृत जीवों के कार्बनिक पदार्थो के अपघटन से मुक्त गैस को कहते है-

(अ) कार्बन डाई ऑक्साइड (ब) ऑक्सीजन

(स) नाइट्रोजन (स) तीनों ही

(iii) 'जीवन गैस' किसे कहते हैं-

(अ) नाइट्रोजन (ब) ऑक्सीजन (द) तीनों को (स) कार्बन डाई ऑक्साइड

(iv) 'ग्रीन हाउस प्रभाव' वातावरण में किस गैस की अधिकता से उत्पन्न हुआ है?

(अ) आक्सीजन (ब) अमोनिया (स) नाइट्रोजन (द) कार्बन डाई ऑक्साइड

(v) हाइड्रोजन सल्फाईड व सल्फर डाई ऑक्साईड के रूप में वायुमंडल में पाया जाता है -

(अ) नाइट्रोजन (ब) ऑक्सीजन (स) गंधक (सल्फर) (द) तीनों ही

(vi) पौधों की गंधक मष्दा से प्राप्त होती है -

(अ) सल्फेट के रूप में (ब) सल्फाइड के रूप में

(स) सल्फर अम्ल के रूप में (द) अकार्बनिक सल्फर के रूप में

(vii) कार्बनिक गंधक सल्फेट में किस क्रिया के द्वारा परिवर्तित होती है -

(अ) अपघटन (ब) अपरदन (स) खनिजीकरण (द) तीनों ही

(viii) वायु की कमी पर हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बनाते हैं-

(अ) सल्फाइड (ब) सल्फेट (स) सल्फर (द) कोई नहीं

प्र०3 संक्षिप्त में उत्तर दीजिए -

(i) खनिज तत्वों के पृथ्वी व जीवों के माध्यम से होकर सक्रिय भ्रमण को कहते है?

....

....

(ii) प्रकृति में ऑक्सीजन की निष्चित मात्रा बने रहने के लिये कौन सी क्रिया होती है?

....

....

(iii) नाइट्रोजन को नाइट्रेट में परिवर्तित करने वाले जीवाणु क्या कहलाते है?

....

....

(iv) स्थलिय व जलीय जीव ऑक्सीजन किरन स्त्रोत से प्राप्त करते है?

....

....

(v) वायुमंडल के अतिरिक्त कार्बन डाई ऑक्साइड के अन्य दो स्त्रोतों के नाम बताइये।

....

....

(vi) सल्फेट का अपचयन ऑक्सीजन की कमी में करने वाले जीवाणु क्या कहलाते है?

....

....

(vii) वायु की उपस्थिति में गंधक का अपघटन करते है?

....

....

(viii) मृतजीवी जीवाणु सल्फेटों का उपयोग किसमें करते हैं?

....

....

(ix) फास्फोरस के मृदा में इकट्ठा होने का कारण है?

....

....

5.5 सारांश (Summary)

जीवों को अपनी जैवीय क्रियाओं को चलाने तथा जीव द्रव्य के निर्माण हेतु अनेक पदार्थो की आवश्यकता होती है। जीव द्रव्य के मूलभूत तत्वों सहित सभी रासायनिक तत्व कुछ विशिष्ट चक्र द्वारा वायुमण्डल में तथा पुन: वातावरण में मुक्त होकर जीव मण्डल (biospere) में प्रवाहित होते रहते हैं। इन्हीं चक्रों को जैव-भूरासायनिक चक्र कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं -

(i) गैसीय चक्र

(ii) अवसादी चक्र

प्रत्येक चक्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है

(अ) निचय कुण्ड

(ब) चक्रीय कुण्ड।

गैसीय चक्र में निचय कुण्ड वायुमण्डल या जलमण्डल होता है जबकि अवसादी चक्र में निचय कुण्ड अश्व-मण्डल (lithosphere) होता है।

गैसीय चक्रक निम्न प्रकार के हैं-कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, ऑक्सीजन चक्र, जल चक्र।

अवसादी चक्र निम्न प्रकार के हैं-गंधक चक्र, गंधक का खनिजीकरण एवं फास्फोरस चक्र।

कार्बन चक्र में वयुमण्डल में उपस्थित कार्बनडाइऑक्साइड ही जीवों के लिए कार्बन का प्रमुख स्त्रोत है। जलीय पारिस्थितिक तन्त्रों से कार्बन डाइऑक्साइड वायुमण्डल से जल में विसरण द्वारा घुल जाती है।

इसी प्रकार सभी जीव नाइट्रोजन का उपयोग नाइट्रेट आयन के रूप में करते हैं। नाइट्रेट आयन का अवशोषण पादपों द्वारा वातावरण से होता है। नाइट्रोजन का स्थिरीकरण द्वारा वायुमण्डल की निष्क्रिय नाइट्रोजन गैस का अमोनिया के रूप में स्थिरीकरण हो जाता है।

ऑक्सीजन ऑक्सीजन को जीवन-गैस भी कहते हैं। सामान्यत: जितनी ऑक्सीजन उपयोग में ली जाती है उतनी ही वातावरण में उत्पन्न होती है।

जल जीवन के लिए प्रमुख आवश्यक द्रव्य है। अत' जल की कमी को पूरा करने के लिए वर्षा से प्राप्त जल को एकत्रित कर उसका समुचित उपयोग आवश्यक है।

समस्त खनिज पोषक द्रव्य अवसादी चक्र में आते हैं। ये चक्र मुख्य रूप से भूमि से सम्बन्धित होते हैं।

5.6 शब्दावली (Glossary)

(i) जैव-भूरासायनिक चक्र (bio-geochemical cycle) :

सभी रासायनिक तत्व कुछ विशिष्ट चक्र द्वारा वायुमण्डल में तथा पुन: वातावरण में मुक्त होकर प्रवाहित होते रहते हैं। इन्हें जैव-भूरासायनिक चक्र कहते हैं।

(ii) निचय कुण्ड या अजैविक कुण्ड (non-biological compartment)

बड़ा व मन्द गतिशील तथा साधारण जैविक घटक नहीं होता।

(iii) चक्रीय कुण्ड या जैविक कुण्ड (biological compartment)

छोटा एवं सक्रिय तथा प्राणी एवं वातावरण के बीच विनिमयशील होता है।

(iv) नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु (nitrogen fixation bacteria) :

ऐसे जीवाणु जो नाइट्रोजन को नाइट्रेट में परिवर्तित करते हैं।

5.7 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. पर्यावरण जैविकी एवं जीव वितरण — भाटिया, कोहली
2. पर्यावरण जैविकी के विभिन्न आयाम — भाटिया, कोहली, मोहनस्वरूप
3. पारिस्थितिकी — पारिख, भट्टमेवाड़ा

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-अ

1.	(i)	चक्रीय प्रवाह	(ii)	अजैविक कुण्ड
	(iii)	जैविक कुण्ड	(iv)	जैव-भूरासयायनिक चक्र
	(v)	अवसादी	(vi)	सल्फेट
	(vii)	अपरदन	(viii)	कवक, जीवाणु
2.	(i)	अ	(ii)	अ
	(iii)	ब	(iv)	द
	(v)	स	(vi)	अ
	(vii)	स	(viii)	अ
3.	(i)	जैव-रासायनिक चक्र		
	(ii)	आक्सीजन चक्र		
	(iii)	नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु		

(iv) स्थलीय - वायुमण्डल से जलीय - जल से

(v) पेट्रोल, कारखानों से निकलने वाला धुआं

(vi) मृतजीवी जीवाणु

(vii) स्परजिलस और न्यूरोस्पोरा

(viii) कार्बनिक पदार्थो के ऑक्सीकरण में।

(ix) चटट्टानों के अपरदन की क्रिया।

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पारिरिथतिकी तन्त्र में होने वाले चक्रों, विशेषकर कार्बन तथा ऑक्सीजन के चक्रों का वर्णन कीजिये।
2. गंधक व फास्फोरस चक्रों का तुलनात्मक विवरण दीजिये।
3. गैसीय चक्र व अवसादी चक्रों में उदाहरण सहित अन्तर स्पष्ट कीजिये।
4. ऑक्सीजन, जल और कार्बन चक्रों में चित्र की सहायता से सम्बन्ध बताइये।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिये -

(i) ऑक्सीजन चक्र (ii) कार्बन चक्र

(iii) नाइट्रोजन (iv) फास्फोरस चक्र

(v) गंधक चक्र

इकाई 6

पारितन्त्र समस्थिरता एवं पारिस्थितिकीय निकेत

(Ecosystem Homeostasis and Ecological Niche)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पारितन्त्र समस्थिरता

- 6.2.1 पारितन्त्र
- 6.2.2 पारितन्त्र का कार्यात्मक पहलू
- 6.2.3 कार्यात्मक पहलू या गतिशीलता का सूचक (पारितन्त्र और उत्पादकता अवधारणा)
- 6.2.4 उत्पादकता के प्रकार
- 6.2.5 प्रारम्भिक उत्पादकता मापन विधि

6.3 पारिस्थितिकीय निकेत

- 6.3.1 गौस का स्पर्द्धात्मक वर्जन का सिद्धान्त
- 6.3.2 निकेत अतिक्रमण
- 6.3.3 निकेत जटिलता
- 6.3.4 पारिस्थितिकीय तुल्य
- 6.3.5 लक्षण विस्थापन
- 6.3.6 पारिस्थितिकीय तनाव क्षेत्र

6.4 बोध प्रश्न

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 संदर्भ ग्रंथ

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objective)

पारितन्त्र में जैविक और अजैविक घटकों में कार्यात्मक सन्तुलन की प्रवृति (natural tendency) पाई जाती है। घटक परिवर्तन से उत्पन्न स्थिति को स्वतः, निश्चित प्रतिक्रिया द्वारा सामान्य बना दिया जाता है। तन्त्र सन्तुलन की इस प्रवृत्ति को समरथायित्व या समस्थिरता (homeostasis) कहते हैं। तथा प्राकृतिक निवास के उस सुरक्षित' क्षेत्र को, जिसकी पारिस्थितिकी या वातावरण कारक किसी जन्तु विशेष को गतिशील जीवन-यापन करने के लिए उपयुक्ता हों, को उसका (niche) कहते हैं। इस अध्याय में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गयी है -

1. पारितन्त्र समस्थिरता
    1.1 पारितन्त्र
    1.2 पारितन्त्र का कार्यात्मक पहलू
    1.3 कार्यात्मक पहलू या गतिशीलता का सूचक (पारितन्त्र और उत्पादकता अवधारणा)
    1.4 उत्पादकता के प्रकार
    1.5 प्रारम्भिक उत्पादकता मापन विधि
2. पारिस्थितिकीय निकेत
    2.1 गौस का स्पर्द्धात्मक वर्जन का सिद्धान्त
    2.2 निकेत अतिक्रमण
    2.3 निकेत जटिलता
    2.4 पारिस्थितिकीय तुल्य
    2.5 लक्षण विस्थापन
    2.6 पारिस्थितिकीय तनाव क्षेत्र

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

पारितन्त्र में जैविक और अजैविक घटकों में कार्यात्मक सन्तुलन की प्रवृत्ति (natural tendency) पाई जाती है। सभी घटकों का उतार-चढ़ाव एक निश्चित सीमा के अन्दर रखने के लिए किसी भी परिवर्तन से उत्पन्न स्थिति को स्वत:, निश्चित प्रतिक्रिया द्वारा सामान्य बना दिया जाता है। तन्त्र सन्तुलन की इस प्रवृत्ति को समस्थायित्व या समस्थिरता (homeostasis) कहते हैं। उदाहरण, किसी मी पारितन्त्र में ऑक्सीजन और कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा परिसीमन तन्त्र की स्वत: संचालित प्रक्रियाओं से निश्चित बनी रहती है। परन्तु गम्भीर उतार-चढ़ाव होने से तन्त्र का प्राकृतिक सन्तुलन बिगडने लगता है। इसे सन्तुलित करने का प्रयास किया जाता है, अन्यथा सम्बन्धित जैविक घटक नष्ट होकर अन्य जीवों के लिए स्थान खाली कर देते है। अत: जैविक तन्त्रों की वह प्रवृत्ति जो परिवर्तन का प्रतिरोध करती है तथा सन्तुलन की स्थित में रहती है, उसे समस्थायित्व या होमीओस्टैसिस (homeostasis) कहते है। पारितन्त्र, स्वत: स्थायित्वीकरण एवं स्व-नियमन (self-regulation) के योग्य होता है। मानव प्राकृतिक नियन्त्रणों को विक्षोभित या रोकने की क्रियाएँ बढ़ाता जा रहा है। प्राकृतिक नियन्त्रण पुन: निविष्टों (feed back) पर आश्रित है, जहाँ बहिर्वाह या उत्पादन (output) की अन्तर्वाह या आपूर्ति (input) के रूप में पुन: निविष्ट होती है। धनात्मक पुन: निविष्ट तेजी वाली क्रिया या विचलन (deviation) है। ये वृद्धि व जीवितता के लिए आवश्यक है, ऋणात्मक पुन: निविष्ट इसके विरोध में कार्य करता है। पारितन्त्र पर सक्रिय नियन्त्रण का ढंग पोशक पदार्थों के संग्रह व निर्मुक्ति को तथा कार्बन पदार्थो के उत्पादन व विघटन को नियंत्रण में रखता है। विशाल पारितन्त्र में पदार्थ-चक्र एवं ऊर्जा प्रवाहों की परस्पर क्रिया से स्वत: सुधारक समरथायित्व (self correcting homeostasis) का विकास हो जाता है। अन्त: निवेश आपूर्ति (input) के बढने से नवीन सन्तुलन स्तर कुछ उच्च स्थिति में होते हैं। यहाँ अल्प परिवर्तन का प्रभाव नगण्य होता है। उद्‌विकासीय समायोजन (evolutionary balance) की एक अवधि के बाद ही एक यथार्थत: अच्छा समरथायित्व नियन्त्रण प्रभाव में आता

है। नये पारितन्त्र (newly emerged ecosystem) या नये पोषक परजीवी सम्बन्ध तीव्रता से दोलायमान (oscillate) होते हैं। ये बाहरी विक्षोभों से प्रतिरोध करने के कम योग्य होते हैं। इससे परिपक्व तन्त्रों (mature or established ecosystems) के घटकों को परस्पर समायोजित होने का अवसर मिल जाता है।

तालाब में पर्णहरित वनस्पतियाँ सूर्य के प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण करके कार्बनिक पदार्थो को कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वरना आदि में परिवर्तित कर देती हैं। इन्हें शाकाहारी जन्तु प्रथम उपभोक्ता के रूप में भक्षण करते हैं। कालान्तर में शाकाहारियों को माँसाहारी (द्वितीय उपभोक्ता) तथा इनको तृतीय उपभोक्ता भी खा सकते हैं। इस प्रकार अजैविक वातावरण के विभिन्न घटकों से निरन्तर अनुक्रिया करके अकार्बनिक पदार्थो और सौर ऊर्जा, भोजन रूपी कार्बनिक पदार्थो में परिवर्तित हो जाते हैं। विभिन्न जैविक घटकों को पारस्परिक अनुक्रिया के माध्यम से एक पोषण स्तर से दूसरे से तीसरे तक ऊर्जा और खनिज पदार्थो का प्रवाह चलता रहता है। अन्त में वनस्पति और जन्तु की मृत्यु होने पर बैक्टीरिया और कवक द्वारा विघटिक कर दिये जाते हैं। इससे अकार्बनिक खनिज पदार्थ और ऊर्जा फिर से अपने मूल वातारण में मिल जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न जैविक और अजैविक घटकों की निरन्तर पाररयरिक अनुक्रिया से तालाब का पारितन्त्र चलता रहता है और सामुदायिक जीवन-चक्र सन्तुलित बना रहता है।

पारिस्थितिकीय निकेत या निलय (ecological niele) शब्द का उपयोग सर्वप्रथम ग्रीनेल्स ने (1917) में विभिन्न जातियों और उपजातियों (species and sub species) की सूक्ष्मता स्थानीय वितरण व्यवस्था को निरूपित करने के लिए किया था। यद्यपि एक ही प्रकार के सामान्य प्राकृतिक निवास स्थान पर अनेकों जीव-जन्तुओं की जातियाँ और उपजातियाँ निवास करती हैं, फिर भी समूचे क्षेत्र में प्रत्येक जाति या उपजाति के अपने एक स्थानीय क्षेत्र को जाति विशेष का निकेत कहते हैं। प्रत्येक जाति निकेत में ही क्रियाशील स्थिति में बनी रहती है। अर्थात प्रत्येक जाति नियमित रूप से जीवन व्यतीत करने के लिये अपने प्राकृतिक निवास में अवस्थित रहती है, जिसे निकेत कहते हैं। ओडम के अनुसार निकेत एक प्रकार का सूक्ष्म निवास या माइक्रोहेबीटेट (microbahitat) है।

प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक सदस्य समुदाय में कार्यकर्त्ता होते हैं। प्रत्येक के कार्य को इसकी निकेतया गर्त (niche) कहते हैं। शब्द Niche, किसी अवास-स्थान (Habitat) में इसकी भौतिकीय उपस्थिति से नहीं, किन्तु समुदाय में प्रत्येक जीव के कार्य को दर्शाता है। जिन जातिरग़ें की पारिस्थितिकीय निकेत (Niche) काफी बड़ी होती हैं, वे कई प्रकार के भोजन खा सकते हैं। एक प्राकृतिक निवास में एक से अधिक निकेत हो सकते हैं। परन्तु एक समुदाय में कोई दो जातियाँ एक समान निकेत (Niche) में नही रह सकती। प्रत्येक जाति एक-दूसरे की पूरक होती है। जिरॉफ पेड़ों पर, गैंडा झाडियो पर तथा अन्य जंगली शाकाहारी जन्तु घास पर अपना निर्वाह करते हैं।

6.2 पारितन्त्र समस्थिरता (Ecosystem homeostasis)

6.2.1 पारितन्त्र (Ecosystem)

पृथ्वी पर जितने भी सामुदायिक आवास हैं, सभी पारितन्त्र के माध्यम से जीवन चक्र सम्पन्न करते हैं। ये पारितन्त्र दो प्रकार के होते है।

1. भू-स्थलीय पारितन्त्र (terrestrial ecosystem)

2. जलीय पारितन्त्र (aquatic ecosystem)

1. **भू-स्थलीय पारितन्त्र (Terrestrial ecosystem)**

इसके अन्तर्गत अनेक छोटे-बड़े पारितन्त्र पाये जाते हैं। इनके नाम उनके सामुदायिक आवास अथवा प्रभुत्वशील (Dominant) जीवधारियों पर आधारित होते हैं, उदाहरण- वन पारितन्त्र (forest ecosystem), मरुस्थल पारितन्त्र (desert ecosystem), घास-भूमि पारितन्त्र (grassland ecosystem), अन्नपुट पारितन्त्र (crop ecosystem) आदि।

2. **जलीय पारितन्त्र (Aquatic ecosystem) :** इसको दो उप-श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-

(अ) स्वच्छ-जल पारितन्त्र (Fresh water ecosystem) : इसके अन्तर्गत तालाब, झील, नदिया आदि के पारितन्त्रो का अध्ययन किया जाता है।

(ब) समुद्रीय पारितन्त्र (Marine ecosystem) : ये विश्व के सबसे बडे और समरूपी पारितन्त्र हैं। इनमें विभिन्न घटकों का आपसी सन्तुलन अधिक व्यवस्थित रहता है। विभिन्न समुद्र और महासागर इसके उदाहरण हैं।

छोटे से छोटे और बड़े से बड़े उस सामुदायिक जीवन को जिसमें पारितन्त्र के सभी अजैविक और जैविक घटक उपस्थित हैं और उनके आदान-प्रदान की पारस्परिक क्रियाओं से जीवन चक्र का सन्तुलन बना हुआ है, को पारितन्त्र की संज्ञा दी जा सकती है। जल-जीवशाला (Aquarium) एक सुक्ष्म पारितन्त्र और सम्पूर्ण पृथ्वी को एक विशाल पारितन्त्र माना जाता है।

6.2.2 पारितन्त्र का कार्यात्मक पहलू (Functional aspect of ecosystem)

बाहम रूप से अजैविक व जैविक घटक अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इन दोनों घटकों में सन्तुलित और जटिल कार्यात्मक सम्बंध स्थापित रहता है। इस पर तन्त्र का जीवन चक्र सम्मव है। विभिन्न घटक अपनी व्यक्तिगत पहचान और स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने के साथ-साथ एक दूसरे से कार्यात्मक सम्बन्धों में बँधे रहते हैं जिन्हें निम्न पहलुओं से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. ऊर्जा प्रवाह चक्र (Energy flow circuit)
2. भोजन चक्र एवं पोषण स्तर (Food chain and trophic levels)
3. खनिज पोषण या जैव भू-रासायनिक चक्र (Mineral nutrient or biogeochemicl cycle)
4. नियन्त्रण (Cybernetics-controls)
5. अन्य कारक (Other factors)

1. **ऊर्जा प्रवाह चक्र (Energy Flow Circuit) :** सौर ऊर्जा पृथ्वी पर आने के बाद तापीय ऊर्जा मे परिवर्तित हो जाती है। पर्णहरित पौधे सौर ऊर्जा के प्रकाश की कुछ मात्रा प्रकाश सश्लैषण से क्रियाशील ऊर्जा या भोजन में परिवर्तित कर देते हैं। शेष तापीय ऊर्जा पारितन्त्र एवं जैव-मण्डल में विचरण करती है। समस्त जीव भोजन रूपी क्रियाशील ऊर्जा से शक्ति प्राप्त करते हैं। ताप गतिशीलता के प्रथम नियमानुसार ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही इसका विनाश होता है। अत: सौर ऊर्जा एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित हो जाती है। जैसे तापीय से क्रियाशील या भोजन और भोजन से कार्यात्मक ऊर्जा (working energy)

में परिवर्तित होती रहती है। अन्त में जीवधारियों के विघटन से ऊर्जा वापस जैव मपडल में विसर्जित हो जाती है। ताप गतिशीलता के दूसरे नियमानुसार कुछ न कुछ ऊर्जा सदैव तापीय ऊर्जा में परिवर्तित होती रहती है, जिससे ऊर्जा की बडी राशि का हास होता है। अत: क्रियाशील ऊर्जा कभी भी शत्-प्रतिशत उपयोगी नहीं होती है। परिवर्तन प्रक्रिया में बडी मात्रा में ऊर्जा अनुपयोगी ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार ऊर्जा निरन्तर अन्य रूप में परिवर्तित होकर, जीवधारियों को कार्यशक्ति प्रदान करके, ऊर्जा चक पूरा करती है।

2. **भोजन चक्र एवं पोषण स्तर (Food chain and trophic levels) :** स्थलीय एवं जलीय पारितन्त्र में भोजन ऊर्जा निरन्तर स्थान परिवर्तन करती रहती है और मूल उत्पादक वनस्पतियों को प्रथम उपभोक्ता, शाकाहारी खा जाते हैं। भोजन ऊर्जा ग्रहण करने के लिए निरन्तर भक्षण प्रक्रिया दोहराने से जीवधारियों में ऊर्जा के आदान-प्रदान की जो श्रृंखला बनती है, उसे भोजन चक्र कहते हैं। इस शृंखला में विभिन्न स्तरों पर क्रियाशील ऊर्जा का लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक तापीय ऊर्जा का हास हो जाता है। इस प्रकार सौर ऊर्जा को वनस्पतियाँ क्रियाशील ऊर्जा या भोजन में परिवर्तित कर देती हैं।। शाकाहारी जन्तु वनस्पतियों का प्रथम उपभोक्ता के रूप में भक्षण करके ऊर्जा प्राप्त करते हैं। कुछ पारितन्त्रों में तृतीय और शिखर माँसाहारी उपभोक्ता के रूप में भी कुछ जन्तु द्वितीय उपभोक्ताओं का भक्षण कर जाते हैं।

सौर ऊर्जा → वनस्पति / उत्पादक → खरगोश, हिरण → शेर चीता और → बैक्टीरिया और कवक
आदि शाकाहारी (प्रथम उपभोक्ता(| माँसाहारी द्वितीय या) शिकार उपभोक्ता(| (विघटक)

चित्र 6.1 वन परितन्त्र में भोजन चक्र एवं पोषण स्तर

3. **खनिज पोषण या जैव भू-रासायनिक चक्र (Mineral nutrient or biogeochemicl cycles) :** विभिन्न पारितन्त्रो में आवश्यक खनिज पोषक पदार्थो की पूर्ति के लिए अनेक चक्र पाये जाते हैं। इनके माध्यम से ऑक्सीजन, कार्बन, नाइट्रोजन, सल्फर आदि तत्व वायुमण्डल और भूमण्डल के भण्डारों से जीवधारियों में प्रविष्ट करके जैविक क्रियाएँ सम्पादित करते हैं। अन्त में वापस मूल सुरक्षित भण्डारों में पहुँच जाते हैं

4. **नियन्त्रण (Cybernetics-Controls) :** सभी पारितन्त्र स्वनियन्त्रक (self-regulatory) और स्वसन्तुलित होते हैं। पारितन्त्र नियन्त्रण प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक अध्ययन को साइबरनेटिक्स (cybernetics) या पारितन्त्र नियन्त्रण कहते हैं। तन्त्र के विभिन्न जैविक घटकों में आपसी तालमेल और सन्तुलन की स्थिति को समस्थिरता (homeostasis) कहते हैं। यह स्थिति स्वनियन्त्रण से तब तक प्रभावी रहती है, जब तक तन्त्र में आवश्यक पदार्थो की आपूति और उत्पादन के मध्य सन्तुलन बना रहता हैं। पारितन्त्र स्वनियन्त्रण के लिए विभिन्न- खनिज एवं ऊर्जा चक्रों को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है कि विभिन्न जैविक क्रियाओ में आपूर्ति और उत्पादन में बराबर सन्तुलन और समस्थिरता बनी रहती है। समस्थिरता के लिए अजैविक और जैविक घटकों में तालमेल होता है। दोनों मिलकर विभिन्न

पदार्थो की आपूर्ति और उत्पादन सन्तुलन स्थापित करके प्राकृतिक भण्डारों से जितनी मात्रा में पदार्थ लेते हैं, उतनी ही मात्रा में लौटा देते हैं।

5. **अन्य कारक (Other factors) :** पारितन्त्र के कार्यात्मक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले कारकों में विभिन्न जीवधारियों की शारीरिक रचना, जैव-विकास गतियाँ आदि तन्त्र की गविविधियों पर सूक्ष्म, निश्चित प्रभाव डालते हैं।

6.2.3 कार्यात्मक पहलू या गतिशीलता का सूचक या पारितन्त्र और उत्पादकता अवधारणा (Ecosystem and Productivity Concept)

पारितन्त्र में ऊर्जा प्रवाह के आधार पर उत्पादकता की धारणा उत्पन्न हुई है। विभिन्न स्तर पर उत्पादन भिन्न रूप में संचयित रहते हैं। इन्हें तीन मूलभूत चरणों में दर्शाया जा सकता है -

1. खड़ी फसल (Standing crop)
2. विस्थापित पदार्थ (Material removed)
3. उत्पादन गति (Production rate)

1. **खड़ी फसल (Standing crop) :** किसी भी स्थान विषेश पर निरीक्षण के समय उपस्थित जीवधारियों को खड़ी फसल कहते हैं। इसे जीवधारियों की कुल संख्या के जैव-भार या संचयित ऊर्जा के रूम में दर्शाया जाता है। जीवसंख्या वृद्‌वि और खड़ी फसल में गहरा सम्बन्ध है, जैसे

1. जीव संख्या वृद्धि की तीव्र गति तन्त्र में उच्च सन्तुलन स्तर स्थापित करती है।
2. यदि जीवसंख्या वृद्धि की गति अति मन्द है, तब भी अन्त में खडी फसल का वांछित आकार प्राप्त किया जा सकता है।
3. यदि समान समय में सन्तुलन प्राप्त करना हो, तब एक निम्न स्तरीय सन्तुलन स्थापित होगा।

यदि किसी पारितन्त्र में जीवसंख्या वृद्धि का उच्चतम सन्तुलन स्थापित होने से पहले मापन किया जाए तब तीव्र उत्पादन गति वाले क्षेत्र में विशाल खड़ी फसल प्राप्त होती है। जीवसंख्या वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न जीवधारियों की जीवन अवधि का सीधा प्रभाव जीवसंख्या पर पडता है। जब जीवन अवधि अधिक होती है तब जीवसंख्या में जीवधारियों की कुल संख्या भी अधिक पाई जाती है। परन्तु सन्तुलन स्थापना के पश्चात् जीवन अवधि का खड़ी फसल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। विशाल खडी फसल की जीवनसंख्या में जन्म और मृत्यु दर कम होती है। परन्तु कम सन्तुलित जीव संख्या उच्च मृत्यु और जन्म पर दर्शाती है।

संवहन या संचालन क्षमता (Carrying capacity) : पारितन्त्र में जन्तु और वनस्पतियों की अधिकता का सीधा प्रभाव तन्त्र की क्षमता पर पड़ता है। यह प्रभाव लाभप्रद या हानिकारक दोनों प्रकार का हो सकता है। पारितन्त्र वह विशालतम खड़ी फसल, जो अनिश्चित काल तक बनी रह सकती है, को पारितन्त्र की संचालन या संवहन क्षमता कहते है।

2. **विस्थापित पदार्थ (Material removed) :** ये वे कार्बनिक पदार्थ हैं जिन्हें सक्रिय या निष्किय रूप में पारितन्त्र की मुख्य धारा से निकालकर या तो भण्डारण कर दिया जाता है

अथवा किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है। फलस्वरूप तन्त के जैव-भार में कमी आ जाती है। मानव उपयोग के लिए उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। परन्तु किसी भी दशा में उत्पादन आपूर्ति से अधिक नहीं हो सकता है। अधिकतम उत्पादन क्षमता उस विशालतम फसल के बराबर होगी, जिसे जीवसंख्या और वातावरण की सबसे उत्तम परिरिथतियो में प्राप्त किया जा सकता है।

3. **उत्पादन गति (Production rate) :** जिस गति से किसी क्षेत्र में उत्पादन क्रियाएँ अग्रसर होती हैं, उसे उत्पादन गति कहते हैं। उत्पादन गति के अन्तर्गत विभिन्न उत्पादकों और उपभोक्ताओं की सभी संश्लेशणात्मक और विखण्डनात्मक गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है।

6.2.4 उत्पादकता के प्रकार (Kinds of Productivity)

ऊर्जा प्रवाह और उत्पादन धारणा में गहरा सम्बन्ध है.

1. **प्रारम्भिक उत्पादन (Primary productivity) :** पर्णहरित वनस्पतियाँ सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से कार्बनिक भोज्य पदार्थो में परिवर्तित कर देती है। सौर उर्जा को भोज्य पदार्थो मे बदलने की इस गति को प्रारम्भिक उत्पादन कहते हैं। परन्तु उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में निम्न चरण निहित हैं-

(i) **कुल प्रारम्भिक उत्पादन :** प्रकाश संश्लेषण की सम्पूर्ण गति या सम्पूर्ण संश्लेषण मात्रा को कुल प्रारम्भिक उत्पादन कहते हैं।

(ii) **प्रत्यक्ष प्रारम्भिक उत्पादन (Net primary production) :** प्रकाश संश्लेषण की सम्पूर्ण प्रक्रिया के फलरूवरूप जिस गति से कार्बनिक गगपदार्थ पौधों के विभिन्न तन्तुओं में जमा (भण्डारित) होते हैं, उसे प्रत्यक्ष प्रारम्भिक उत्पादन या प्रत्यक्ष प्रकाश संश्लेषण कहते हैं।

(iii) **प्रत्यक्ष सामुदायिक उत्पादन (Net Community Production) :** कुल उत्पादन में से उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग के बाद शेष बचा वह उत्पाद जो सुरक्षित भण्डार के रूप में उपलब्ध रहता है। उसे प्रत्यक्ष उत्पादन कहते है।

2. **द्वितीयक उत्पादन (Secondary production) :** विभिन्न उपभोक्ता स्तरों पर ऊर्जा भण्डारण की गति को द्वितीयक उत्पादन कहा जाता है। भोजन चक्र श्रृंखला में ऊर्जा का एक से दूसरे पोषण स्तर पर सम्पूर्ण स्थानान्तरण नहीं होता है। इस प्रक्रिया में कुछ न कुछ मात्रा विभिन्न उपभोक्ताओं में भण्डारित होती रहती है। इसे द्वितीयक उत्पादन कहते है।

पोषण स्तरीय उत्पादन : पारिरिथतिकी तन्त्र में वास्तविक उत्पादन क्षमता पर्णहरित वनस्पतियों में होती है। पौधे सौर ऊर्जा को कार्बोहाइड्रेट्स में परिवर्तित कर देते हैं। इन्हें भोजन चक्र शृंखला के माध्यम से विभिन्न पोषण स्तरों तक पहुँचाया जाता है। प्राथमिक पोषण स्तर / उत्पादन वनस्पतियाँ सहित द्वितीय, तृतीय तथा अन्य पोषण स्तरों पर स्थानान्तरित ऊर्जा का शत-प्रतिशत उपभोग नहीं होता है। भोज्य पदार्थ ऊर्जा का कुछ भाग जीवधारियों की वृद्धि और विकास में उपयोग होता है। शेष भाग श्वसन आदि विखण्डनात्मक क्रियाओं में नष्ट हो जाता है। संक्षिप्त मात्रा जीवधारियों के तन्तुओं में संचयित रहती है, जिसे सम्बन्धित स्तर का उत्पादन कहते हैं। अत: भोजन श्रृंखला में उत्पादक / प्रथम

पोषण स्तर में प्रत्यक्ष वनस्पति उत्पादन (Net plant production) ऊर्जा की वह मात्रा है जो कार्बोहाइड्रेट्स के कुल उत्पादन में से श्वसन में नष्ट ऊर्जा की मात्रा घटाने से प्राप्त होगी, अर्थात्

प्रत्यक्ष वनस्पति उत्पादन = कुल कार्बोहाइड्रेट्स उत्पादन - श्वसन ऊर्जा ह्रास

परन्तु सम्पूर्ण प्रकाश संश्लेषण प्रारम्भिक उत्पादन ही माना जाता है। शाकाहरी या द्वितीय पोषण स्तर पर भोजन ऊर्जा स्थानान्तरण की क्रिया पर भी कुछ नियम लागू किये जा सकते हैं, जिसके अनुसार वनस्पतियों द्वारा संश्लेषित पदार्थ की मात्रा शाकाहारी उत्पादन के कुल योग के बराबर होती है। अत: इनमें श्वसन ऊर्जा ह्रास घटाने पर प्रत्यक्ष शाकाहारी उत्पादन की मात्रा प्राप्त होगी, अर्थात्

प्रत्यक्ष शाकाहारी (Net herbrivore production)	=	शाकाहारी उत्पादन ऊर्जा (Herbivore energy production(	=	श्वसन ऊर्जा)Respriation energy(

प्रत्यक्ष माँसाहारी उत्पादन के आधार पर शाकाहारियों की वास्तविक वृद्धि का मापन किया जाता है। **प्रथम माँसाहारी या तृतीय पोषण** स्तर के अपभोक्ता शिकार के रूप में शाकाहारियों का भक्षण करते हैं। परन्तु इसका अति अल्प भाग ही अवशोषित कर पाते हैं, तथा शेष मात्रा नष्ट हो जाती है। अत: कुल माँसाहारी उत्पादन (gross carnivore production), इन जन्तुओं की वास्तविक वृद्धि को दर्शाता है।

6.2.5 प्रारम्मिक उत्पादकता मापन विधि (Primary production measurmrnt method)

प्रारम्भिक उत्पादन को निम्न विधि से परिमापन करने पर आपूर्ति और माँग पर आधारित योजनाएँ बनाकर अनेक मानवीय समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

1. **उपल विधि (Harvest method) :** प्रारम्भिक उत्पादन मापन की यह विधि कृशकों द्वारा तैयार की गई है। यह फसलों के लिए अधिक उपयोगी है। फसलों के पारितन्त्र में शाकाहारी जन्तु अति अल्प संख्या में होते हैं। जिनका उत्पादन पर महत्व लगभग नगण्य होता है। अत: गतिशील सन्तुलन होने की सम्भावना नहीं रहती है। परिमापन के लिए बीज बुवाई के समय शून्य और फसल पकने पर उच्चतम उत्पादन गति निर्धारित की जाती है। विकसित फसल का भार ज्ञात करके प्रारम्भिक उत्पादन का कैलोरी मूल्य आँका जा सकता है। इस विधि में दोषरहित फल प्राप्त करने के लिए कीट तथा जन्तुओं द्वारा सम्भावित पदार्थ विस्थापन को ध्यान में रखना अति आवश्यक है।
2. **नाइट्रोजन और फॉस्फोरस प्रवाह गति :** जलीय पारितन्त्र (तालाब या झील) में अनुमानित प्रारम्भिक उत्पादन ज्ञात करने का यह एक सीधा व सरल उपाय है। वनस्पतियों वृद्धि काल में तेज गति से नाइट्रोजन और फॉस्फोरस का उपयोग कर भोज्य पदार्थ बनाती है। ये पदार्थ मृत जीवों के विघटन से जल में घुलकर वनस्पतियों में प्रवाह होते है। यदि विघटन क्रियाओं से उत्पन्न नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की मात्रा और वनस्पतियों द्वारा खपत की गति का अनुपात पता लगा लिया जाए, तो कार्बनिक पदार्थ उत्पादन और प्रारम्भिक उत्पादन का पता लगाया जा सकता है। परन्तु इस विधि से नाइट्रोजन और फॉस्फोरस उत्पादन और खपत का सही मूल्यांकन कर पाना कठिन काम है।

3. **गार्डर और ग्रान (Garder and Gran, 1927) की ऑक्सीज़न मापन विधि (Oxygen measurement method) :** इस विधि में समान आकार और आयतन वाली काँच की दो खाली बातलें ली जाती हैं। इनमें से एक बोतल पारदर्शी और दूसरी गहरे काले रंग की होनी चाहिए। दोनों बोतलों में जिस तालाब या झील का उत्पादन ज्ञात करना है, उसमें पर्णहरित पादप (Phytoplankton) निकालकर समान मात्रा में दोनों बोतलों में भरकर, इन्हें समान गहराई पर दिन के तीव्र प्रकाश में पानी में लटका दिया जाता है। बोतलें उसी गहराई पर रखी जाएँ, जिससे पादप लिया था। स्पष्ट है कि पारदर्शी बोतल में प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण से कार्बोहाइड्रेट और ऑक्सीजन का उत्पादन होगा, परन्तु काली बोतल में प्रकाश संश्लेषण नहीं होगा। इसके विपरीत श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन की खपत होगी। अत: दोनों बोतलों की अन्तिम गणना में ऑक्सीजन की मात्रा का अन्तर, पारदर्शी बोतल में ऑक्सीजन उत्पादन और काली बोतल में ऑक्सीजन की खपत, के आधार पर प्रारम्भिक उत्पादन के ऑकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं। बैक्टीरिया और प्राणी प्लवक चूँकि बोतलों में समान मात्रा मे होते हैं, अत: इनके विघटन और श्वसन द्वारा ऑक्सीजन की खपत भी दोनों में लगभग समान होगी।

4. **ट्रान्सू (Transeau, 1926) की कार्बन डाइऑक्साइड विधि (CO_2) :** वन में निश्चित समुदाय के चुने हुए पेड़ों को प्लास्टिक के बड़े बक्सों से ढक दिया जाता है। बक्सों की वायु को चूषण पम्प से खींचकर बक्सा वायुरहित कर दिया जाता है। निश्चित समय के बाद पेड़ों द्वारा उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड या गैस विश्लेषकों से कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा ज्ञात करने के प्रत्यक्ष सामुदायिक उत्पादन का अनुमान लगाया जाता है। इसी प्रकार काले रंग के बकरी से कुल प्रारम्भिक उत्पादन का आकलन किया जाता है।

5. गैसनर (1949) की पर्णहरित विधि **(Chlorophyll method) :** विभिन्न पौधों में पर्णहरित की निर्माण गति लगभग बराबर होती है। प्रकाश संश्लेषण का आधार पर्णहरित ही है। विभिन्न समुदायों में पर्णहरित की प्रति वर्ग मीटर। गति को नाप कर प्रारम्भिक उत्पादन का अनुमान ज्ञात किया जाता है।

6.3 पारिस्थितिकीय निकेत (Ecological nitche)

पारिस्थितिकीय निकेत (निलय) शब्द का 'उपयोग सर्वप्रथम ग्रीनेल्स (1917) ने विभिन्न जातियों और उपजातियों (Species and sub species) की सूक्ष्म स्थानीय वितरण व्यवस्था को निरूपित करने के लिए किया था। एक ही प्रकार के सामान्य प्राकृतिक निवास स्थान पर अनेकों जीव-जन्तुओं की जातियाँ और उपजातियाँ निवास करती हैं। समूचे क्षेत्र में प्रत्येक जाति या उपजाति के अपने एक स्थानीय क्षेत्र को जाति विशेष का निकेत कहते हैं। प्रत्येक जाति निकेत में ही क्रियाशील स्थिति में बनी रहती है। प्रत्येक जाति नियमित रूप से जीवन व्यतीत करने के लिये अपने प्राकृतिक निवास में अवस्थित रहती है, जिसे निकेत कहते हैं। ओडम के अनुसार निकेत एक प्रकार का सूक्ष्म निवास या माइक्रो-हेबीटेट (microhabitat) है। एल्अना (1927) ने निकेत शब्द की परिभाषा करते हुए इसे भोजन और शत्रुओं के सन्दर्भ में, किसी प्राणी विशेष का प्राकृतिक वातावरण या समुदाय में स्थान स्तर पर बताया है। हचिन्सन (1957) के अनुसार, "अनेकों जैविक / अजैविक कारक वाले क्षेत्र को, जिसमें वातावरण कारक

किसी जन्तु को अनिश्चित काल तक जीवित रहने (या गतिशील जीवनयापन) की अनुमति (सुविधाएँ)प्रदान करते हैं, को निकेत कहते हैं।"

प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक सदस्य समुदाय में कार्यकर्त्ता होते हैं। प्रत्येक के कार्य को इसकी निकेतया गर्त (Niche) कहते हैं। शब्द Niche किसी अवास-स्थान (Habitat) में इसकी भौतिकीय उपस्थिति से नहीं, किन्तु समुदाय में प्रत्येक जीव के कार्य को दर्शाता है। जिन जातियों की पारिरिथतिकीय निकेत (Niche) काफी बड़ी होती हैं, वे कई प्रकार के भोजन खा सकते है। एक प्राकृतिक निवास में एक से अधिक निकेत हो सकते हैं। परन्तु एक समुदाय में कोई दो जातियाँ एक समान निकेत (niche) में नही रह सकती। प्रत्येक जाति एक-दूसरे की पूरक होती है। जिरॉफ पेड़ों पर गैंडा, झाड़ियों पर तथा अन्य जंगली शाकाहारी जन्तु घास पर अपना निर्वाह करते हैं।

निकेत को निम्न समुहों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **स्थानीय या निवास निकेत (Spatial or habitat niche) :** किसी भी प्राकृतिक निवास में एक से अधिक जातियाँ रह सकती है। प्रत्येक जाति, मुख्य निवास के एक इकाई क्षेत्र को अपना सुरक्षित क्षेत्र या निकेत निर्धारित करके उसमें जीवनपर्यन्त रहती है। प्राकृतिक निवास के इसी इकाई क्षेत्र को जाति विशेष का वितरण क्षेत्र, सूक्ष्म निवास अथवा निवास निकेत कहते हैं।

2. **पोषक निकेत (Tropic niche) :** कभी-कभी दो या अधिक जातियाँ एक समान निवास करती हैं। परन्तु पोषण की भिन्नता के कारण इनके निकेत अलग-अलग होते है। एक साधारण तालाब में विभिन्न जीव-जन्तुओं को ध्यान से देखने से स्पष्ट होगा कि जन्तु-प्लवक (zooplankton) जल के किनारे, प्लवक-भक्षण कस्टेसिया वर्ग के जन्तु किनारे से तालाब के सम्पूर्ण जल में विचरण करते रहते हैं। इसी प्रकार अन्य प्राकृतिक निवासों में भी पोषण के आधार पर एक ही प्राकृतिक निवास में विभिन्न जन्तु-जातियों को अलग-अलग पोषक निकेत में वितरित कर सकते है।

3. **बहु आयामी अथवा उच्च-आयतन निकेत (multi-dimensional or hyper-volume niche) :** बहु-आयाम निकेत का विचार हु चिन्सन ने दिया है। वास्तव में सभी प्राकृतिक निवासों में अनेकों जातियाँ निवास करती है। अलग-अलग निकेत वितरण के उपरान्त भी विभिन्न जातियों में भोजन, पदार्थो, धूप, हवा आदि प्राकृतिक कारकों के लिए कडा संघर्ष रहता है। कभी-कभी इन्हीं आवश्यक सुविधाओं के लिए दो जातियाँ एक-दूसरे के निकेत में घुसपैठ भी (overlapping) करती हैं। हु चिन्सन ने इन साधनों की उपलब्धि या स्पर्द्धा की सीमाओं का मापन करके निकेत को दो उप-समूहों में विभक्त किया है -

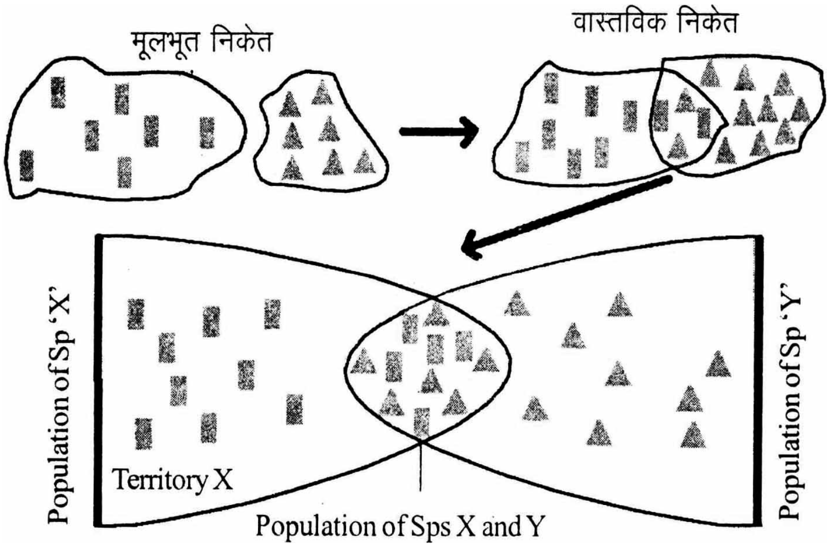

चित्र 6.2 : बहुआयामी अथवा उच्चआयतन निकेत

(अ) मूलभूत निकेत (fundamental niche) : यह वह निकेत है जिसमें रहने वाली जाति को प्राकृतिक कारकों या सुविधाओं के लिए अन्य जातियों से स्पर्द्धा नहीं करनी पड़ती है। ऐसे निकेत जाति विशेष के लिए पूर्ण सुरक्षित है।

(ब) वास्तविक निकेत (Realised niche) : इसमे रहने वाली जाति को उपरोक्त प्राकृतिक कारकों या सूविधाओं के लिए स्पर्द्धा करनी पड़ती है। परिणामस्वरूप निकेत में वास्तविक सुविधाओं का परिणाम मूलभूत निकेत की तुलना में कम हो जाता है।

समष्टियों की परस्पर क्रियाओं को सामान्य : तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है - अनुकूल (positive), अप्रभावी (neutral) तथा प्रतिकूल (negative) परस्पर क्रियाएँ। अनुकूल परस्पर क्रियाओं में, परस्पर क्रिया करती हुई कम से कम एक समष्टि का आकार तो निश्चय ही बढ़ता जाता है। अप्रभावी परस्पर क्रिया वह होती है। जिसमें समष्टि के आकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और प्रतिकूल परस्पर क्रिया में एक या दो समष्टियों का आकार घटता रहता है।

6.3.1 गौस का स्पर्द्धात्मक वर्जन का सिद्धान्त (Gauss's principle of competitive exclusion) :

वास्तविक निकेत में जब दो जातियों के निकेत समान क्षेत्र में होते हैं, तब स्वाभाविक रूप में, दोनों जातियों में आवश्यक सुविधाओं के लिए एक-दूसरे के क्षेत्र में घुसपैठ और स्पर्द्धा प्रारम्भ हो जाती है। गौस (1934) कं अनुसार दो भिन्न जातियों के जन्तु सदैव समान निकेत में नही रह सकते हैं। अन्तत: दो में से एक जाति दूसरी जाति को या तो बाहर निकाल कर या समाप्त करके सम्पूर्ण निकेत पर अधिकार कर लेती है। अतं: एक निकेत में दो जातियाँ घुसपैठ तो कर सकती हैं, परन्तु स्थाई रूप से एक निकेत में एक ही जाति रह सकती है। उदाहरण

1. पैरामीसियम (Paramaecium) की दो जातियाँ पैरामीसियम ऑरिलिया और पैरामीसियम कॉडेटम दोनों को समान वातावरण में अलग-अलग विकसित कर उनकी जीवसंख्या घनत्व (population density) तथा वृद्धि (growth) का ग्राफ बनाया। इसी प्रकार समान सुविधा

व वातावरण वाले में दोनों प्रकार के पैरामीसियम एक साथ विकसित किये। कुछ दिन बाद अलग-अलग विकसित करने पर दोनों जातियाँ समान रूप से वृद्वि करती पाई गई। परन्तु यदि इन्हें एक साथ विकसित किया गया तो पैरामीसियम ऑरिलया ने पैरामिसियम कॉडेटम को सातवें दिन पूरी तरह समाप्त कर दिया तथा सम्पूर्ण क्षेत्र या निकेत पर आधिकार कर लिया।

2. कुछ प्रोटोजोआ, डेफनिया (Daphnia), ग्रेन बीटल (grain beetle) तथा अन्य जन्तुओं पर ऐसे प्रयोग करने पर भी गौस के स्पर्द्धात्मक वर्जन सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

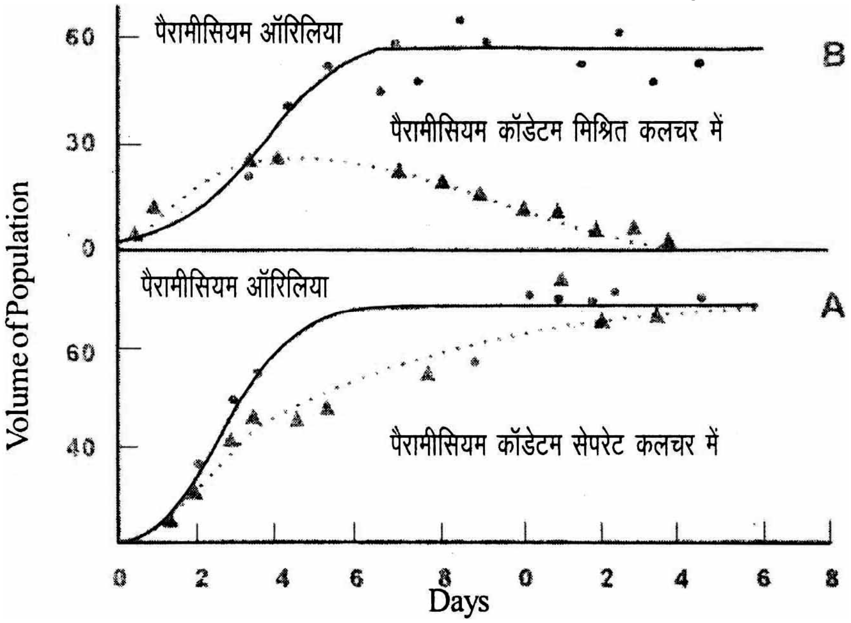

चित्र 6.3 : पैरामीसियम की दो प्रजातियों में संघर्शात्मक वर्जन

3. आटा बीटल (Flour beetle) की दो प्रजातियों (Species), ट्राइबोलियम केस्टेनियम (Tribolium castameum) तथा ट्राइबोलियम कनफ़्यूसम (Tribolium confusum) को पृथक-पृथक् रखा गया तो प्रत्येक स्पीशीज ने एक विशिष्ट सघनता वाली समिष्ट का रूप ले लिया। इनमें ट्रा. कनफ़्यूसम आधिक सघन हो जाता था। एक प्रोटोजोअन एडेलाइना (Adelina), इन दोनों बीटलो पर परजीवी रूप में रहता है। जब इस परजीवी को इन बीटलों के पृथक संवर्धनों में छोड़ा गया तो ट्रा. केस्टेनियम की समष्टि दो-तिहाई घट गई। परन्तु ट्रा. कनफ़्यूसम पर इसका इतना भीषण प्रभाव नहीं पडा। दोनों बीटलों की समष्टियों को बार-बार मिश्रित किया गया और हर बार यह अनुभव हुआ कि एक या दूसरी समष्टि का लोप अवश्य हो जाता था। इससे यह स्पष्ट है कि जब दो विभिन्न समष्टियों में एक ही जीवन-क्षेत्र के लिए होड़ लग जाती है तो उनमें से एक का समाप्त होना अनिवार्य है। जब-जब परजीवी मौजूद नहीं था, तब-तब प्राय ट्रा. कनफ़्यूसम का प्राबल्य रहा।

4. अफ्रीका में पक्षियों (Flamingos) की प्रजाति में बड़ा हंसावन (Phoenicopterus antiguorum) उथली झीलों में भोजन करता है। इसी में बहुत ही समान दिखाइ पड़ने वाली दूसरी प्रजाति - छोटा हंसावन (Phoenicopterus minor) भी भोजन करती है। छोटे हंसावन

के मुँह में पाई जाने वाली एक बारीक छलनी के कारण उसका आहार अधिकतर सूक्ष्म नीले-हरे शैवाल तक ही सीमित होता है जबकि बडे हंसावन की चोंच में मोटी छलनी होने के कारण वह बड़े-बड़े आहार कणों को खा सकता है। इनमें क्रस्टेशियन और कीचड़ में रहने वाले कीट लार्वा के समान सूक्ष्म जन्तु होते हैं। यद्‌यपि हैसावन की ये दोनों प्रजातियाँ (Species) एक ही तालाब में भोजन ग्रहण करती हैं तथापि भोजन के लिए वे अलग-अलग क्षेत्रों का उपयोग करती हैं इससे यह प्रतिस्पर्द्धा से बचती है।

5. उत्तरी अमरीका के वार्ब्लर (warbler) पक्षियों की पाँच प्रजातियों (Species) एक ही सनोबर वृक्ष (Spruce) से अपना-अपना भोजन प्राप्त करती हैं। ये सभी अपने कीट-शिकार को वृक्ष के अलग-अलग भागों में ढूँढती हैं। प्रत्येक वार्ब्लर का शिकार करने का आचरण भी अलग-अलग है। केप में वाल्वर (Cape may warbler), डेन्ड्रॉयका टिग्रीना (Dendroica tigrina) अधिकांशत: वृक्ष में ऊपर- नीचे चलती रहती है; बे-ब्रेस्टेड वार्ब्लर (Bay-breasted warbler), डे. केस्टेनिया (D.castanea) शाखाओं में चक्कर लगाती रहती है तथा कण्ठ वाली हरी वार्ब्लर, डे. वाइरेन (D.rirenत) सनोबर की पत्तियों में बहु त ध्यान से भोजन ढूँढती है। अत: ये वार्ब्लर पक्षी वृक्ष को मोटे तौर पर विभिन्न आहार-क्षेत्रों में विभाजित कर लेते हैं। जहाँ पर इन क्षेत्रों में परस्पर अतिव्याप्ति होती है वही पक्षियों के शिकार करने के विभिन्न तरीकों के कारण प्रतिस्पर्द्धा कम हो जाती है।

इस सिद्‌वान्त के अनुसार

1. जब एक ही जीवन-क्षेत्र में दो स्पीशीज में प्रतिस्पर्द्‌वा होती हो तो केवल एक ही स्पीशीज जीवित बचती है।
2. प्रकृति में जहाँ कुछ प्राणी पहले-पहले देखने पर ही एक जीवन क्षेत्र में रहते हु ए मालूम पड़ते हैं, वास्वत मे उनमें ऐसा नहीं होता है।
3. एक जीवन-क्षेत्र में केवल एक ही स्पीशीज रहती है।

6.3.2 निकेत अतिक्रमण (Niche overlapping)

प्रकृति में एक निकेत में दो जातियाँ स्थाई रूप से सामंजस्य बना कर निवास करती हैं। इस प्रकार के सामंजस्य का मुख्य कारण भोजन-भिन्नता है, जिसके परिणामस्वरूप दोनों जातियों मे भोजन के लिए टकराव या स्पर्द्धा नहीं होती है। मूल निकेत में यद्‌यपि दोनों जातियाँ एक साथ रहती प्रतीत होती है, परन्तु पोषण के आधार पर विभाजित होने से दो भिन्न उप-निकेतों में क्रियाशील रहती हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय आधार पर बाहरी रूप में मूलत: एक तिकेत में वास्वत में दो उप-निकेत हैं। हु चिन्सन के अनुसार तालाबों में साथ-साथ पाई जाने वाली दो वाटरबोटमैन जाति नामक कीड़ों की एक जाति बड़े और दूसरी छोटे आकार की होती है। बडी जाति तालाब में उपस्थित अन्य कीड़े-मकोड़े तथा कार्बनिक पदार्थो का भक्षण करती हैं। जबकी छोटी जाति कार्बनिक पदार्थो के सूक्ष्म कणों का भोजन करती है। ये सूक्ष्म कण बहु धा बड़ी जाति के भोजन के उपरान्त बचे हु ए फालतूपदार्थ होते हैं इस प्रकार दोनों जातियों में पोषण स्पर्द्धा शून्य होने से आपसी सामंजस्य स्थापित हो जाता है। मूल जाति में पोषण भिन्नता से एक निकेत दो उप-निकेतों के रूप में कार्यशील हो गया। बाहरी रूप में एक निकेत मे दो जातियों में सामंजस्य की स्थिति दिखाई देती है।

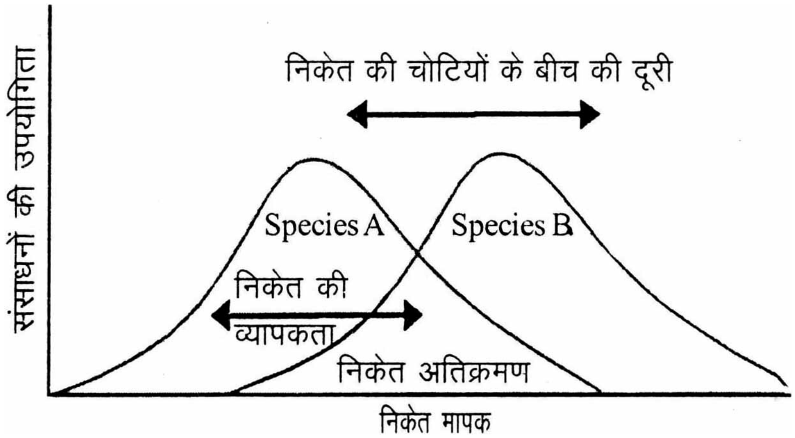

चित्र 6.4 : निकेत अतिकरमण

6.3.3 निकेत जटिलता (Complexity of niches) :

अधिकांश निकेत जटिलता प्रदर्शित करते हैं। गहरे समुद्र तल में स्थित खाइयों और पहाड़ी गुफाओं को तुलनात्मक रूप में सरल निकेत माना गया है। इनके विपरीत उथली झील और वन अधिक जटिल हैं। किसी भी निकेत की सरलता या जटिलता अनेक अजैविक और जैविक कारकों के प्रभाव पर निर्भर करती है। गहरी समुद्री खाइयों और गुफाओं के विफिन कारक, जैसे ताप, प्रकाश, आर्द्रता आदि लगभग स्थिर रहते हैं परन्तु उथली झीलों और वनों में ये कारक निरन्तर परिवर्तनशील रहते हैं। इनमें निवास करने वाले अनेक जन्तुओं का जीवन-चक्र भी अति जटिल होता है। उदाहरण मच्छर का प्रारम्भिक जीवन लारवा के रूप में जल. की सतह पर आरम्भ होता है। लार्वा सूक्ष्म जलीय पदार्थो का भोजन करता हैं। परन्तु मच्छर हवा में उड़कर मनुष्य और पशुओं आदि का रक्त चूसकर जीवनयापन करता है। इसी प्रकार मलेरिया परजीवी (malarial parasite) भी अलग-अलग पोषकों मे अपने जीवन-चक्र की विभिन्न आवस्थाएँ व्यतीत करता है। अत: वातावरण के परिवर्तनशील जैविक और अजैविक कारण विभिन्न निकेतों की संरचना जटिल कर देते हैं।

6.3.4 पारिस्थितिकीय तुल्य (Ecological equivalents) :

भौगोलिक रूप से दूरस्थ स्थानों पर रहने वाले वे प्राणी जिनकी निकेत संरचना समान होती है, पारिस्थितिकी तुल्य कहलाते हैं। उदाहरण ऑस्ट्रेलिया का कंगारू, उत्तरी अमेरिका के बाइसन (Bison) का पारिस्थितिकी तुल्य है। यद्यपि ऑस्ट्रेलिया भौगोलिक रूप से उत्तरी अमेरिका से हजारों किलोमीटर दूर है, परन्तु कंगारू और बाइसन की निकेत संरचना समान होने से दोनों पारिरिथकीय तुल्य हैं।

6.3.5 लक्षण विस्थापन (Character displacement) :

जब दो मिलते-जुलते लक्षणों वाली जातियाँ समान निकेत पर निवास करती हैं तब उनका एक-दूसरे क्षेत्र में अतिक्रमण या घुसपैठ (Overlapping) करना स्वाभाविक है। दोनों जातियों के वे सदस्य जो घुसपैठ वाले क्षेत्र से दूर पाये जाते हैं, लगभग समान लक्षण प्रदर्शित करते हे। परन्तु घुसपैठ वाले क्षेत्र के सदस्यों में स्पष्ट-भेद होता है। निकेत के घुसपैठ क्षेत्र में रहने वाली जातियों का लक्षण-भेद अधिक

स्पष्ट होता है। निकेत में घुसपैठ और आपसी टकराव वाले क्षेत्र में विचलन (divergence) द्‌वारा विस्थापन होता है।

एकदेशील (Sympatric) और भिन्नदेशीय (Allopatric) जातियाँ

जब विभिन्न जातियाँ समान पैतृक निवास से उत्पन्न होकर समान क्षेत्र मे निवास करती हैं, तो उन्हें एकदेशीय जातियाँ कहते हैं। एकदेशीय जातियों में विचलन (divergence) प्रक्रिया स्पे लक्षण विस्थापन होता है। परन्तु भिन्नदेशीय जातियाँ पैतृक निवास स्थानों से उत्पन्न होने के बाद अलग-अलग दिशाओं से बढकर एक समान निकेत बिन्दु पर आकर रहने लगती हैं। यह प्रक्रिया विस्थापन के ठीक विपरीत अभिबिन्दुन (convergence) की प्रक्रिया है, जिससे लक्षणों की समानता उत्पन्न होती है। सिट्टा (Sitta) नामक चिडिया की दो एक-देशीय जातियाँ, जो समान निकेत में रहती हैं में लक्षण-भेद होता है। विचलन से लक्षण विस्थापन के कारण दोनों को एक बार देखने पर तुरन्त अलग-अलग पहचाना जा सकती है। एक जाति में तुलनात्मक रूप में चोंच और मुख आकृति की काली पट्टी अधिक बड़ी और विस्तृत होती है। परन्तु दूसरी जाति में ये लक्षण अल्प, विस्तृत, और सूक्ष्म हो जाते हैं। चोंच का यह अन्तर भोजन प्रक्रिया में परिवर्तन करके भोजन स्पर्द्‌वा को कम या समाप्त कर देता है। इसके विपरित सिट्टा की दो भिन्न जातियाँ अभिबिन्दुन की प्रक्रिया से इतनी अधिक समान दिखाई देती है कि उसमें वास्तविक अन्तर केवल कोई पक्षी विशेषज्ञ ही कर सकता है।

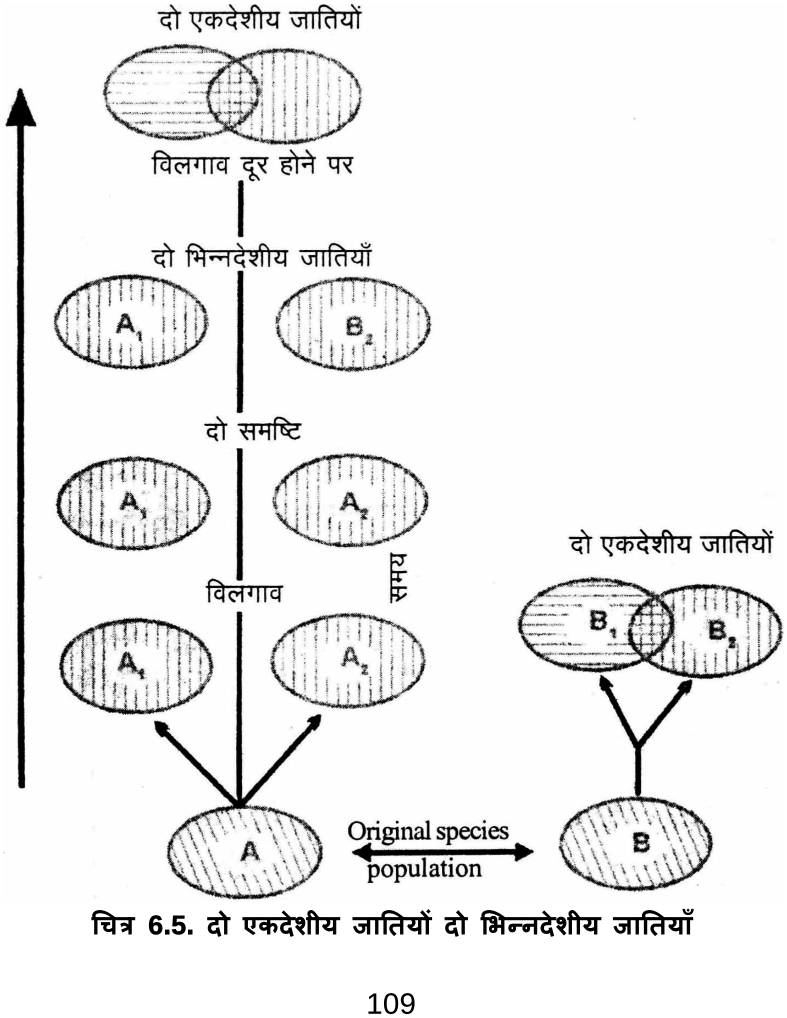

चित्र 6.5. दो एकदेशीय जातियों दो भिन्नदेशीय जातियाँ

लक्षण विस्थापन के लाभ : लक्षण विस्थापन के दो मुख्य लाभ हैं। (i) इस प्रक्रिया से लक्षण भिन्नता के कारण समान निकेत पर निवास करने वाली जातियों में भोजन स्पर्द्वा कम या पूर्णत समाप्त हो जाती हैं। (ii) आनुवांशिकी पृथक्करण से (genetic isolation) नई-नई जातियों का उद्गम होता है। इस प्रकार लक्षण विस्थापन से जन्तुओं में अनुकूलन क्षमता बढ़ने के साथ-साथ जैव-विकास (evolution) भी होता है।

निकेत वियोजन के लाभ (evolution)

1. निकेत वियोजन के विभिन्न जन्तुओं के अनावश्यक संघर्ष और स्पर्द्वा के अवसर लगभग समाप्त हो जाते हैं।
2. पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही निकेत में निवास के कारण प्रारम्भ से ही प्राणी अपने सूक्ष्म निवास की पारिस्थतिकी से स्वयं अनुकूलन कर लेते हैं। इससे उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों पर शक्ति लगाने की- आवश्यकता नहीं होती है जो निकेत नियोजन के अभाव में उत्पन्न होगी है।
3. निकेत वियोजन से अव्यवस्था समाप्त होती है।
4. विभिन्न जातियाँ व्यवस्थित और नियमित जीवनयापन करती हैं।
5. अन्तरजातीय संघर्ष और स्पर्द्धाओं के अवसर कम हो जाते हैं।
6. इसकी प्राकृतिक योजना से प्राणियों में साधनों के लिए आपसी टकराव कम करके पड़ोसियों के साथ सह-जीवनयापन व उत्पादन कार्यो में शक्ति का सदुपयोग करने के अवसर बढ़ जाते हैं।

6.3.6 पारिस्थितिकीय तनाव क्षेत्र (Ecotone)

दो मुख्य समुदायों के परस्पर मिलन के क्षेत्र को तनाव क्षेत्र या इकोटोन कहते हैं। तनाव क्षेत्र दो या दो से अधिक भिन्न समुदायों के बीच का क्षेत्र है। प्रकृति में समुदाय परस्पर विशेष सीमाओं द्वारा अलग-अलग नहीं रहते हैं। अत: दो पडौसी समुदायों का आपस में मिलना स्वाभाविक है। इस क्षेत्र में तीन तरह के जन्तु पाये जाते हैं, जो स्वयं के तथा आपस में मिलने वाले पड़ोसी समुदायों के होते हैं। इकोटोन दोनों समुदायों के लिए सेतु (Bridge) का कार्य करता है। इस क्षेत्र में अधिक प्रकार की जातियाँ तथा जीवसंख्या का घनत्व, पड़ौसी समुदायों से अधिक होता है। वन तथा घास स्थल के बीच की रेखा, दो स्थलीय समुदायों के बीच की दीवार आदि तनाव क्षेत्र (Ecotone) के उदाहरण हैं। इस मध्यस्थ क्षेत्र में प्रत्येक समुदाय के जीव अपने आप वातावरण को बनाये रखने हैं, जो लगातार विपक्षी होता रहता है। उदाहरण के लिए एक झाड़ी (shrub) एवं कच्छ (marsh) समुदाय के बीच प्रकाश, रोशनी, भोजन एवं जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए प्रतियोगिता हो सकती है। इसके कारण एक पौधा दूसरे प्रकार के पौधे द्वारा हटाया जा सकता है। इस स्थिति में भौतिक कारक तीव्रता से बदलते है ; समुदाय के बीच गमन तेजी से बढ़ता है ; तनाव क्षेत्र तंग या संकुचित (Narrow) पड़ जाता है। जब तक एक समुदाय, दूसरे समुदाय से धीरे-धीरे हटना शुरू हो जाता है तो बड़े तनाव क्षेत्र (Ecotone) की स्थापना होती है।

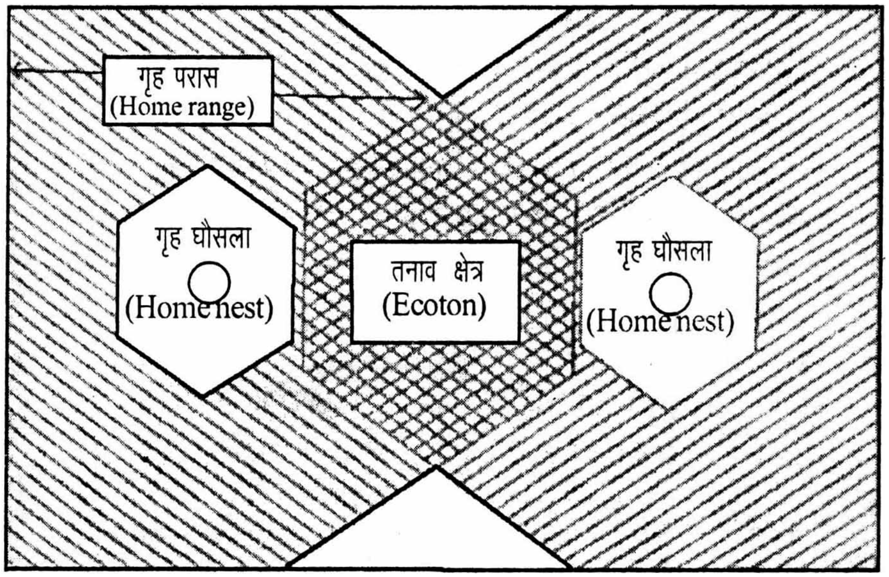

चित्र 6.6 तनाव क्षेत्र

दो विभिन्न जीवोमों के बीच की सम्पर्क रेखा संक्रमिका (ecotone) कहलाती है। सैद्वान्तिक रूप में यह दो समुदायों के बीच का तनावपूर्ण कटिबन्ध होता है। प्राय: संक्रमिकायें विशेष जन्तुओं तथा पादपों द्वारा अभिलक्षित की जाती हैं जो इन संक्रामक क्षेत्रों में ही फलते-फूलते हैं। बटेर (Quail) एक ऐसी ही स्पीशीज है जिसे सफल प्रजनन हेतु किसी अरण्य क्षेत्र के किनारे विशेषकर जहाँ वन तथा शादल (Meadow) मिलते हों, घोंसला बनाना होता है। एक तनाव क्षेत्र (ecotone) में तापक्रम, नमी, प्रकाश एवं दूसरे भौतिकीय प्रभाव की अवस्थाएँ दोनों किनारीय स्थित समुदायों से (Border communities) से भिन्न एवं प्राय: मध्यस्थ होती हैं।

कोर का सिद्धान्त (Principle of edges) : नियमित रूप से किसी पड़ोसी समुदायों (neighbouring communities) की तुलना में तनाव क्षेत्र में अधिक जातियाँ तथा घनी जीवसंख्या पाई जाती है, इसे कोर या किनारे का सिद्वान्त (principle of edges) कहते हैं। तनाव क्षेत्र में (ecotone) जन्तुओं की अधिक संख्या का कारण है अधिक मात्रा में भोजन व आश्रय का होना, कि भाँति-भाँति के पेड़-पौधों से उपलब्ध होता है। इस तरह की प्रकृति को जिसमें विभिन्न जीव व संख्या का घनत्व अधिक हो जाता है, उसे कोर प्रभाव (Edge effect) कहते हैं। यही तन्तुओं की अधिक संख्या का कारण भोजन व आश्रय के लिए पेड़-पौधों की संख्या अधिक होना माना जाता है।

6.4 बोध प्रश्न

नोट : (i) प्रत्येक प्रश्न में छोडी गई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिए करें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाए।

I. रिक्त स्थान भरो :

1. प्राकृतिक रूप में सन्तुलन की प्रवृति को.. कहते हैं।

2. पारिस्थितिकी में नियन्त्रणों के विज्ञान को.................... कहते हैं।

3. ओडम के अनुसार निकेत एक प्रकार का................................ है।

4. एक समुदाय में कोई दो जातियाँ एक समान.......................... नहीं कर सकतीं तथा प्रत्येक जाति एक-दूसरे के................. होती हैं।

5. हुचिन्सन ने स्पर्द्धा की सीमाओं का मापन कर के निकेत को दो उपसमुहों में विभक्त किया है यह......................... एवं....................।

6. जब विभिन्न जातियाँ समान पैतृक निवास से उत्पन्न होकर समान क्षेत्र में निवास करती हैं तो उन्हें................................... जातियाँ कहते हैं।

7. दो मुख्य समुदायों के परस्पर मिलन के क्षेत्र को................. कहते हैं।

II. निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें

1. परितन्त्र में ऊर्जा का स्रोत है।

(अ) आर एन ए (ब) डी एन ए (स) ए टी पी (द) सूर्य का प्रकाश

2. सर्वप्रथम किस ने यह धारणा दी कि निकेत अतिक्रमण कर सकते हैं, परन्तु एक निकेत में केवल एक ही जाति कर सकती है

(अ) हचिन्सन ने (ब) गौस ने (स) एरिक्सन ने (द) शैल्फर्ड ने

3. उस क्षेत्र को क्या कहते हैं जहाँ दो मुख्य समुदाय परस्पर मिलन करते हैं

(अ) जीवोम (ब) समष्टि (स) इकोटोन (द) क्षेत्र

4. परितन्त्र में आने वाले बदलाव कहलाते है -

(अ) उतार-चढाव (ब) होमियोस्टेसिस (स) अनुक्रमण (द) उपरोक्त तीनों

III. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त में उत्तर दो

1. होमीयोस्टैसिस (Homeostasis) को पारिभाशित करिए।

....

2. इकोटोन किसे कहते है?

....

6.5 सारांश (Summary)

प्रत्येक पारितन्त्र में जैविक और अजैविक घटकों में कार्यात्मक ररन्तुल6न बनाये रखने की प्रवृति (natural tendency) पाई जाती है। प्रकाशित रूप में तन्त्र सन्तुलन की प्रवृत्ति जो परिवर्तन का प्रतिरोध करती है तथा सन्तुलन की स्थिति में रहती है, उतरने समरथायित्व या होमीयोस्टैसिस (homeostasis) कहा जाता है। पृथ्वी पर जितने भी सामुदायिक आवास हैं सभी पारितन्त्र के माध्यम से जीवन चक्र सम्पन्न करते हैं। मोटे रूप में विभिन्न पारितन्त्रों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है- भू-स्थलीय पारितन्त्र (terrestrial ecosystem) तथा जलीय पारितन्त्र (aquatic ecosystem)। विभिन्न घटक अपनी व्यक्तिगत पहचान और स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने के साथ-साथ एक दूसरे से ऊर्जा प्रवाह चक्र, भोजन चक्र, पोषण स्तर आदि कार्यात्मक सम्बन्धों में बँधे रहते हैं। पारितन्त्र में

ऊर्जा प्रवाह के आधार पर उत्पादन की धारणा उत्पन्न हुई है। यह इस तथ्य का सूचक होता है कि कौन सा पारितन्त्र भली भाँति कार्यशील है।

प्रत्येक जाति नियमित रूप से जीवन व्यतीत करने के लिये अपने प्राकृतिक निवास में अवस्थित रहती है, जिसे निकेत कहते हैं। प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक सदस्य समुदाय के कार्य को इसकी निकेतया गर्त (niche) कहते हैं। शब्द Niche, किसी अवास-स्थान (habitat) में इसकी भौतिकीय उपस्थिति से नहीं, किन्तु समुदाय में प्रत्येक जीव के कार्य को दर्शाता है। एक प्राकृतिक निवास में एक से अधिक निकेत हो सकते हैं परन्तु एक समुदाय में कोई दो जातियाँ एक समान निकेत (niche) में नही रह सकतीं तथा प्रत्येक जाति एक-दूसरे की पूरक होती है। दो भिन्न जातियों के जन्तु सदैव समान निकेत में नही रह सकते हैं और अन्ततः दो में से एक जाति दूसरी जाति को या तो बाहर निकाल कर या समाप्त करके सम्पूर्ण निकेत पर अधिकार कर लेती है। किसी भी दो समुदायों की सीमाएँ विशुद्ध रूप से अलग नही हो सकती। दोनों समुदायों के परस्पर मिलन के क्षेत्र को तनाव क्षेत्र या इकोटोन कहते हैं। अर्थात तनाव क्षेत्र या इकोटोन दो या दो से अधिक भिन्न समुदायों के बीच का क्षेत्र होता है।

6.6 शब्दावली (Glossary)

1. **पारितन्त्र समस्थिरता (Ecosystem Homeostasis) :** प्रत्येक पारितन्त्र में जैविक और अजैविक घटकों में कार्यात्मक सन्तुलन बनाये रखने की प्रवृत्ति (Natural tendency) पाई जाती है। प्राकृतिक रूप में तन्त्र सन्तुलन की प्रवृत्ति जो परिवर्तन का प्रतिरोध करती है तथा सन्तुलन की स्थिति में रहती है, उसे समस्थायित्व या होमीयोस्टैसिस (Homeostasis) कहा जाता है।
2. **पारितन्त्र (Ecosystem) :** पौधो तथा जन्तुओं का जैवसमुदाय जिसका एक विशेष वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।
3. **गतिशीलता का सूचक (Ecosystem and Productivity Concept) :** यह इस तथ्य का सूचक होता है कि कौन सा पारितन्त्र भली भाँति कार्यशील है अर्थात् उसकी कार्यशील गतिशीलता (Functional dynamism) कैसी है। विभिन्न स्तर पर उत्पादन भिन्न-भिन्न रूप में संचयित रहता है।
4. **ताप गतिशीलता का प्रथम नियम (First law of thermodynamics) :** ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही इसका विनाश होता है। अतः सौर ऊर्जा एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित हो जाती ह।
5. **ताप गतिशीलता का दूसरा नियम (Second law of thermodynamics) :** कुछ ऊर्जा सदैव तापीय ऊर्जा में परिवर्तित होती रहती है, जिससे ऊर्जा की बड़ी राशि का हास होता है। अतः क्रियाशील ऊर्जा कभी भी शत्-प्रतिशत उपयोगी नहीं होती है, क्योंकि परिवर्तन प्रक्रिया में बड़ी मात्रा में ऊर्जा अनुपयोगी ऊज म परिवर्तित हो जाती है।
6. **भोजन चक्र (Food chain) :** भोजन ऊर्जा ग्रहण करने के लिए निरन्तर भक्षण प्रक्रिया दोहराने से जीवधारियों में ऊर्जा के आदान-प्रदान की जो शृंखला बनती है, उसे भोजन चक्र कहते हैं। इस शृंखला में विभिन्न स्तरों पर क्रियाशील ऊर्जा का लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक तापीय ऊर्जा का हास हो जाता है।

7. पोषण स्तर (Trophic levels) : स्थलीय एवं जलीय पारितन्त्र में भोजन ऊर्जा निरन्तर स्थान परिवर्तन करती रहती है और मूल उत्पादक वनस्पतियों को प्रथम उपभोक्ता, शाकाहारी खा जाते हैं। हरे पौधे खाद्य शृंखला का आधार बनाते हैं तथा ये उत्पादक कहलाते हैं। शाकाहारी उपभोकता दूसरा पोशक स्तर बनाते है। इस प्रकार मॉसहारी उपभोकता तीसरा पोशक स्तर बनाते है।

8. जैव भू-रासायनिक चक्र (Biogeochemicl Controls) : खनिज पोषक पदार्थो की पूर्ति के लिए अनेक चक्र पाये जाते हैं, जिनके माध्यम से ऑकसीजन, कार्बन, नाइट्रोजन, सल्फर आदि तत्व वायुमण्डल और भूमण्डल के भण्डारों से जीवधांरियो में प्रविष्ट करके जैविक कियाएँ सम्पादित करते हैं और अन्त में वापस मूल सुरक्षित भण्डारों में पहुँच जॉते हैं।

9. नियन्त्रण (Cybernetic Controls) : पारितन्त्र नियन्त्रण प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक अध्ययन को साइबरनेटिक्स (Cybernetics) या पारितन्त्र नियन्त्रण कहते हैं।

10. खड़ी फसल (Standing crop) : किसी भी स्थान विषेश पर निरीक्षण के समय उपस्थित जीवधारियों को खड़ी फसल कहते हैं, जिसे जीवधारियों की कुल संख्या के जैव-भार या संचयित ऊर्जा के रूम में दर्शाया जाता है।

11. संवहन या संचालन क्षमता (Carrying capacity) : पारितन्त्र वह विशालतम खडी फसल, जो अनिश्चित काल तक बनी रह सकती है, को पारितन्त्र की संचालन या संवहन क्षमता कहते है।

12. प्रारम्भिक उत्पादन (Primary productivity) : पर्णहरित वनस्पतियाँ सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से कार्बनिक भोज्य पदार्थो में परिवर्तित कर देती है। सौर उर्जा को भोज्य पदार्थो मे बदलने की इस गति को प्रारम्भिक उत्पादन कहते हैं।

13. द्वितीयक उत्पादन (Secondary production) : भोजन चक्र शृंखला में ऊर्जा का एक से दूसरे पोषण स्तर पर सम्पूर्ण स्थानान्तरण नहीं होता है। इस प्रक्रिया में कुछ न कुछ मात्रा विभिन्न उपभोक्ताओं में भण्डारित होती रहती है जिसे द्वितीयक उत्पादन कहते है।

14. पारिस्थितिकीय निकेत (Ecological nitche) : प्रत्येक जाति नियमित रूप से जीवन व्यतीत करने के लिये अपने प्राकृतिक निवास में अवस्थित रहती है, जिसे निकेत कहते हैं।

15. गौस का स्पर्द्धात्मक वर्जन का सिद्धान्त (Gauss's principle of competitive exclusion) : दो भिन्न जातियों के जन्तु सदैव समान निकेत में नही रह सकते हैं और अन्ततः दो में से एक जाति दूसरी जाति को या तो बाहर निकाल कर या समाप्त करके सम्पूर्ण निकेत पर अधिकार कर लेती है।

16. एकदेशील (Sympatric) जातिया : जब विभिन्न जातियाँ समान पैतृक निवास से उत्पन्न होकर समह क्षेत्र मे निवास करती हैं, तो उन्हें एकदेशीय जातियाँ कहते हैं। एकदेशीय जातियों में रू- नमन (Divergence) प्रक्रिया से लक्षण विस्थापन होता है।

17. भिन्नदेशीय (Allopatric) जातियाँ : भिन्नदेशीय जातियाँ पैतृक निवास स्थानों से उत्पन्न होने के बाद अलग-अलग दिशाओं से बढकर एक समान निकेत बिन्दु पर आकर रहने लगती

हैं ' गृह प्रक्रिया विस्थापन के ठीक विपरीत अभिबिन्दुन (Convergence) की प्रक्रिया है, जिससे लक्षणों की समानता उत्पन्न होती है।

18. **पारिस्थितिकीय तनाव क्षेत्र (Ecotone) :** दो मुख्य समुदायों के पस्परर मिलन के क्षेत्र को तनाव क्षेत्र या इकोटोन कहते हैं। अर्थात तनाव क्षेत्र या इकोटोन दो या दो से अधिक भिन्न समुदायों के बीच का क्षेत्र होता है।

19. **कोर का सिद्वान्त (Principle of edges) :** नियमित रूप से किसी पडोसी समुदायों (Neighbouring communities) की तुलना में तनाव क्षेत्र में अधिक जातियाँ तथा घनी जीवसंख्या पाई जाती है, इसे कोर या किनारे का सिद्वान्त (Principle of edges) कहते हैं।

6.7 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी - डॉ. ए. एल. भाटिया
2. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी. डी. शर्मा
3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी - डॉ. धीरेन्द्र देवशि

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

I.	1.	समस्थिरता	2.	साइबरनैटिकस
	3.	सूक्ष्म निवास	4.	निकेत पूरक
	5.	मूलभूत निकेत, वातविक निकेत	6.	एकदेशीय
	7.	तनाव क्षेत्र		
II.	1.	द	2.	व
	3.	स	4.	स

III. 1. प्रत्येक पारितन्त्र में जैविक और अजैविक घटकों में कार्यात्मक सन्तुलन बनाये रखने की प्रवृत्ति (Natural tendency) पाई जाती है। प्राकृतिक रूप में तन्त्र सन्तुलन की प्रवृत्ति जो परिवर्तन का प्रतिरोध करती है तथा सन्तुलन की स्थिति में रहती है, उसे समस्थायित्व या होमीयोस्टैसिस (Homeostasis) कहा जाता है।

2. दो मुख्य समुदायों के परस्पर मिलन के क्षेत्र को तनाव क्षेत्र या इकोटोन कहते हैं। अर्थात तनाव क्षेत्र या इकोटोन दो या दो से अधिक भिन्न समुदायों के बीच का क्षेत्र होता है।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01 निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए-

1. साइबरनेटिक्स
2. अपघटक
3. निकेत अतिक्रमण
4. निकेत जटिलता

	5. एकदेशीय व भिन्नदेशीय प्रजातियाँ 6. निकेत व वियोजन के लाभ
प्र०2	पारितन्त्र समस्थिरता क्या हैं? यह किसी पारितन्त्र में किस प्रकार बनाए रखी जा सकती है?
प्र०3	पारितन्त्र के विभिन्न कार्यात्मक पहलुओं का वर्णन कीजिए।
प्र०4	पारितन्त्र की उत्पादन अवधारणा से आप क्या समझते हैं? सविस्तार समझाइए।
प्र०5	पारितन्त्र के संरचनात्मक पहलू पर निबन्ध लिखिए।
प्र०6	पारिस्थितिक गर्त निकेत क्या है? सविस्तार वर्णन करो।
प्र०7	निकेत को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न समूहों का वर्णन करिए।
प्र०8	मूलभूत एवं वास्तविक निकेत क्या हैं? इनकी सहयता से बहु-आयामीय या दीर्घ या उच्च आयतन निकेत को समझाइए।
प्र०9	गौस के स्पर्द्धात्मक वर्जन के सिद्धान्त को बताइए।
प्र०10	तनाव क्षेत्र एवं कोर प्रभाव की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

इकाई 7
समष्टि अथवा जीवसंख्या पारिस्थितिकी
(Population Ecology)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 समष्टि पारिरिथतिकी
7.2.1 जनसंख्या या समष्टि घनत्व
7.2.2 समष्टि घनत्व के प्रभावी कारक
7.2.2.1 जन्मदर
7.2.2.2 मानव जन्म-दर
7.2.2.3 मृत्यु दर
7.2.2.4 मानव मृत्यु दर
7.2.2.5 आयु अनुपात
7.2.2.6 जीवसंख्या या समष्टि-परिवर्तन या दोलन
7.2.2.7 आयु चितरण
7.2.2.8 आयु स्तूप या पिरामिड
7.2.2.9 जैविक क्षमता
7.2.2.10 जीवसंख्या या समष्टि अनुक्रियाएँ
7.2.2.11 जीवसंख्या या समष्टि-आकार का नियमन
7.2.2.12 समष्टि वितरण या छितराव या परिक्षेपण या प्रकीर्णन
7.2.3.1 जीवसंख्या प्रसार अथवा समष्टि प्रसार
7.2.3.2 स्वाभाविक संख्या बढोतरी क्षमता
7.2.3.3 जीवसंख्या का वृद्धि आकार
7.2.3.4 जनांकिकी
7.3 बोध प्रश्न
7.4 सारांश
7.5 शब्दावली
7.6 संदर्भ ग्रंथ
7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य (Objective)

किसी जन्तु प्रजाति की कार्यात्मक इकाई के सदस्यों के उस समूहों को जो वातावरण से सीधे अनुक्रियाएँ करते हुए स्थान विशेष के प्राकृतिक स्त्रोतों का समान रूप से शोषण करते हों, समष्टि (Population) हैं। इस शब्द में सदैव संख्याओं एवं सांख्यिकीय विश्लेषण-विधियों का अर्थ निहित होता है।

समष्टि पारिस्थितिकी : निम्न घटक होते हैं -

1.1 जनसंख्या या समष्टि घनत्व
1.2 समष्टि घनत्व के प्रभावी कारक
1.3 जन्मदर
1.4 मानव जन्म-दर
1.5 मृत्यु दर
1.6 मानव मृत्यु दर
1.7 आयु अनुपात
1.8 जीवसंख्या या समष्टि-परिवर्तन या दोलन
1.9 आयु वितरण
1.10 आयु साप या पिरामिड
1.11 जैविक क्षमता
1.12 जीवसंख्या या समष्टि अनुक्रियाएँ
1.13 जीवसंख्या या समष्टि-आकार का नियमन
1.14 समष्टि वितरण या छितराव या परिक्षेपण या प्रकीर्णन
1.15 जीवसंख्या प्रसार अथवा समष्टि प्रसार
1.16 स्वाभाविक संख्या बढ़ोतरी क्षमता
1.17 जीवसंख्या का वृद्धि आकार
1.18 जनांकिकी

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

समष्टि का अर्थ है व्यष्टियों का एक साथ रहना है अर्थात् उन व्यकितइयों की संख्याएँ जो किसी एक स्थान, क्षेत्र अथवा संसार में रह रहे हों। 'समष्टि (Population) शब्द को बहुत समय से मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के जीवों के लिए भी प्रयोग किया जाने लगा है। इसम्मेसदैव संख्या एवं साख्यिकीय विश्लेषण-विधियों का अर्थ निहित होता है।

समष्टि को अनेक रूप से परिभाषित किया गया हैं। जैसे -

(1) किसी जन्तु प्रजाति की कार्यात्मक इकाई के सदस्यों के उस समूहों को जो वातावरण से सीधे अनुक्रियाऐ करते हुए स्थान विशेष के प्राकृतिक स्त्रोतों का समान रूप से शोषण करते हों, समष्टि (Population) हैं।

(2) किसी दिये गये विशिष्ट स्थान और समय पर समान आनुवांशिकी वाले जन्तु समूह के उन सदस्यों की संख्या के योग को समष्टि, कहते हैं, जिसमें प्रजनन के माध्यम से. वंशानुगत लक्षणों के आदान-प्रदान से प्रजाति की निरन्तरता बनाये रखने की क्षमता होती है। यदि किसी निर्दिष्ट स्थान पर मात्र एक जन्तु प्रजाति पाई जाती है, तब जनसंख्या एक प्रजाति जीवसंख्या (monospecific population) कहलाती है। परन्तु कभी-कभी एक साथ अनेकों प्रजातिये। में ही आन पर रहती हैं, तब सम्मिलित रूप से इन्हें बहु प्रजातीय जीवसंख्या (polyspecific population) कहते हैं।

समष्टि की पहचान उसकी संरचना 'और संगठन से लक्षणों द्वारा दर्शायी जाती है। एली (1949) और अन्य वैज्ञानिकों अनुसार समष्टि का मूलभूत लक्षण आकार या घनत्व (density) है। जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करने वाली प्राकृतिक गतिविधियों में जन्म एवं मृत्यु दर (natality and mortality) अप्रवास एवं उत्प्रवास (Immigration and igration), मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। घनत्व के अतिरिक्त आयु वितरण (age distribution), आनुवंशिकी (genetics), जैविक क्षमताएँ (biological efficiency), छितराव(disperision), जैविक क्रियाएँ आदि जनसंख्या के पूरक लक्षण है।

7.2 समष्टि पारिस्थितिकी (Population Ecology)

समष्टि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत एक जाति या वंश की समष्टि की वातावरण से अन्तःक्रिया का अध्ययन किया जाता है। समष्टि का आकार या घनत्व, स्वरूप तथा उसमें अन्तर लाने वाले कारकों का अध्ययन पोपुलेशन डायनेमिक्स (Population dynamics) के अन्तर्गत किया जाता है। जन्मदर, मृत्यदर, प्रवसन प्रमुख ऐसे कारक हैं जो कि घनत्व को प्रभावित करते हैं। समष्टि के स्तर पर आनुवांशिकी का अध्ययन समष्टि आनुवंशिकी कहलाता

7.2.1 जनसंख्या या समष्टि घनत्व (Populatin density)

किसी भी इकाई क्षेत्र में प्रजाति विशेष के सदस्यों की संख्या घनत्व कहलाती है। यदि घोड़ों का घनत्व 100 प्रति वर्ग किलोमीटर है, तो इसका अर्थ यह है कि एक वर्ग किलोमीटर में 100 घोडे पाये जाते हैं। समष्टि या 'जनसंख्या घनत्व में उतार-चढ़ाव एक साधारण प्रक्रिया है। परन्तु उच्चतम और न्यूनतम घनत्व सीमित है। घनत्व की उच्चतम सीमा का निर्धारण पारितन्त्र में (ecosystem) में ऊर्जा प्रवाह (energy flow), प्रजाति का पोषण स्तर एवं उपापचय समस्थिरता प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। सूत्र रूप में यदि घनत्व को 'D' संख्या या नम्बर को 'N' समय को 't' तथा क्षेत्रफल (Area) को 'a' से दर्शाया जाये, तो समष्टि घनत्व निम्न प्रकार से प्राप्त होगा-

$$D = \frac{N/a}{t}$$

जनसंख्या स्थाई नहीं रहती है और समय-समय पर परिवर्तित होती रहती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप घनत्व में भी उतार-चढ़ाव आ जाता है। अत: जनसंख्या घनत्व के परिवर्तन को दर्शाने के लिए उपरोक्त सूत्र में वेदि सदस्य संख्या 'N' के साथ (डेल्टा) चिन्ह लगा दें, तब

ΔN=सदस्यों की परिवर्तित संख्या

$rN = \frac{\Delta N}{\Delta t}$ = वृद्वि दर या इकाई समय में औसत सदस्य संख्या परितर्वन (r=वृद्धि दर)

$\frac{\Delta N}{Nt\Delta}$ = सदस्य संख्या वृद्धि

उपरोक्त सूत्र में संख्या या समय के परिवर्तन को उनके पहले चिन्ह से दर्शा कर परिवर्तनशील जनसंख्या का घनत्व ज्ञात किया जा सकता है।

समष्टि घनत्व की अन्य अभिव्यक्ति (Other expressions of population density)

जीवों की इकाइयों के योगफल या आयतन में उपस्थित संख्या को भी जीवसंख्या का घनत्व कहते हैं। जैसे 100 किग्रा. मछलियाँ प्रति एकड़ जल, उस जलीय माध्यम की मछलियों की आबादी का घनत्व बताती है। सूक्ष्म जीवों में जीवसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग क्यूबिक मिलीमीटर या घन माइक्रोन में दर्शाया जाता है। जब शैवाल या मछलियों की अधिक मात्रा समुद्र से निकाली जाती है, तो उनकी गणना करना कठिन होता है। ऐसे समय में जीवों को तोल कर घनत्व को टन प्रति वर्ग किलोमीटर में दर्शाया जाता है। इसमें हम जीवों की संख्या को ही नहीं, बल्कि जीव पदार्थ की मात्रा, जिसे जीवसंख्या को जैविक पिण्ड कहते हैं, को बताते हैं।

समष्टि घनत्व के प्रकार (Types of Population Densities)

समष्टि या जीवसंख्या घनत्व दो प्रकार का होता है -

1. अपरिष्कृत या अशोधित या कच्चा माल (Crude density)
2. पारिस्थितिकीय घनत्व (Ecological)

1. अशोधित या अपरिष्कृत या कच्चा घनत्व

इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण क्षेत्र में जीवों की संख्या या जैविक पिण्ड की संख्या प्रति इकाई होती है, उदाहरण - 5, 00, 000 हिरण; 40, 000 वर्ग मील में या 2, 000 आर्थोपोड्स का प्रति वर्ग मीटर में होना। इनमें परिणाम जीवों की संख्या (या जैविक पिण्ड) प्रति वर्ग मील, प्रति एकड़ या प्रति वर्ग मीटर आदि दर्शाते हैं। इसे आवास घनत्व (habitat density) भी कहा जा सकता है।

2. पारिस्थिकीय घनत्व

प्रत्येक जीव वहीं जगह घेरता है जिससे उसकी जरूरतें पूरी हो सकती हैं, जिससे चप्पा (patchy) वितरण होता है। जैसे कि 500 हिरण एक वर्ग मील में रह रहे हों और उनके लिए आधा वर्ग मील का क्षेत्र प्रयाप्त हो, तो उस क्षेत्र का पारिस्थिकीय घनत्व 1000 हिरण प्रति वर्ग मील होगा।

समष्टि या जीवसंख्या घनत्व का मापन (Determination of population density)

इस कार्य के लिए निम्न अग्रांकित तरीके काम में लाये जाते हैं-

1. **सीधी गणना (Direct Count) :** यह तरीका केवल किसी समय विशेष पर तुलनात्मक बड़े आकार की जातियों वाली जीवसंख्या के जन्तुओं की संख्या जानने के लिए श्रेष्ठ है। यह तरीका मुख्य रूप से चिड़ियाँ एवं बड़े या मध्यम आकार के स्तनधारियों (जैसे Seal तथा Rabbits) के लिए 'उपयुक्त है। चिड़ियों की जीवसंख्या की गणना करने का सही समय घोंसला बनाने की ऋतु है, जब हलचल कम होती है। लगभग सभी जीवों के लिए विशेषत: जन्तुओं की कुल संख्या ज्ञात करना असम्भव है। क्योंकि इनके स्वभाव, आवास क्षेत्र के आकार में बहु त भिन्नता होती है।

2. **यादृच्छिक प्रतिचयन अथवा निदर्शन विधि (Random sampling) :** कुछ सीमा तक जीवसंख्या का घनत्व जीवसंख्या के कुछ भाग के प्रतिचयन (Sampling) करने से भी मालूम किया जा सकता है। जीवसंख्या में विभिन्नता का ध्यान रखते हुए पूरी जीवसंख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। जीवसंख्या का पूर्ण यादृच्छिक प्रतिचयन (random sampling) करना चाहिए। बहुत गतिशील जातियों जैसे मछलियाँ, उड़ने वाले कीट इत्यादि में प्रतिचयन क्षेत्र काफी बडा होना चाहिए। कम गतिशीलता वाले जन्तु जैसे मोलस्का, कीटों के लार्वा आदि का क्वाड्रेट (quardrat) तरीके से प्रतिचयन किया जा सकता है। इसमें यादृच्छिक बराबर आकार के बर्ग बनाकर उनके जन्तुओं की संख्या की गणना करते हैं। क्वाड्रेट का क्षेत्रफल जीवसंख्या के घनत्व एवं उनके आवास की भिन्नता पर आधारित रहता है। उदाहरण इचन नदी (Itchen river) के भागों में गेमेरस (Gammarus pulex) की कॉलोनी के प्रतिचयन में छ. इंच के वर्ग उपयुक्त सिद्ध हुए हैं जबकि कृषि क्षेत्र में केंचुए की जीवसंख्या के आकलन में इससे भी बडे आकार के वर्ग उपयोग में लाये गये हैं।

3. **अंकन व पुन: पकड़ने की विधि (Capture-recapture method) :** अधिक गतिशील जन्तु जैसे उड़ने वाले कीट और मछलियों द्वारा एक प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है। निजी संख्या उपरोक्त वर्णित तरीकों से आकलन नहीं को जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में अंकन व पुन: पकडने की विधि को लाभदायक माना गया है। इन तरीकों के अनुसार अंकित जन्तुओं की ज्ञात संख्या एक विशेष जीवसंख्या में छोड़ दी जाती है। ये जन्तु जीवसंख्या में बराबर वापस वितरित हो जाते हैं, जैसे कि वे अंकित करने के लिए चुनने से पहले थे। कुछ समय के पश्चात् वापस जीवसंख्या का नमूना लिया जाता है। फिर कुल जीवसंख्या का आकलन अंकित एवं बिना अंकित जीवों के अनुपात कम्प्यूटिंग द्वारा किया जाता है।

4. **पीटरसन की बन्ध चिन्हांकन विधि :** पीटरसन (1893)विधि में जिस प्राणी का जीवसंख्या घनत्व ज्ञात करना होता है उसके कुछ सदस्यों की निश्चित संख्या को किसी एक समय, बन्ध बना कर उन पर स्पष्ट चिन्ह लगा देते हैं। अब इन चिन्हांकित जन्तुओं को स्वतन्त्र कर देते हैं। निश्चित अन्तराल (interval) के पश्चात दूसरे समय चिन्हांकित और बिना चिन्ह वाले जन्तु सदस्यों के मिले-जुले झुण्ड को पुन: पकड़कर उनकी सम्पूर्ण संख्या और उसमें चिन्हांकित संख्या को अलग-अलग गिन लिया जाता है। चूँकि यह किया अचानक लिये गये नमूनों पर आधारित है, अत: यह स्पष्ट है कि झुण्ड मे चिन्हांकित सदस्यों की संख्या का अनुपात लगभग सम्पूर्ण जीवसंख्या के अनुपात के बराबर होगा, अर्थात्

$$\frac{\text{पकड़े गए नमूने में चिन्हांकित प्राणियों की संख्या}}{\text{पुनः झुण्ड में पकड़े गए प्राणी संख्या का योग}} = \frac{\text{सम्पूर्ण जीवसंख्या योग में चिन्हांकित प्राणी}}{\text{सम्पूर्ण जीवसंख्या योग}}$$

डाल (Dahl, 1919) ने नार्वे की झीलों में ट्राउट मछली के जीवसंख्या का घनत्व का इस विधि से प्राप्त किया था। उन्होनें 109 ट्राउट को चिन्हांकित करके झील में छोड़ दिया। कुछ दिनों पश्चात दुबारा 177 ट्राउट को चिन्हांकित छाँटने पर 57 मछली तो चिन्हांकित और शेष साधारण पाई गई। इन ऑकड़ों के आधार पर चिन्हांकित जीवसंख्या अनुपात -

$$= \frac{\text{सम्पूर्ण संख्या में चिन्हांकित मछलियों की संख्या}}{\text{पकड़ी गई मछलियों की सम्पूर्ण संख्या}}$$

अर्थात् $\frac{57}{177}$ = 0.322

चूँकि चिन्हांकित जीवसंख्या 109 है, अत: जीवसंख्या घनत्व अनुपात

$$= \frac{\text{चिन्हांकित जीव संख्या}}{\text{चिन्हांकित जीवसंख्या अनुपात}}$$

या $\frac{109}{0.322}$ = 338.5

बन्धन चिन्हांकित विधि के मुख्य आधार हैं -

(1) चिन्हांकित और बिना चिन्ह वाले या साधारण प्राणी अचानक पकडे जाते हैं।

(2) चिन्हांकित और साधारण दोनों प्राणियों पर समान जन्म दर और मृत्यु दर लागू होंगी।

(3) प्राणी चिन्ह का लुप्त हो जाना या अस्पष्ट होना सम्भव नहीं है।

5. खेत नमूना विधि (Sample plot method) : यह सर्वाधिक प्रचलित और सरल विधि है। इस विधि में जिस क्षेत्र में जीवसंख्या घनत्व का अनुमान लगाना होता है, उसको बराबर-बराबर क्षेत्रफल में निश्चित प्लॉट या खेतों में विभाजित कर दिया जाता है। अब कुछ चुने हुए खेतों में प्राणियों की संख्या गिनकर एक खेत के लिए औसत संख्या निकाल ली जाती है। यदि एक खेत की औसत संख्या को सभी खेतों की संख्या के योग से गुणा कर दें, तब सम्पूर्ण क्षेत्र का जीवसंख्या घनत्व प्राप्त हो जायेगा। उदाहरण के लिए, यदि हमें 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किसी प्राणी का जीवसंख्या घनत्व ज्ञात करना है, तब 1 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में बराबर-बराबर 100 खेत बनाकर प्रत्येक कोंने पर और केन्द्र स्थित किसी एक खेत अर्थात् पाँच खेतों पर प्राणी गिनते हैं। माना कि इन पाँच खेतों की कुल संख्या 125 आती है, तब-

एक खेत का औसत = $\frac{125}{5}$ = 25 होगा।

अत: 100 वर्ग किलोमीटर का अनुमानित जीवसंख्या घनत्व = 25 x100 = 2500 है। खेत नमूना विधि में चौकोर या गोलाकोर किसी भी आकृति के खेत निर्धारित किये जा सकते हैं, परन्तु सभी खेतों का क्षेत्रफल समान होना अनिवार्य है। इस विधि की सफलता के लिए नमूनों के लिए उन खेतों को चूनना चाहिए, जो पूरे क्षेत्र की जीवसंख्या संरचना को वास्तविक रूप में दर्शाती हों। अत: नमूने के खेत सम्पूर्ण क्षेत्र के भागों के लेने चाहिए। प्रत्येक खेत की सही गिनती होनी चाहिए। कभी-कभी भ्रमण, पर्यटन अथवा प्रजनन आदि उद्देश्यों के लिए जन्तु इधर-उधर निकल जाते हैं। ऐसी स्थिति में तुलनात्मक रूप से अधिक छोटे खेत बनाने पर अधिक अच्छे और सही परिणाम प्राप्त होंगे।

6. आपेक्षिक जीवसंख्या घनत्व विधियाँ : ये विधियाँ जीवसंख्या घनत्व का मोटा अनुमान लगाने में सहायक हैं, । अत: वास्तविक घनत्व का ज्ञान नहीं करा पाती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नांकित हैं-

(अ) मल की गोलियों की संख्या (Faecal pellet count) : कुछ प्राणियों का मल नियमित आकार की गोलियों के रूप में' विसर्जित होता है। इन प्राणियों का जीवसंख्या घनत्व का अनुमान इन गोलियों की संख्या के आधार पर ज्ञात कर किया जाता है। यह विधि साधारत: चूहों, खरगोश, खरहे आदि षाकाहारी जीवधारियों के लिए अधिक उपयोगी है।

(ब) **ध्वनि तरंग आवृत्ति (Vocal call frequency) :** यह विधि विशेष रूप से पक्षियों के लिए प्रयोग में लाई जाती है। किसी अवधि में किसी पक्षी विशेष की ध्वनि तरंगें या बोलों की संख्या अंकित करके उनका समष्टि घनत्व अनुमानित करं लिया जाता है। यह विधि कुछ निश्चित ध्वनि तरंग में गाना गाने वाली चिड़ियों पर अधिक सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है।

(स) **जाल पकड़ संख्या तकनीक (Net trap technique) :** इस विधि में अलग-अलग प्राणियों को उपर्युक्त जाल में पकड़कर इनकी समष्टि का मोटा अनुमान लगाया जाता है। प्रत्येक पकड़ मे प्राणियों की संख्या गिनकर, घनत्व ज्ञात कर लेते हैं। यह तकनीक बीटल और अन्य कीटों तथा प्राणी प्लवक आदि के लिए उपयोग में लाई जाती है। विभिन्न प्रजातियों और अन्य गतिविधियों के कारण इस तकनीक से मात्रा प्रचुरता अथवा अल्पता का ज्ञान हो जाता है।

(द) **प्रति इकाई पकड़ प्रयास विधि (Per unit campture method) :** डीलरी (1947)जिपिन (1958)ने इसका प्रयोग उन जन्तुओं के लिए किया जो अपेक्षाकृत स्थाई रूप से किसी सीमित क्षेत्र में निवास करते हैं। इस विधि में किसी एक स्थान पर बार-बार प्राणी पकड़ कर उनकी संख्या गिन लेते हैं। तदुपरान्त एक निश्चित इकाई प्रयास के अनुपात में प्राणियों की संख्या गिन कर ग्राफ बनाते हैं; जिसमें सम्पूर्ण प्राणी पकड संख्या को आधार रेखा पर रखकर बून्द (0) तक बढाते है। अब यदि इकाई प्रयास संख्या को खड़ी रेखा से एक सीधी रेखा डालकर सम्पूर्ण कपड़ संख्या की आधार रेखा से मिला दें तो समष्टि घनत्व ज्ञात हो जायेगा।

7.2.2 समष्टि घनत्व के प्रभावी कारक (Factor affecting population density)

जीवनसंख्या का घनत्व बढ़ना जीवसंख्या में जीवों के बढ़ने, घटने एवं मरने पर ही निर्भर करता है। जीवों की संख्या मुख्य रूप से जन्मदार (Natality) और मृत्युदर (Mortality) के बीच के अन्तर तथा आप्रवासन (Immigration) एवं उत्तवास (Emigration) के बीच सन्तुलन पर निर्भर करती है।

7.2.2.1 जन्मदर (Natality)

पारिस्थितिकी विज्ञान मे जन्म-दर समष्टि की वृद्धि क्षमता को दर्शाती ह। मूल रूप में आयु, भोजन, जैविक, और अजैविक वातारण कारक जन्मदर को प्रभावित करते हैं। सामान्यतया युवा अवस्था में सर्वाधिक जन्म-दर पाई जाती है, जो शनै: शनै: घटती हुईं वृद्धावस्था तक लगभग शून्य हो जाती है। जीवसंख्या का बढता मुख्य रूप से जन्म-दर द्वारा प्रंभावित होता है। जन्म-दर दो प्रकार से वर्णित की जा सकती है।

(i) उच्चतम (maximum) या कार्यिकीय जन्मदर (physiological natality), एवं
(ii) वास्तविक जन्म-दर (realized natality)

जन्म दर को निन्न सूत्र से दर्शाया जा सकता है -

$$\text{जन्म दर दर} = \frac{\text{नये उत्पन्न जीवों की संख्या}}{\text{समय}}$$

जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रजनन क्षमता (reproduction potential) वास्तविक जन्म-दरें से कहीं अधिक होती है, ठीक उसी प्रकार वास्तविक मृत्युदर भी मृत्युक्षमता (death potential) से कम होती है। समष्टि वृद्धि के लिए वास्तविक जन्द-दर, वास्तविक मृत्युदर से अधिक होना अनिवार्य है। यदि दोनों

की दर समान हो जायेगी तो समष्टि जीवसंख्या स्थिर हो जाती है। परन्तु मृत्युदर, वास्तविक जन्म-दर से अधिक हो जाने पर जीवसंख्या घटती जायेगी। इस प्रवृत्ति की निरन्तरता जाति को समाप्त कर सकती। जन्म-दर और मृत्युदर अनुपा ओं 100 जन्म-दर्शाते हैं, जिसे प्राणभूत संकेत (vital index) कहते हैं।

7.2.2.2 मानव जन्म-दर (Human natality)

मनुष्य में अधिकतम जन्द-दर ठीक से निर्धारित करना कठिन हैं। क्योंकि जिन समष्टियों (population) में अधिकतम जन्म-दर है उन्हीं के ऑकड़े सबसे कम प्राप्त हु ये हैं। अभी तक की ज्ञात सबसे अधिक जन्मदर प्रति वर्ष सहस्त्र जनसंख्या में लगभग 50 है। इस स्तर की दरें प्राय: उन समष्टियों की. विशेषताएँ हैं जिनका जीवन निर्वाह कृषि स्तरों (agriculature levels) पर होता है।"

सामान्यत: जन्म-दर मे व आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण की मात्रा व जनता की शिक्षा के स्तर में एक प्रतिलोभी (inverse) सम्बन्ध रहता है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और शिक्षित वर्गो में यहाँ तक कि एक ही देश के भीतर भी, जन्म-दरों में अत्यधिक विभेद पाया जाता है। ऐसा भी देखा गया है कि ग्रामीण परिवारों में जन्दर अधिक होने के कारण ये प्राय: अधिक बड़े होते हैं। जन्म दरों में भी विभेद (differences) मिलते हैं। ये जैविक कारणों से न होकर सामाजिक (social) कारणों के फलस्वरूप होते हैं। इन विभेदों के बनने के कारण - (i) विवाह के समय की आयु, (ii) विवाह की दरें एवं (iii) गभ-निरोधक व्यवहार इत्यादि हैं।

7.2.2.3 मृत्यु दर (Mortality)

मृत्मृदर का समष्टि या जीवसंख्या के बढ़ने पर प्रमुख प्रभाव पड़ता है। जन्मदर की तरह मृत्युदर भी आयु समूह (age group) के साथ-साथ बदलती है। वास्तव में मृत्युदर आयु के साथ ही वितरित होती है। मृत्युदर दो प्रकार से दर्शायी जा सकती है - एक तो मरने की सम्भावना पर (probability of dying) तथा दूसरी मृत्युदर (death rate) पर।

पारिस्थितिकीवेत्ता के अनुसार न्यूनतम मृत्युदर मरने वालों की वह संख्या है, जो आदर्श दशाओं के अनुसार मरते हैं। वास्तविक मृत्युदर समय विशेष में मरने वाले जीवों की प्रतिशतता से दर्शायी जाती है। बीते हु ए समय में मरे जीवों की प्रतिशतता को विशिष्ट मृत्युदर कहते हैं। य दो प्रकार से मालूम की जाती है। (i) प्राथमिक जीवसंख्या के द्वारा तथा (ii) औसत जीवसंख्या के द्वारा। प्राथमिक जीवसंख्या में विशेषकर यदि किसी समय जीवों की संख्या स्थिर रहती है तो मृत्युदर व जन्मदर समान होती है। औसत जीवसंख्या के द्वारा यदि जीवसंख्या कम या ज्यादा होती है तो मृत्युदर असमान होती है।

भिन्न-भिन्न प्राणियों में जीवन काल (life span=longevity) भी भिन्न होता है। अन्ततोगत्वा सभी प्राणी थोड़ा या अधिक जीवन काल बिताकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। परन्तु मृत्यु के कारण भी अलग-अलग होते हैं। अनेकों कारकों का जीवन काल पर प्रभाव पड़ता है। जीवन काल दो उप-कालों में विभाजित हैं -

(अ) **कार्यकीय जीवन काल (Physiological longevity) :** यह जीवधारी का साधारण जीवन काल हैं, जिसे वह सर्वोत्तम पारिस्थितिकी में पूरा करने के उपरान्त ही वृद्वावस्था में मृत्यु को प्राप्त होता है।

(ब) **पारिस्थितिकीय जीवनकाल (Ecological longevity) :** यह सम्पूर्ण आयु तक जीवित रहने की अवस्था है, जो आदर्श या सर्वोत्तम परिस्थितियों में ही सम्भव है। अधिकांश जीवधारी सर्वोत्तम पारिस्थितिकी कारकों से वंचित रहते हैं, अनेकों बीमारियाँ, परभक्षण, प्राकृतिक कारकों से वंचित रहते हैं और अनको विपरीत जैविक या अजैविक कारकों से उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है। पारिस्थितकीय जीवन काल विपरित पारिस्थितिकी कारकों से संघर्षपूर्ण जीवन की अवधि या जीवन काल है।

यदि मृत्युदर सभी आयु पर स्थायी रहती है तो वक्र सीधी रेखा (diagonal line) होती है। यह वक्र हाइड्रा तथा पक्षियों एवं कई चूहों की विशेषता है। यदि जन्तु जीवित ज्यादा रहते हैं और मरते कम हैं तो उच्चतर वक्र (higher) प्राप्त होता है। जो अन्त में तेजी से गिरता है, जैसा कि सीपियों (oysters) तथा मछलियों (fishes) में होता है। यदि बहुत से जीव निश्चित समय से पूर्व ही मर जाते हैं, जो वक्र पहले सीधा होगा, परन्तु बाद में तेजी से ऊपर बढ़ेगा, जैसा कि आदमी, हिरण एवं दूसरे स्तनधारियों में होता है।

7.2.2.4 मानव मृत्यु दर (Death-rate or moratlity)

समष्टि में प्रत्येक अवधि काल में मरने वाले जीवों को मृत्यु दर कहते हैं। यह दो प्रकार की होती हैं-

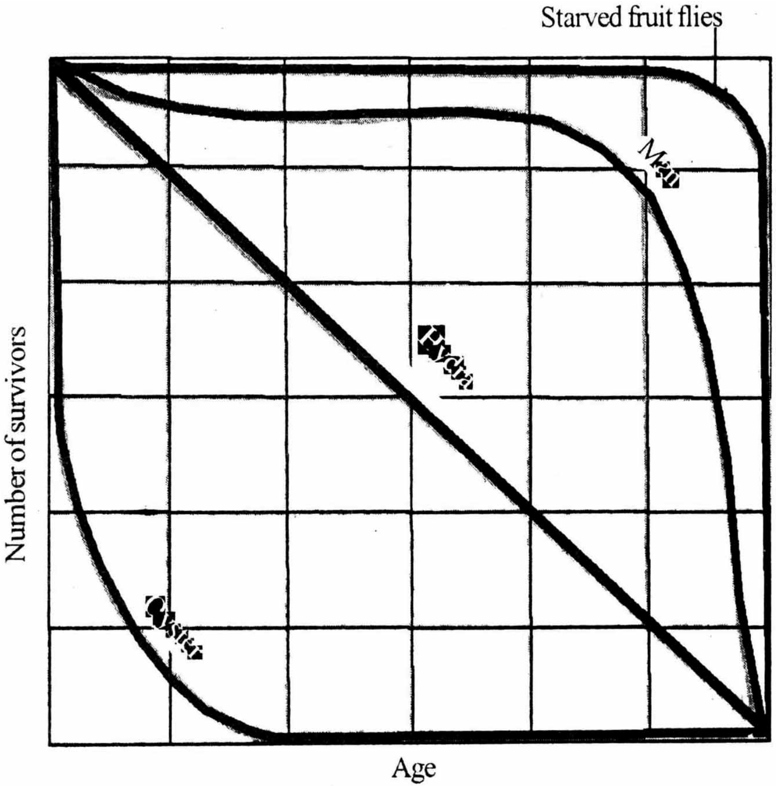

(क) **पोटैन्शियल मॉर्टेलिटी (Potential mortality) :** पोटैन्शियल या न्यूनतम मृत्युदर (minimum mortality) वह मृत्यु संख्या है जो समान्य पारिस्थितियो के अन्तर्गत वृद्धावस्था की कार्योकीपरिवर्तनो के कारण पायी जाती है। यह किसी भी समष्टि में लगभग स्थायी होती है

(ख) **वास्तविक मृत्युदर (Realized mortality or actual death-rate) :** इसकी संख्या में भिन्नता पाई जाती है। यह वातावरणीय फैक्टर्स तथा पॉपुलेशन के आकार, कम्पोजीशन एवं उसक घनत्व पर निर्भर करती है। किसी समष्टि मे मृत्यु के संयोग को उत्तरजीवित वक्र (Diagonal curve) द्वारा सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है। इस कर्व में उत्तरजीवी (Survivorshop curve) की संख्या को समय के (i) डाइगोनल कर्व (diagonal curve) तथा (ii) कॉनवैक्स कर्व (Convex curve) द्वारा आलेखित किया जाता हैं।

7.2.2.5 आयु अनुपात (age ratio)

जीवसंख्या में आयु अनुपात मुख्य रूप से जीवसंख्या की कच्ची जन्मदर एवं मृत्युदर (crude natality and mortality) से प्रभावित होती है। समष्टि को तीन पारिस्थितिकीय कालों विभाजित किया जा सकता है- (i) पूर्व-जनन काल (Pre-productive period), (ii) जनन काल (reproductive Period) व (iii) पश्च-जनन काल (post-reproductive Period)। एक बन्द समष्टि में (जहाँ उत्प्रास (emigration) व अप्रवास (immigration) नहीं हो रहे हों) विभिन्न आयुओं मे अनुपात की प्रवृत्ति स्थिर (constant) बनी रहती है, जहाँ जन्मदर मृत्युदर के बराबर हो। आयु अनुपात भविष्य के दृष्टिकोण से अधिकमहत्वपूर्ण है क्योंकि प्रजननता एक निश्चित एक निश्चित आयु तक की सीमित रहती है व मृत्युदर दूसरे कारको मे अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। अभयारण्य के मुख्य जन्तुओं में युवा व वयस्क के बीच का अनुपात लगभग 2 : 1 का होता है, जो कि स्थिर होता है। सामान्यत: वृद्विकारी समष्टि में युवा (young) की वृद्वि करती संख्या होनी चाहिए व अवनति वाली समष्टि में युवा की कम होती संख्या होती है।

7.2.2.6 जीवसंख्या या समष्टि-परिवर्तन या दोलन (Population fluctuation or oscillation)

पूर्ण वृद्धि प्राप्ति के पश्चात् जीवसंख्या आकार मे उतार-चढाव आते है, उन्हें जीवसंख्या परिवर्तन या दोलन कहते हैं। परन्तु समष्टि की पूर्ण वृद्धि तब मानी जायेगी, जबकि समष्टि में जीवसंख्या परिवर्तन (या छाप में परिवर्तन) समय या (या) का भाग देने पर शून्य औसत प्राप्त होता है (शून्य) जीवसंख्या परिवर्तन या दोलन एक साधारण प्रक्रिया है। जीवसंख्या परिवर्तन अनियमित उतार-चढाव है, जो कुछ बाहरी (Extrinsic) कारणों (वातावरणिय कारकों में परिवर्तन) से उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत जीवसंख्या दोलन नियमित परिवर्तन (regular changes) है। दोलन एक नियमित प्रक्रिया है, जो स्वाभाविक और चक्रीय परिवर्तन दर्शाती है। उन साधारण पारितन्त्रों (ecosystems) में, जहां सामुदायिक सदस्य (community members) तुलनात्मक रूप से कम संख्या में होते हैं। अनियमित जीवसंख्या परिवर्तन अधिक तीवृता दर्शाता है। जीवसंख्या दोलन की स्वाभाविक प्रक्रिया के फलस्वरूप चरित्र-परिर्वन के साथ अनेक पक्षी प्रजनन के लिए ठण्डे प्रदेशों को प्रवास कर जाते हैं। इसी प्रकार अनेकों

मछलियाँ और अन्य जन्तु जीवसंख्या या समष्टि दोलन का उदाहरण प्रदर्शित करते हैं। प्रकृति में दो प्रकार के समष्टि में उतार-चढ़ाव पाये जाते हैं-

1. मौसमी उतार-चढ़ाव (Seasonal fluctuations)
2. वार्षिक उतार-चढ़ाव (Annual fluctuations)

1. मौसमी उतार-चढ़ाव (Seasonal fluctuations) : मौसमी परिवर्तन मुख्यत: मौसम (season) व प्राणी के जीवन-इतिहास (life-history) द्वारा नियन्त्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, (i) वर्ष के कुछ भागों में, वातारण में मच्छर व मक्खियों की संख्या बहुत घनी हो जाती है या जंगल पूरी तरह से पक्षियों से भर जाते हैं या खेत कुछ प्रकार की घास पतवार से भर जाते है। मौसम-परिवर्तन होने पर ये लगभग समाप्त प्राय: हो जाते हैं। इसी प्रकार के समष्टि परिवर्तन सामान्यत: उन कीट प्राणियों में पाये जाते हैं जिनका जीवनचक्र छोटा होता है। (ii) इसी प्रकार अलवणीय जल (Fresh water) में प्लवकों का खिलना(plankton ploo) भी एक दर्शनीय मौसमी परिवर्तन का उदाहरण है।

2. वार्षिक उतार-चढ़ाव (Annual fluctuations) : वार्षिक उतार-चढावों को दो प्रकार की श्रेणियों में रखा जाता है।

(i) अन्तर्निहित कारकों (Instrinsic factors) द्वारा उत्पन्न उतार-चढ़ाव : इस प्रकार के परिवर्तन जैविक पर्यावरण के वार्षिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। ये बहुधा अनियमित होते हैं।

(ii) बाहरीकारी कारकों (Extrinsic factors) द्वारा उत्पन्न उतार-चढ़ाव : इस प्रकार के परिवर्तन' जैविक पर्यावरण अर्थात समष्टि गतिशीलता (Population dynamics) के वार्षिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। ये प्रकृति में चक्रीय या नियमित होते हैं।

7.2.2.7 आयु वितरण (Age distribution)

किसी भी जनसंख्या में सदस्य समान आयु के नहीं होते हैं। कुछ बाल्यकाल में, कुछ युवावस्था में, तथा कुछ वृद्वावस्था में होते हैं। अलग-अलग जीवसंख्या में विभिन्न आयु वर्ग के सदस्यों की संख्या या अनुपात अलग-अलग होते है। अत: किसी जीवसंख्या में विभिन्न आयु वर्ग के सदस्यों की तुलनात्मक प्रचुरता को आयु वितरण कहते हैं। आयु वितरण व्यवस्था अनेक कारणों पर निर्भर करती है। इसका सीधा प्रभाव जन्म और मृत्यु दर पर पड़ता है। साधारणत: तेज गति से बढ़ती हुई जीवसंख्या में युवा स:दस्यों की प्रचुरता होती है। इनके अतिरिक्त किसी पतनशील जीवसंख्या में वृद्वावस्था के सदस्यो का बाहुल्य रहता है। प्राणियों की आयु के अनुसार जन्म और मृत्यु दर में उतार-चढाव होता है। जन्म और मृत्यु जीवसंख्या की जन्म और मृत्यु प्रक्रिया भी प्रभावित होती है। जिन जातियों में उच्च प्रजनन गति पुन में प्रारम्भिक अवस्था में मृत्यु दर भी अधिक होगी। जिन जातियों में प्रजनन गति न्यून होगी उनमें प्राथमिक व्यवस्था में मृत्यु दर भी कम होगी। परन्तु जिनकी जीवसंख्या स्थिर हो जाती है उनमें जन्मदर लगभग मृत्युदर बराबर होती है और आयु वितरण भी लगभग स्थिर रहता है। जीवसंख्या आयु वितरण व्यवस्था को स्पष्ट कर लिए बोडनीमर (Bodeneimer , 1938) ने आयु को तीन श्रेणियों में वितरित किया है-

1. प्रजनन-पूर्व आयु (Pre-repdocctive age)

2. वास्तविक प्रजनन आयु (Actual-reproductive age)

3. प्रजनन-पश्चात आयु (Post-repdocutive age)

विभिन्न जन्तुओं में उपर्युक्त तीनों आयु की अवधि अलग-अलग होती है। परन्तु मानव जाति में यह तीनों प्रजनन आयु लगभग समान अवधि की होती है।

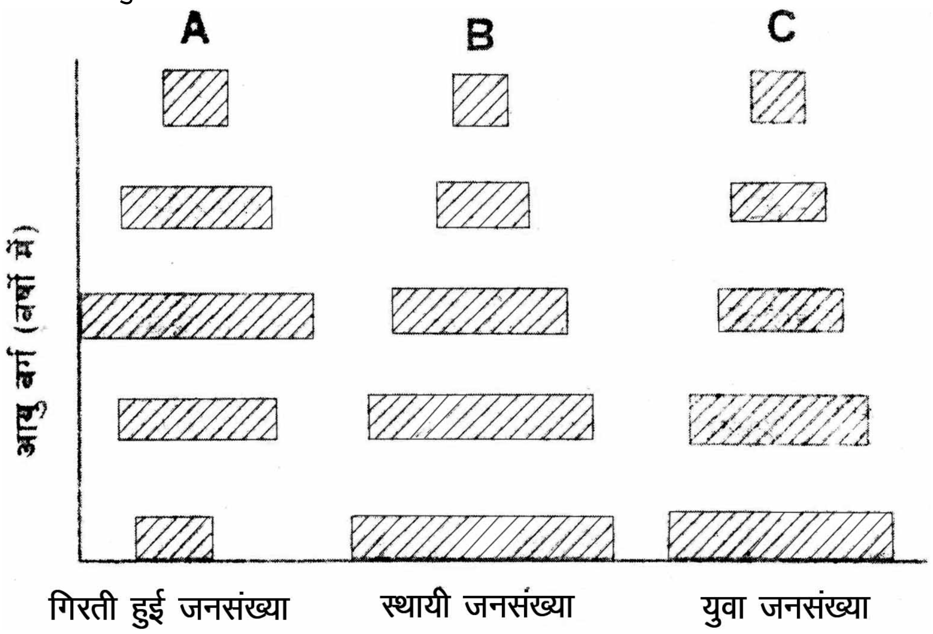

चित्र 7.2 आयु वितरण

7.2.2.8 आयु स्तूप या पिरामिड (Age pyramid)

किसी भी जीवसंख्या की आयु वितरण व्यवस्था को बहुभुजी पिरामिड (polygonal pyramid) की सहायता से दर्शाया जाता है। इस पिरामिड की आधार रेखा द्वारा सम्बन्धित जाति के युवा सदस्यों या प्रारम्भिक अवस्थाओं की संख्या अथवा प्रतिशत दर्शाया जाता है। आधार रेखा के ऊपर लम्बवत् या बहुकोणीय रेखाओं से बने पिरामिड आयु दर्शाते हैं। पिरामिड 'A' की आधार रेखा सबसे अधिक बडी है। इस पिरामिड में सबसे अधिक प्रारम्भिक / युवा अवस्थाओं की संख्या दर्शायी गई है। पिरामिड 'B' में साधारण और पिरामिड 'C' में में युवा अवस्थाओं का प्रतिशत सबसे कम प्रतीत होता है।

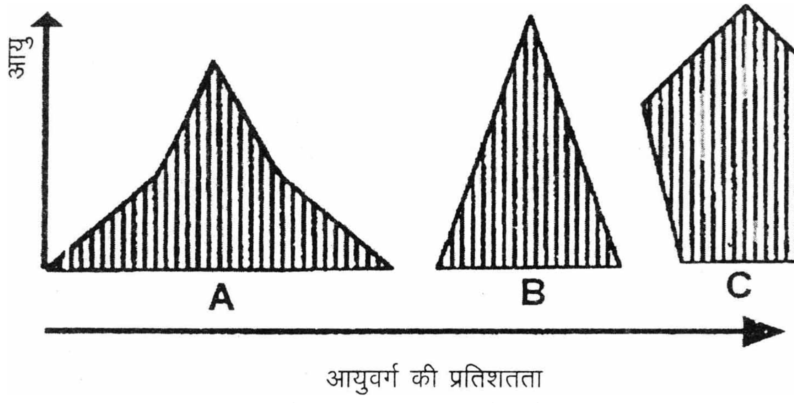

चित्र 7.3 आयु के पिरामिड

7.2.2.9 जैविक क्षमता (Biotic potential)

माल्थ्स का जनसंख्या और उनके जीवन निर्वाह के बारे में कथन किसी भी विशिष्ट जीव की सम्भावित जनन-दर को उसका “जैव-विभव” (Biotic potential) कहते हैं। यह विभव पूरी तरह कभी नहीं सिद्व होता, क्योंकि इसमे परजीवियों, परभक्षियों, दुर्घटनाओं और आहार के न मिलने की अडचने आ जाती है। मृत्यु के इन तमाम कारण पर्यावरण-सम्बन्धी प्रतिरोध (environmental related resistance) के अन्तर्गत आता हैं। प्रकृति में किसी भी जीवसंख्या की सफलता उसकी जैविक क्षमता पर निर्भर करती है। जैविक क्षमता का अनुमान किसी भी जीव की प्रजाति की उच्चतम सम्भावित जन्दर या उच्चतम प्रजनन गति से लगाया जा सकता है। सम्भावित जन्मदर और सम्भावित मृत्युदर के उपरान्त षेष जीवित रहने योग्य सन्तान की संख्या या जीवसंख्या वृद्वि को. ही जैविक समता कहते हैं। जैविक क्षमता स्पष्टत: वातावरण कारकों की सर्वोत्तम परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इन्हीं सर्वोत्तम परिस्थितियों में सम्भावित अधिकतम जन्मदर और न्यूनतम मृत्युदर या सम्भावित मृत्युदर सम्भव है। यदि वातावरण कारक पूर्णरूप से उपयुक्त नहीं होंगे तब सम्भावित जन्मदर घट सकती है अथवा सम्भावित मृत्युदर बढ़ सकती है। ऐसी स्थिति में जैविक क्षमता पर विपरीत प्रभाव पडता है। अत: जैविक क्षमता किसी जन्तु प्रजाति की उस आन्तरिक और स्वाभाविक शक्ति को उसकी जैविक क्षमता कहते हैं। इसके माध्यम से वह सर्वोत्तम पारिस्थितिकी कारकों की उपस्थिति में अपनी सम्पूर्ण प्रजनन क्षमता का उपयोग करके, सम्भावित मृत्युदर के उपरान्त षेष जीवित रहने योग्य सन्तान की संख्या से जीवसंख्या वृद्धि करती है। किसी जीवसंख्या के वास्तविक संख्या, वृद्धि वातावरण प्रतिरोध, और जैविक क्षमता के सन्तुलन पर निर्भर करती है। किसी असीमित वातावरण में उच्चतम वृद्धि गति को जैविक क्षमता से दर्शाया जा सकता है।

अर्थात् $\Delta N/\Delta t = rN$ या $r = \Delta N/\Delta tN$

$r = 5/\text{month}$

$N = 10$

$5 \times 100 = \Delta N/\Delta t$

अर्थात् जैविक विभव = 500 प्राणी

जहाँ N = संख्या

t = समय

r = बढ़ने की दर

Δ = छोटा या कम परिवर्तन

जनन क्षमता व उत्पादकता (fertility and fecundity)

“व्यक्ति अथवा समष्टि में सन्तानोत्पादन की सामर्थ्य” का अर्थ उत्पादकता से लिया जाता है जबकि जनन-क्षमता का वास्तविक अर्थ जनन क्रिया से है। उत्पादकता एक रूप से एक सैद्वान्तिक अभिधारण (theoretical concept) है। जो मुख्यत: विभिन्न प्रजातियों या स्पीशीज की उत्पादकता, कार्यिकीय कारकों (physiological factors) पर निर्भर करती है। जैसे लैंगिक परिपक्वता (sexual maturity) के प्राप्त होने में लगने वाले समय पर, अण्डें और शुक्राणु के उत्पादन पर (oogenesis and spermatogenesis) पर निषेचन (fertilization) के समय की परिस्थितियों पर, भ्रूण-परिवर्धन की

गति (speed of embryonic) पर तथा ऐसे ही अन्य और कारकों पर। इसके विपरीत, जनन-क्षमता पारिस्थितिकीय कारकों पर अधिक निर्भर होती है- यह किसी विशिष्ट पर्यावरण में जनन-शक्ति की अभिव्यक्ति होती है।

7.2.2.10 जीवसंख्या या समष्टि अनुक्रियाएँ (population interaction or biotic factors interaction)

विभिन्न जीवसंख्याओ में आपसी अनुक्रियाओं का होना साधारण लक्षण है। इनका जीव समष्टि की वृद्धि पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। कुछ अनुक्रियाएँ जीवसंख्या की धनात्मक वृद्धि में सहायक होती है। परन्तु अन्य नकारात्मक वृद्धि या मृत्युकर बढ़ाने के लिए उत्तरदायी होती है। इन दोनों के विपरीत तटस्थ अनुक्रिया भी है, जिनका जीवसंख्या वृद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: समस्त अनुक्रियाओं को तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है।

(अ) **तटस्थ अनुक्रियाएँ (Neutralism) :** इनका जीवसंख्या घनत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ब) **धनात्मक अनुक्रियाएँ (Positive Interactions) :** ये अनुक्रियाएँ जीवसंख्या वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। इनके माध्यम से किसी भी जन्तु की उन्नति सम्भव होती है। ऐसे क्रियाओं में विभिन्न जीवसंख्या एक-दूसरे से सहयोग करके उपयुक्त सुविधाओं का आदान-प्रदान करती हैं, जिनसे दोनों को लाभ पहुँचता है। परन्तु कभी-कभी एक जीवसंख्या को लाभ पहुँचता है, परन्तु दूसरी को न तो लाभ न हानि होती है। धनात्मक अनुक्रियाओं के प्रकार :-

(i) **मूल सहयोग या सहजीवन (Proto-cooperation or mutualism) :** इस प्रकार के सहयोग में दोनों प्रजाति एक-दूसरे को लाभकारी सहयोग देती है। उदाहरण:-

(ii) **सहभोजिता (Commensalism) :** इस प्रक्रिया में एक प्रजाति को लाभ पहुँचता है, परन्तु दूसरी प्रजाति को न तो लाभ पहुँचता है और न हानि। उदाहरण:-

(स) **नकारात्मक अनुक्रियाएँ (Negative interactions) :** अनेक ऐसी अनुक्रियाएँ है जो एक प्रजाति के लिए लाभप्रद हो सकती हैं, . परन्तु दूसरी जीवसंख्या पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। जैसे -

(i) **परभक्षण (Predation) :** इस अनुक्रिया में एक शक्तिशाली प्रजाति दूसरी प्रजाति के सदस्यों का शिकार करके उसकी जीवसंख्या वृद्‌वि पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। जैसे बिल्लियाँ निरन्तर चूहों का परभक्षण करती हैं।

(ii) **परजीवन (Parasitism) :** परजीवी अपने पोषक का शोषण करके उसके विकास और वृद्धि में बाधा उत्पन्न करने के अतिरिक्त मृत्यु दर भी बढ़ा सकते हैं।

(iii) **स्पर्द्धा (Competition) :** विभिन्न जीवसंख्या में अनेकों प्राकृतिक सुविधाओं के लिए उस समय भारी संघर्ष छिड़ जाता है, जब उन सब की पूर्ति समान सुविधाओं पर आधारित हो। यह स्पर्द्धा मुख्यत: भोजन, निवास स्थल के लिए संघर्ष उत्पन्न करके जीवसंख्या वद्धि दर पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

7.2.2.11 जीवसंख्या या समष्टि-आकार का नियमन (Regulation of population size)

जीव-जन्तुओं में संख्या वृद्धि का स्वाभाविक गुण अनिश्चित और असीमित नहीं है। प्रत्येक जीवसंख्या संवहन क्षमता (carrying capacity) तक ही बढ़ोत्तरी कर सकती है। अत: संवहन क्षमता स्तर रेखा छूने के उपरान्त जीवसंख्या घनत्व इस रेखा के आस-पास, ऊपर-नीचे दोलन करता रहता हैं। परन्तु अधिक वृद्धि की निरन्तरता समाप्त हो जाती है। यह प्राकृतिक प्रक्रिया जीवसंख्या को स्थिरता प्रदान करती है। कुछ जन्तु प्रजातियों मे अति जीवन-संख्या की स्थित (over-population) में प्रजनन प्रक्रिया स्वत: स्थगित अथवा टल जाती है और कुछ में आत्मघाती प्रवृत्ति पनपने लगती है जैसे :- इस प्रकार की जीवसंख्या वृद्धि को स्थिरता प्रदान की गई है। परन्तु संक्षेप में जीवसंख्या नियंत्रण के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारकों को दो श्रेणियों में रखा जाता है-

(अ) बाहरी अर्थात जीवसख्या घनत्व के स्वतंत्र कारक (Extrinsic or population density independent factors)

(ब) आन्तरिक अर्थात जीवसंख्या घनत्व पर निर्भर कारक (Intrinsic or Density independent factors)

(अ) **बाहरी कारक :** इस समूह के कारक जीवसंख्या घनत्व से प्रभावित नहीं होते हैं। बाहरी कारक स्वत: ही जीवसंख्या घटाने का काम करते हैं। भोजन, आवास, ताप, जलवायु आदि वातारण कारक कभी भी विनाशकारी विपरीत प्रभाव के रूप में किसी भी छोटी अथवा बडी जीवसंख्या में समान रूप में मृत्यु दर बढ़ा कर संख्या वृद्धि रोक देते हैं। बाहरी कारकों के उतार-चढ़ाव, नकारात्मक और धनात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। सवंहन क्षमताधारी, अल्प अथवा अति जीवसंख्या पर नकारात्मक प्रभाव से संख्या प्रचुरता घटती है। परन्तु अल्प जीवसंख्या पर धनात्मक प्रभाव से संख्या प्रचुरता बढकर संवहन तक वृद्धि कर सकती है।

(ब) **आन्तरिक कारक :** उन्हें अन्त:जातीय एवं अन्तरजातीय अनुक्रिया कारक (Intraspecific and inter-specific intra-action-factors) कहा जाता हैं। किसी भी प्रजाति के विभिन्न सदस्य जीवसंख्या के दबाव के कारण विभिन्न साधनों के लिए एक-दूसरे से स्पर्द्धात्मक संघर्ष करते हैं। यही स्पर्द्धात्मक अनुक्रियाएँ (competitive intreactions) जीवसंख्या नियन्त्रक कारका (regulation factors) के रूप में कार्य करती है।

परिणामस्वरूप संवहन क्षमता स्तर रेखा पर आकर जीवसंख्या वृद्धि लगभग स्थिर हो जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य जातियों के जीवधारी भी पराजीवन भक्षण आदि नकारात्मक अनुक्रियाओं के माध्यम से जीवसंख्या बढ़ोत्तरी पर नियन्त्रण करते हैं। कभी-कभी अति जीवसंख्या वृद्धि रोकने के लिए कुछ परजीवी अथवा सूक्ष्मजीवी महामारियाँ फैला देते हैं। अति जीवसंख्या (over-population) से उत्पन्न दबाव में अन्त:जातीय स्पर्द्धा छिड जाती है। यह स्पर्द्धा साधारत: भोजन, आवास-स्थल अथवा प्रजनन सुविधाओ के लिए होती है। परिणामस्वरूप शक्तिशाली सदस्य अपनी ही प्रजाति के कमजोर सदस्यों को मारकर जीवसंख्या घटा देते हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रजातियों के सदस्य एक-दूसरे की वृद्धि पर नियन्त्रण करते हैं। उदाहरण के लिए जब किसी वन प्रदेश में शाकाहारी जीवसंख्याएँ अतिवृद्धि करती हैं, तब अनेकों माँसाहारी परभक्षी स्वत: इन वनों में प्रविष्ट होने लगते हैं और परभक्षण की तीवृता से षाकाहारियों की संख्या घटती जाती है। परभक्षक (Predator) और परभक्षित (Prey) दोनों प्रजातियों

का जीवसंख्या घनत्व एक दूसरे पर निर्भर करता है और स्वत: नियन्त्रित है। इसी प्रकार जहाँ पोषक बढ़ते हैं, वहीं पर परजीवी भी अपनी बढ़ोत्तरी करके षोषण और बीमारियों से पोषकों की मृत्युदर बढाकर संख्या वृद्धि को रोक देते हैं। पोषकों की संख्या घटने पर परजीवी जीवसंख्या भी स्वत: घट जाती है। लगभग यही सम्बन्ध बीमारी उत्पन्न करने वाले सक्ष्मजीवी और उनके पोषकों में है। इस प्रकार की लगभग सभी नकारात्मक अन्तरजातीय अनुक्रियाएँ नियन्त्रण और सन्तुलन स्थापित करती है।

7.2.2.12 समष्टि वितरश छितराव परिक्षेपण प्रकीर्णन (Population dispersal)

प्रत्येक जीवसंख्या में अधिक से अधिक भौगोलिक क्षेत्र पर विकसित होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है। इसी स्वाभाविक छितराव या फैलाव को जीवसंख्या प्रसार कहते हैं। इसके तीन मुख्य प्रतिरूप होते हैं-

(i) यादृच्छिक (Random)

(ii) एकसमान (Uniform)

(iii) संपुजित (Clumped)

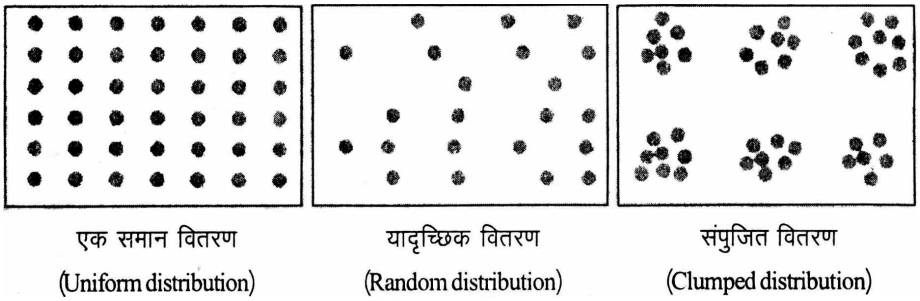

चित्र 7.4 समष्टि में प्राणि वितरण के प्रतिरूप

जहाँ वातावरण एकसमान हो लेकिन साथ ही और कारकों की वजह से प्राणियों में समूह बनाने की प्रवृत्ति न हो ऐसी समष्टि यादृच्छित वितरण को प्रतिरूपित करती है। जिस समष्टि के सदस्यों के बीच प्रतियोगिता अत्यधिक हो, वहाँ एकसमान वितरण (Uniform) वितरण होता है। यदि जीवों की प्रवृत्ति समूह बनाकर जीवनयापन करते की हो या उनके लिए बहु त से ऐसे कारक हों जो उन्हें छोटे या बडे पुजों में एकत्र होने को मजबूर करें तो ऐसे आन्तरिक वितरण को संपुजित परिक्षेपण कहते हैं।

7.2.3.1 जीवसंख्या प्रसार अथवा समष्टि प्रसार (Population propagation)

मुख्य रूप से भोजन की कमी, अत्यधिक जीवसंख्या घनत्व, बाढ़, सूखा, वातावरण कारकों (जैसे -ताप, प्रकाश, वायु-वेग) में स्थानीय (local) या क्षेत्रीय (regional) परिवर्तन (fluctuations) अथवा प्रजनन और वंशानुगत (geneticd) लक्षणों के आदान-प्रदान आदि कारणों से जीवसंख्या (population) प्रसार होता है। इसका प्रभाव जन्मदर और मृत्युदर पर पड़ने से जीवसंख्या या समष्टि प्रसार के फलस्वरूप जीव, नई बस्तियाँ बनाकर मूल समष्टि से अलग हो जाते है। अत: जीवसंख्या प्रसार या समष्टि प्रकीर्णन, समष्टि परिक्षेपण से भिन्न है। समष्टि परिक्षेपण में होने वाले विभिन्न प्रतिरूप बाहरी परिवर्तनों व संरचनाओं से जुड़े हैं। समष्टि प्रसार को सम्पन्न करने के लिए निम्न प्रक्रियाएँ आवश्यक है।

(अ) उत्प्रवास अथवा बहिर्प्रवास (Emigration) : जब किसी स्थान पर जीवसंख्या घनत्व, उपलब्ध साधनों के अनुपात में अत्यधिक हो जाता है, तब स्पर्द्धात्मक स्थिति से बचने के लिए कुछ

सदस्य मूल स्थान छोड कर नये निवास स्थान पर जाकर नई बस्ती बनाकर रहने लगते हैं। मूल स्थान छोड कर अन्य किसी स्थान पर स्थापित होने की इस क्रिया को उत्पवास कहते हैं। जैसे :-

(ब) **अप्रवास अथवा अन्तःप्रवास (Imigration) :** उत्प्रवास की ठीक वितरीत क्रिया अप्रवास कहलाती हैं। जब किसी अन्य जगह से विस्थापित जन्तु किसी समष्टि में सम्मिलित होकर वहाँ के स्थाइ सदस्य बन जाते है, तब उन्हें अप्रवासी और इस प्रक्रिया को अप्रवास कहते हैं।

(स) **प्रवास (Migration) :** अनेक जीव-जन्तुओं में कुछ निश्चित समय पर प्रत्येक वर्ष सम्पूर्ण समष्टि एक साथ मूल स्थान से किसी अन्य स्थान के लिए चली जाती है। कुछ निश्चित अवधि के बाद पुन: अपने मूल निवास पर आ जाती है। कभी-कभी सम्पूर्ण समष्टि का एक बडा भाग ही यह प्रक्रिया अपनाता है। इस प्रकार स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रवास कहते हैं। जैसे:-

7.2.3.2 स्वाभाविक संख्या बढ़ोतरी क्षमता (Innate capacity for increase in number)

जीवसंख्या घनत्व पर मृत्यु दर और जन्मदर का प्रभाव पडता है। इन्हे जीवन सारणी व वक्र रेखा द्वारा बताया जा सकता है। इस प्रकार से मृत्युदर का अनुमान तो लगाया जा सकता है। परन्तु इनको देखने पर जीवसंख्या प्रजनन गति का कोई ज्ञान नहीं मिल सकता है। यह सत्य है कि जीवसंख्या घनत्व का विस्तृत ज्ञान प्रजनन गति के अभाव में अपूर्ण रह जाता है। अत: जीवसंख्या घनत्व के विस्तृत ऑकडे प्राप्त करने के लिए मृत्युदर और प्रजनन को संयुक्त रूप से प्रदर्शित करते हैं। प्रजनन और मृत्युदर के संयुक्त ऑकडों से वास्तविक संख्या बढ़ोत्तरी का पता लग सकता है। इस प्रकार प्रजनन और मृत्युदर से प्राप्त संख्या, प्रजाति विशेष की स्वाभाविक संख्या बढ़ोत्तरी क्षमता कहलाती है। स्वाभाविक संख्या बढ़ोत्तरी क्षमता की परिभाषा इन षब्दों में की जा सकती है। “प्रजाति विशेष की विभिन्न कारकों जैसे ताप, आर्द्रता, भोजन आदि की परम आदर्श या सर्वोत्तम परिस्थितियों में अन्य सभी जीवों के प्रभाव से मुक्त रखने पर जो उच्चतम संख्या बढोत्तरी प्राप्त होती है, वह उसकी स्वाभाविक संख्या बढ़ोत्तरी क्षमता कहलाती है”। यह क्षमता आदर्श या सर्वोत्तम अनुकूल वातावरण कारकों की उपस्थिति में ही सम्भव है। इस क्षमता पर अनेक कारकों जैसे आकार, प्रजनन क्षमता, आयु जीवनकाल, और विकास गति आदि का प्रभाव पड़ता है। इन कारकों से प्रभाव को जन्म और मृत्युदर के रूप में दिखाया जाता है। यदि जन्मदर मृत्युदर से अधिक है तब जीवसंख्या वृद्धि होती है, परन्तु मृत्युदर अधिक होने पर शनै: शनै: जीवसंख्या घटकर समाप्त हो सकती है। स्वाभाविक संख्या बढ़ोत्तरी या जीवसंख्या वृद्धि को rN से दर्शाया जाता है।

7.2.3.3 जीवसंख्या का वृद्धि आकार (Population growth form)

जीवसंख्या के बढ़ने के मुख्य प्रतिरूप जीवसंख्या वृद्धि आकार है। जीवसंख्या वृद्धि आकार के दो मूल प्रतिरूप

(i) ‘J’ रूप का वृद्धि आकार, एवं

(ii) ‘D’ रूप या सिगमॉइड (Sigmoid) वृद्धि आकार

(i) ‘J’ प्रतिरूप में जीवसंख्या का घनत्व तीव्रता से चरघातांकी ढंग (exponential fashion) से बढता है तथा अचानक वातावरणीय प्रतिरोध के कारण एकदम रूक जाता है। ‘J’ आकार

का वक्र यह दर्शाता है कि जैसे ही जीवसंख्या एसिम्पटोट (asymptote, जीवसंख्या का उच्चतम आकार) पर पहुँचती है तो एक परिमितकारी प्रभाव से जैसे मौसम, जगह आदि जीवसंख्या को बढ़ने से रोक देता है।

अर्थात $\frac{\Delta N}{\Delta t} = rN$ या $r = \frac{\Delta N}{\Delta t N}$

जहाँ N= संख्या

t= समय

r= बढ़ने की द

Δ = छोटा या कम परिवर्तन

(ii) इसी प्रकार का जीवसंख्या का वृद्धि आकार 'S' shped या Sigmoid वृद्धि का आकार है, जिसमें बढने की दर कम होती है, फिर बढ़ती है जब तक कि उच्चतम सीमा नहीं पहुँच जाती है। जैसे-जैसे घनत्व बढता जाता है, दर लगातार कम होती जाती है। जब जीवसंख्या वहन क्षमता (carrying capacity) पर पहुँचती है तो वक्र चपटा (Flatten) हो जाता है। 'S' shaped या सिगमॉइड वृद्धि आकार निम्नांकित समीकरण से दर्शाया जा सकता है-

$$\frac{DN}{Dt} = rt\frac{(K-N}{K}$$

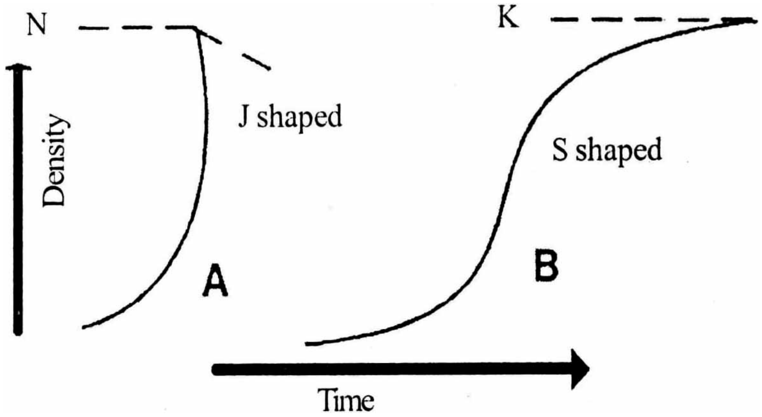

चित्र 7.5 जीवसंख्या वृद्धि आकार

जहाँ से वातावरणीय आवस्था में जीवसंख्या का उच्चतम सम्भव आकार है। इसे ऊपरी एसिम्पटोट (upper asymptote) या वहन क्षमता (carrying capacity) भी कहा जा सकता है। समीकरण (equation) केवल यह बतलाता है कि जीवसंख्या की वृद्धि दर जीवसंख्या की विभव-वृद्धि (potential increase) के बराबर होती है। सिगमॉइड वक्र में वृद्धि ढंग निम्न प्रकार से होता है। अनुकूल परिस्थितियों व क्षेत्र में व्याप्त समष्टि सर्वप्रथम धीरे-धीरे वृद्धि करती है इसे धनात्मक त्वरण प्रावस्था (positive acceleration phase) कहते हैं। तदुपरान्त बहुत ही जैसी से वृद्धि होती है, इसे लॉगरिथमिक प्रावस्था (logarithmic phase) कहते हैं। अन्त में यह वृद्धि धीमी हो जाती है जिसका कारण पर्यावरणीय प्रतिरोधकता (environmental resistance) का बढ़ना होता है। इसे ऋणात्मक त्वरण प्रावस्था (negative acceleration phase) कहते हैं। यह प्रावस्था तब तक चलती है जब

तक कि समष्टि की वृद्धि साम्यवस्था को प्राप्त नहीं कर लेती। वृद्धि वक्र की ऊपरी सतह का स्तर, जिसके परे कोई मुख्य वृद्धि नहीं होती है, उसे ऊपरी ऐसिम्पटोट कहते हैं। इसे संवहन क्षमता (carrying capacity) भी कहते हैं। इस प्रकार का वक्र मुख्यत खमीर (yeast) की कोशिकाओं व मानव समष्टि में पाया जाता है।

7.2.3.4 जनांकिकी (Demography)

इसमें मानव जनसंख्या में वृद्धि की प्रवृत्तियों (Tendencies) का विश्लेषण करना और भविष्य में होने वाली बातों का पूर्वानुमान जैसी विधियाँ शामिल हैं। मानवीय आचरण, चाहे वह व्यक्ति का हो अथवा वर्ग का, अनेक कारकों द्वारा नियन्त्रित रहता है, जो जीव-वैज्ञानिक सिद्धान्तों के शब्दों के आधार पर आसानी से नहीं जाने जा सकते। फिर भी, जीव-विज्ञान का सामान्य रूप में जीवधारियों का संख्या-वृद्वि एंव संख्या-सन्तुलन के गति विज्ञान (dynamics) से काफी सम्बन्ध रहता है। यद्यपि स्वयं जीव-विज्ञान से मनुष्य के विशिष्ट उदाहरण का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता, तथापि. इसमें कोई शक नहीं कि उसमें भी जीव-विज्ञानिक सिद्धान्त (biological) ही अन्तर्निहित है। चूँकि जनसंख्या के अध्ययन में जीव-वैज्ञानिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों का एक निकट सम्बन्ध है। इसलिए जनांकिकी एक ऐसे महत्वपूर्ण सेतु के रूप में है जो विज्ञान के इन दो क्षेत्रों को जोड़े हुये है।

7.3 बोध प्रश्न

नोट : (i) प्रत्येक प्रश्न में छोडी गई जगह का इस्तेमाल अपने उत्तर लिखने के लिए करें।

(ii) अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाए।

I. रिक्त स्थान भरो :

1. स्थान परिवर्तन की किया को .... कहते हैं।
2. किसी भी जीवसंख्या की आयु वितरण व्यवस्था को .... की सहायता से दर्शाया जाता हैं।
3. वहन क्षमता पर जनसंख्या वृद्धि की दर .... होती हैं।

II. बहुविकल्पी प्रश्न : निम्न में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखें :

4. भूमि पर रहने वाले जीवों का जनसंख्या घनत्व मापा जाता है, व्यक्ति प्रति-

   (अ) m (ब) m^2 (स) m^3 (द) m^4
5. जनसंख्या में जैवीय विभव बढ़ता है जब -

   (अ) अनुकूल परिरिथतियाँ हों (ब) दी गई परिस्थितियाँ हों

   (स) प्राकृतिक परिस्थितियाँ हों (द) जलवायुवीय परिरिथतियाँ हों
6. एक ही जाति (स्पीशीज) के सदस्यों में विभिन्न प्रारूपों का पाया जाना कहलाता है -

   (अ) विभिन्नता (ब) बहुजनता (स) बहुरूपता (द) निओटेनी
7. विकसित देशों में जन्म दर है-

(अ) 10% प्रतिवर्ष (ब) 20% प्रतिवर्ष (स) 3% प्रतिवर्ष (द) 40% प्रतिवर्ष

8. भारत में लिंग अनुपात है -

(अ) 550:1000 (ब) 750:1000 (स) 930:1000 (द) 1000:1000

III. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त में उत्तर दो

9. "जैव-विभव" किसे कहते हैं '

....

....

10. जीवसंख्या प्रसार क्या होता हैं?

....

....

11. जीवसंख्या वृद्धि आकार के दो मूल प्रतिरूप बताइए।

....

....

7.4 सारांश (Summary)

किसी दिये गये विशिष्ट स्थान और समय पर समान आनुवांशिकी वाले जन्तु समूह के सदस्यों की संख्या के योग को समष्टि कहते हैं, इसमें प्रजनन के माध्यम से वंशानुगत लक्षणों के आदान-प्रदान से प्रजाति की निरन्तरता बनाये रखने की क्षमता होती है। यदि किसी निर्दिष्ट स्थान पर मात्र एक जन्तु प्रजाति पाई जाती है, तब जनसंख्या एक प्रजातीय जीवसंख्या कहलाती है। परन्तु कभी-कभी एक साथ अनेकों प्रजातियाँ एक ही स्थान पर रहती है, तब सम्मिलित रूप में इन्हें बहु प्रजातीय जीवसंख्या कहते हैं। समष्टि के मुख्य लक्षण समष्टि घनत्व, समष्टि वृद्धि दर या जन्म दर मृत्युद दर , समष्टि दोलन, जैविक क्षमता, आयु पिरामिड, समष्टि आकार नियमन, समष्टि प्रसार या प्रकीर्णन होते हैं। समष्टि या जीवसंख्या घनत्व दो प्रकार का होता है। अपरिरकृत या अशोधित या कच्चा घनत्व। पारिस्थितिकीय घनत्व समष्टि या जीवसंख्या घनत्व का मापन कई तरीकों से किया जाता हैं। जीवसंख्या का बढ़ना मुख्य रूप से जन्मदर द्वारा प्रभावित होता है। मृत्युदर का समष्टि या जीवसंख्या के बढ़ने पर प्रमुख प्रभाव पड़ता है। मृत्युदर दो प्रकार से दर्शायी जा सकती है- एक तो मरने की सम्भावना दर (probability of dying) तथा दूसरी मृत्युदर (death rate) पर। जीवसंख्या में आयु अनुपात मुख्य रूप से जीवसंख्या की कच्छी जन्मदर एवं मृत्युदर से प्रभावित होती है। समष्टि को तीन पारिस्थितिकीय कालो में विभाजित किया जा सकता है- पूर्व-जनन काल, जनन काल व पश्च-जनन काल। साधारत: तेज गति से बढ़ती हुई जीवसंख्या में युवा सदस्यों की अधिक प्रचुरता होती है। जबकि किसी पतनशील जीवसंख्या में वृद्धावस्था का बाहुल्य या प्रचुरता रहती है। किसी भी विशिष्ट जीव की सम्भावित जनन-दर को उसका "जैव-विभव" (biotic potential) कहते हैं। सम्भावित मृत्युदर के उपरान्त-शेष जीवित रहने योग्य सज्जन की संख्या या जीव-संख्या वृद्धि को ही जैविक क्षमता कहते हैं। उत्पादकता का अर्थ "व्यष्टि अथवा सृष्टि में सन्तानोत्पादन की सामर्थ्य" से लिया जाता है, जबकि जनन-क्षमता का वास्तविक अर्थ जनन क्रिया से है। प्रत्येक जीवसंख्या संवहन क्षमता तक ही बढ़ोतरी कर सकती है। प्रत्येक जीवसंख्या

में अधिक रो अधिक भौगोलिक क्षेत्र पर विकसित होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है। इस स्वाभाविक छितराव या फैलाव को जीवसंख्या प्रसार कहते हैं। अजैविक और जैविक कारक एवं अनुक्रियाओं के परिणामस्वरूप, जीवसंख्या प्रसार की आवश्यकता उत्पन्न होती है। समष्टि प्रसार को सम्पन्न करने के लिए उत्प्रवास अथवा बहिर्प्रवास, अप्रवास अथवा अन्त: प्रयास आदि प्रक्रियाएँ आवश्यक हैं। जीवसंख्या वृद्धि आकार के दो मूल प्रतिरूप होते हैं- 'D' रूप का वृद्धि आकार तथा -'S' रूप का सिगमॉइड।

7.5 शब्दावली (Glossary)

1. **समष्टि पारिस्थितिकी (Population ecology) :** समष्टि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत एक जाति या वंश की समष्टि की वातावरण से अन्तःक्रिया का अध्ययन किया जाता है।
2. **जनसंख्या या समष्टि घनत्व (Population density) :** किसी भी इकाई क्षेत्र में प्रजाति विशेष के सदस्यों की संख्या घनत्व कहलाती है-
3. **जन्मदर (Natality) :** पारिस्थितिकी विज्ञान मे जन्म-दर समष्टि की वृद्धि क्षमता को दर्शाती ह। जीवसंख्या का बढ़ता मुख्य रूप से जन्म-दर द्वारा प्रभावित होता है।
4. **मृत्यु दर (Death-rate-moratlity) :** पॉपुलेशन में प्रत्येक अवधि काल में मरने वाले जीवों को मृत्यु दर कहते हैं।
5. **आयु स्तूप या पिरामिड (Age pyramid) :** किसी भी जीवसंख्या की आयु वितरण व्यवस्था को बहुभुजी पिरामिड (polygonal pyramid) की सहायता से दर्शाया जाता है।
6. **जैविक क्षमता (Biotic potential) :** किसी जन्तु प्रजाति की उस आन्तरिक और स्वाभाविक पक्ति को उसकी जैविक क्षमता कहतें, जिसके माध्यम से वह सर्वोत्तम पारिस्थितिकी कारकों की उपस्थिति में अपनी सम्पूर्ण प्रजनन क्षमता का उपयोग करके सम्भावित मृत्युदर के उपरान्त षेष जीवित रहने योग्य सन्तान की संख्या से जीवसंख्या वृद्धि करती है।
7. **अप्रवास अथवा बहिर्प्रवास (Emigration) :** मूल स्थान छोड कर अन्य किसी स्थान पर स्थापित होने की क्रिया को उत्प्रवास कहते हैं।
8. **अप्रवास अथवा अन्तःप्रवास (Imigration) :** जब किसी अन्य जगह से विस्थापित जन्तु किसी समष्टि में सम्मिलित होकर वहाँ के स्थाई सदस्य बन जाते है, तब उन्हें अप्रवासी और इस प्रक्रिया को अप्रवास कहते हैं।
9. **प्रवास (Migrastion) :** अनेक जीव-जन्तुओं में कुछ निश्चित समय पर प्रत्येक वर्ष सम्पूर्ण समष्टि एक साथ मूल स्थान से किसी अन्य स्थान के लिए चली जाती है और कुछ निश्चित अवधि के बाद पुन: अपने मूल निवास पर आ जाती है।

7.6 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी - डॉ. ए. एल. भाटिया
2. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी. डी. शर्मा
3. पारिरिथतिकी एवं पर्यावरणीय जैविकी - डॉ. धीरेन्द्र देवर्षि

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.	प्रवास	2.	आयु स्तूप	3.	शून्य
4.	ब	5.	अ	6.	रन
7.	ब	8.	स		

9. किसी भी विशिष्ट जीव की सम्भावित जनन-दर को उसका “जैव-विभव’ (Biotic potential) कहते हैं
10. प्रत्येक जीवसंख्या में अधिक से अधिक भौगोलिक क्षेत्र पर विकसित होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई है। इसी स्वाभाविक छितराव या फैलाव को जीवसंख्या प्रसार कहते हैं।
11. जीवसंख्या वृद्धि आकार के दो मूल प्रतिरूप हे-
    1. ‘J’ रूप का वृद्धि आकार
    2. ‘S’ रूप का सिगमॉइड

7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

प्रश्न 1 निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए -

1. जनन क्षमता
2. आयु वितरण
3. जैविक क्षमता
4. जनांकिकी
5. बहिर्प्रवास
6. समष्टि घनत्व

प्रश्न 2 समष्टि घनत्व व इसे प्रभावित करने वाले कारकों पर एक निबन्ध लिखिए।

प्रश्न 3 समष्टि नियमन के कारकों को सविस्तार समझाइए।

प्रश्न 4 समष्टि प्रकीर्णन तथा समष्टि परिक्षेपण में भेद बताते हुए उनसे होने वाले समष्टि परिवर्तनों को बताइए

इकाई 8

समुदाय परिस्थितिकी (Community Ecology) एवं पारिस्थितिकीय अनुक्रमण(Ecological Succession)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जैव समुदाय

8.2.1 जैव-समुदाय के साधारण लक्षण

8.2.2 जैव-सामुदायिक पारस्परिक आश्रियता या अन्तरनिर्भरता

8.2.3 भोजन के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता

8.2.4 प्रजनन के लिए प्राकृतिक सामुदायिक आश्रयता

8.2.5 सुरक्षा के लिए सामुदायिक आश्रयता

8.3 पारिस्थितिकीय अनुक्रमण

8.3.1 अनुक्रमण के प्रकार

8.3.2 चरमावस्था

8.3.3 अनुक्रमण के प्रतिरूप

8.3.4 जलक्रमक

8.3.5 जलक्रमक के दौरान जन्तु जीवन में होने वाले परिवर्तन

8.3.6 मध्यवर्तीक्रमक

8.4 बोध प्रश्न

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 सन्दर्भ

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य (Objective)

एक क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाले सभी जीवों का समूह जैविक समुदाय (Biotic Communiuty) कहलाता है।

वी. ई. शैलफोर्ड (V.E. Shelford) के अनुसार एक जैविक समुदाय एक समान रूप से दिखने वाले, एक ही वर्गीकी संगठन वाले जीवों का समूह होता है। स्मिथ (1977) के अनुसार जैविक समुदाय प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले पौधों एवं प्राणियों का समूह है जो एक ही वातावरण में रहते है तथा आपस में सहनशील एवं अन्तराश्रित होते है एवं ऊर्जा का लगातार स्थाईकरण एवं उपयोग करते है। इस प्रकार

जैविक समुदाय एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाली भिन्न-भिन्न प्रजातियों की समष्टियो का स्थानीय संगठन होता है।

पारिस्थितिकीय अनुक्रमण की घटना “में क्रमिक एवं प्रगामी क्रम द्वारा एक समुदाय को दूसरे समुदाय के द्वारा तब तक हटाया जाता है जब तक की एक स्थायी समुदाय स्थापित नहीं हो जाता।

स्मिथ (1966) के अनुसार एक समुदाय में अनुक्रमण, एक जैविक समुदाय का दूसरे जैविक समुदाय के द्वारा होने वाला क्रमबद्ध एवं प्रगामी रुपान्तरण है, जिसमें अन्त में स्थायी समुदाय की स्थापना होती है। किसी समुदाय में अनुक्रमण का प्रारम्भ पायोनियर अवस्था से होता है जो शृंखलाबद्ध रूप से स्थायी समुदाय के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है। इस पाठ के निम्न मुख्य बिन्दु मुख्य है :-

1. जैव समुदाय के साधारण लक्षण
2. जैव सामुदायिक पारस्परिक आश्रियता या अन्तरनिर्भरता
3. भोजन के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता
4. प्रजनन के लिए सामुदायिक आश्रयता
5. सुरक्षा के लिए सामुदायिक आश्रयता
6. अनुक्रमण के प्रकार
7. चरमावस्था
8. अनुक्रमण के प्रतिरूप
9. जलक्रमक
10. जलक्रमक के दौरान जन्तु जीवन में होने वाले परिवर्तन
11. मध्यवर्ती क्रमक

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

एक समुदाय के सदस्यों के जीवन को चलाने के लिए कई जीवों का उपस्थित होना आवश्यक हैं। एक जैविक समुदाय प्राथमिक रूप से प्राणियों या पादपों का बना हो सकता है। लेकिन अधिकतर जैविक समुदाय पादपों एवं प्राणियों दोनों को सम्मिलित करते है। एक समुदाय की रचना चार प्रकार के सजीवों के द्वारा होती है :-

(अ) उत्पादक (Producers)

(ब) उपभोक्ता (Consumers)

(स) सर्वाहारी (Omnivorous)

(द) विघटक (Decomposers)

समुदाय दो प्रकार के होते है :

1. मुख्य समुदाय (Major Community)

ऐसा समुदाय जो पडौसी समुदाय पर निर्भर नहीं रहता, मुख्य समुदाय कहलाता हैं। इस प्रकार का समुदाय पूर्णत: आत्म निर्भर एवं सम्पूर्ण होता हैं।

2. गौण समुदाय (Minor Community)

ऐसे समुदाय कम या अधिक रूप से पड़ोसी समुदाय पर आश्रित होते है। इनमें सम्पूर्णता नहीं होती है।

जिस प्रकार वातावरण स्थायी नहीं होता है उसी प्रकार समुदाय भी कभी स्थिर नहीं होते है वे विकसित होते रहते है। वातावरण गतिमान होता है इसी प्रकार समुदाय में पाये जाने वाले जीव भी गतिमान एवं परिवर्तनशील होते है। वातावरण के कारक बदलते रहते है। साथ ही समुदाय के सदस्यों के मध्य अन्योन्य क्रियाओं के कारण वातावरण में भी परिवर्तन आता है। वातावरण में परिवर्तन के कारण पूर्व के सदस्यों के स्थान पर नये सदस्य आ जाते है तथा नया समुदाय स्थापित हो जाता है। इस प्रकार समुदायों का प्रतिस्थापन चलता रहता है इसी ही अनुक्रमण(succession) कहते है। हुल्ट (1885) ने अनुक्रमण शब्द का प्रयोग समुदायों के नियमबद्ध परिवर्तनों के अध्ययन के लिए किया था। ओडम (1971) ने पारिस्थितिकीय अनुक्रमण को सुव्यवस्थित क्रमानुसार पारिस्थितिकीय तन्त्र का विकास कहा हैं।

8.2 जैव समुदाय (Biotic Community)

8.2.1 जैव समुदाय के साधारण लक्षण (General Characters of Biotic Community)

विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में विभिन्न जैव समुदाय निवास करते है। इनके अलग-अलग विशिष्ट लक्षण होते है। कुछ सामान्य लक्षण सभी प्रकार के समुदायों में पाये जाते है। एक जैव समुदाय में पाये जाने वाले सामान्य लक्षण निम्न है -

1. समुदाय विविधता (Community Diversity)

एक जैविक समुदाय में अलग-अलग वर्गीकी समूहों के प्राणी एवं पादप बहुतायत से पाये जाते है। इनकी संख्या भिन्न-भिन्न होती है।

2. समुदाय प्रभाविता (Community Dominance)

प्रत्येक जैव समुदाय में कुछ विशिष्ट प्राणीजात (fauna) या वनस्पतिजात (flora) अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण, प्रभावशाली तथा जीव संख्या घनत्व में अधिक होती है। इन्हें पारिस्थितिकी प्रबल कहते है। जैसे घास जीवोम में घास प्रबल होती है।

3. समुदाय स्तरीकरण (community stratification)

जैविक समुदाय पारिस्थितिकी के अनुसार स्तरित होता है अर्थात विभिन्न पादप एवं प्राणी विभिन्न स्तरों के रूप में उपस्थित होते है स्तरीकरण सामान्य रूप से उदग्र रूप से होता है जैसे झीलों में स्तरीकरण के रूप में तीन मुख्य क्षैतिज पाये जाते है : -

1. तटीय क्षेत्र (Littoral Zone)
2. प्रकाशित क्षेत्र (Limnetic Zone)
3. गंभीर क्षेत्र (Profundal Zone)

4. समुदायिक आवर्तता (Community Periodicity)

एक समुदाय के जीवों में होने वाले समबद्ध परिवर्तन को सामुदायिक आवर्तता कहते है। यह निम्न प्रकार के हो सकते है

1. दैनिक आवर्तता
2. चन्द्रमा आवर्तता

3. मौसमी आवर्तता आदि।

5. विचलन

कभी-कभी स्थाई समुदाय में भी विचलन देखने को मिलता है। इसी प्रकार कभी-कभी छोटे स्तर पर होने वाला परिवर्तन भी अपना प्रभाव व्यापक रूप से दर्शाता है।

8.2.2 जैव सामुदायिक पारस्परिक आश्रयता या अन्तरनिर्भरता

किसी भी जैव समुदाय का निर्माण अनेक जातियों के जीव जन्तुओं से होता है। ये निरन्तर अनुक्रिया और आपसी ताल-मेल से जीवन यापन करते है। वैसे तो जैव समुदाय का अस्तित्व अनेक कारकों पर निर्भर करता है लेकिन प्रत्येक समुदाय के सदस्य भोजन, प्रजनन और सुरक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। इसे पारिस्परिक आश्रयता कहते हैं।

(अ) भोजन के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता

सजीवों के लिए भोजन मूलभूत आवश्यकता है। इसलिए किसी भी समुदाय को स्थिरता प्रदान करने के लिए नियमित भोजन आपूर्ति अति आवश्यक हैं। स्वयंपोषी पादप अपना भोजन स्वयं बना लेते है। लेकिन प्राणी अपना भोजन स्वयं निर्मित नहीं कर सकते। इसलिए शाकाहारी प्राणी पादप पर भोजन के लिए आश्रित है तथा मांसाहारी प्राणी शाकाहारी प्राणियों का भक्षण करते है। अन्त में पादपों तथा प्राणियों की मृत्यु होने पर सूक्ष्मजीवी बैक्टरिया एंव कवक इनको सड़ा-गलाकर मिट्टी को उर्वरक बना देते है। इसेका उपयोग पादप कर लेते है। इस प्रकार यह भोजन चक्र चलता रहता है तथा समुदाय के सदस्य खाद्य शृंखला का निर्माण करते है।

(ब) प्रजनन के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता

समुदाय में भोजन की तरह ही प्रजनन के लिए भी एक दूसरे पर आश्रित रहना पडता है। कीटों के द्वारा होने वाला परागण प्रजननिक आश्रियता का अच्छा उदाहरण है। अनेक प्राणी प्रजनन के लिए पेड़ों पर घौसलें बनाते है। कोयल अपने अण्डे कौअए के घौसले में देती है अनजाने में कौआ कोयल के अण्डों को विकसित करके बच्चों का पालन-पोषण करता है इस प्रकार विभिन्न जातियों के मध्य प्रजनन के लिए पारिस्परिक आश्रयता पाई जाती है।

(स) सुरक्षा के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता

जैव समुदाय के विभिन्न सदस्य सुरक्षा के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते है पेड, पौधे तथा घास विभिन्न प्राणियों की वर्षा, आधी तथा शत्रुओं से सुरक्षा करते है तथा उन्हें आश्रय प्रदान करते है। सुरक्षा की कमी के कारण पादप तथा प्राणी दोनों प्रभावित होते है अनेक जन्तु सुरक्षा के लिए वातावरण के अनुरूप अपना रंग रूप धारण कर लेते है जिसे छदभदेष या केमोपलाज (camouflage) कहते है। अनुहरण भी विभिन्न प्राणियों में सुरक्षा का महत्वपूर्ण उपाय है अनेक छोटे बड़े प्राणी अपने वातावरण के उन सदस्यों के रंग का अनुसरण कर लेते है। शक्तिशाली तथा सुरक्षित है। विषहीन सर्प खतरनाक विषधारी कोबरा के समान फन उठाकर शत्रु को डराने में सफल रहते हैं।

8.3 पारिस्थितिकीय अनुक्रकरण (Ecological Succession)

8.3.1 अनुक्रमण के प्रकार

समुदाय में होने वाला अनुक्रमण मुख्यत: दो प्रकार का होता है :-

1. प्राथमिक अनुक्रमण (Primary Sucecssion)
2. द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary Sucecssion)

1. प्राथमिक अनुक्रमण (Primary Sucession)

इस प्रकार का अनुक्रमण निर्जन क्षेत्र से प्रारम्भ होता है जहाँ पहले रहने की अवस्थाएँ अनुकूल नहीं होती है। इन निर्जन स्थानों पर होने वाला अनुक्रमण प्राथमिक अनुक्रमण कहलाता है। इन निर्जन स्थानों पर स्थापित होने वाला प्रथम समुदाय पायोनियर समुदाय कहलाता है। उदाहरणार्थ नवनिर्मित चट्टान, मिट्टी का टिला आदि।

2. द्वितीय अनुक्रमण (Secondary Succession)

जब किसी क्षेत्र में पहले से उपस्थित समुदाय किन्हीं प्राकृतिक कारणों से हटाया जाता है तथा उनके स्थानों पर नयी परिस्थितियों के अनुसार नया समुदाय स्थापित हो जाता है तथा चरम अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो इसे द्वितीय अनुक्रमण कहते है। उपरोक्त दोनों प्रकारों के अलावा अनुक्रमण को निम्न दो भागों में भी बांटा जा सकता है :

1. स्वपौषीय अनुक्रमण (Autotrophic Succession)
2. विषमपौषीय अनुक्रमण (Heterotrophic Succession)

1. स्वपौषीय अनुक्रमण (Autotrophic Succession)

इस प्रकार का अनुक्रमण, अकार्बनिक वातावरण में मुख्य रुप से होता है यह प्रकृति में विस्तार से फैला हुआ होता है। इसमें स्वपोषी जीवों का प्रभाव निरन्तर बना रहता है। उदाहरण-हरे पादप

2. विषमपौषीय अनुक्रमण (Heterotrophic Succession)

इस प्रकार का अनुक्रमण मुख्यत: कार्बनिक वातावरण में होता है तथा इसमें विषमपौषीय जीवों का बाहुल्य रहता है। उदाहरण-जीवाणु, कवक एवं प्राणी।

8.3.2 चरमावस्था

जब अनुक्रमण रुक जाता है तथा एक प्रकार का समुदाय स्थायी हो जाता है तब भी अवरथाओं में उसे हराया नहीं जा सकता है। ऐसे समुदाय जो अपने आपको निश्चित समय तक पूर्ण समन्वय बनाये रख सकते है इसे चरमावस्था (Climax) कहते है। चरमावस्था से सम्बन्धित अन्य अवस्थाऐं :-

1. उपचरमावस्था (Sub-climax)

जब चरमावस्था से पूर्व विशेष कारणवश कोई समुदाय अधिक काल तक स्थिर हो जाये इसे उपचरमावस्था कहते है। जैसे-पृथ्वी के उत्तरी समशीतोष्ण क्षेत्र में चीड़ के वृक्षों के जंगल उपचरमावस्था को दर्शाते है।

2. वि-चरमावस्था (Disclimax)

जब वास्तविक चरमावस्था किसी कारण बदल जाती है तथा नई जाति आकस्मात प्रवेश कर जाती है तो यह रूपान्तरित अवस्था वि-चरमावस्था कहलाती है। जैसे-पश्चिम मैदानों में वर्षा की कमी के कारण घास का छोटा हो जाना।

8.3.3 अनुक्रमण के प्रतिरूप (Pattern of Succession)

आवास के प्रकार तथा नमी की मात्रा के आधार पर अनुक्रमणों को निम्न रूप में बांटा गया है :-

1. जलक्रमक (Hydrosere)
2. मरूक्रमक (Xerosere)
3. मध्यवर्ती क्रमक (Mesosere)

8.3.4 जलक्रमक (Hydrosere)

जलक्रमक का प्रारम्भ किसी जलीय स्त्रोत या झील या सरोवर में होता है। इनमें जल मध्य में गहरा तथा किनारों की तरफ उथला होता है। जलक्रमक के दौरान जन्तु जीवन में होने वाले परिवर्तन तथा अवस्थायें निम्न है :

(अ) प्लवक प्रावस्था (Plankton Stage)

जलक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था में अनुकूल परिस्थितियों में एक कोशिकीय पादप प्लवक (phytoplankton) उत्पन्न होते है। इनके बीजाणु हवा आदि के द्वारा जलस्त्रोत में लाये जाते है। पादप प्लवको के पश्चात् तन्तुमय शैवाल जैसे स्पाइरोगाइरा उडोगोनियम आदि विकसित होते हैं। इनके साथ ही जन्तु प्लवक (Zooplankton) जैसे पेरामीशियम युग्लिना आदि प्रदर्शित होते है। प्लवकों की संख्या बढ़ने के साथ अन्य प्राणी प्रजातियां भी विकसित हो जाती है।

(ब) निमग्न अवस्था (Submerged Stage)

तालाब या झील के 10 फीट गहराई के क्षेत्र में प्राय: कोई पुष्पी पादप नहीं उग पाता। यहां पर मात्र शैवाल ही उपस्थित होते है लेकिन तालाब या झील के किनारों की तरफ कीचड जैसा स्तर बन जाने के कारण कारा, हाइड्रिला, पोटेमोजिटोन वैलिसनेरिया यूट्रीकूलेरिया आदि उत्पन्न होते है। जिनके बीजाणु व बीज प्राय: पक्षियों तथा विभिन्न जन्तुओं द्वारा लाये जाते है।

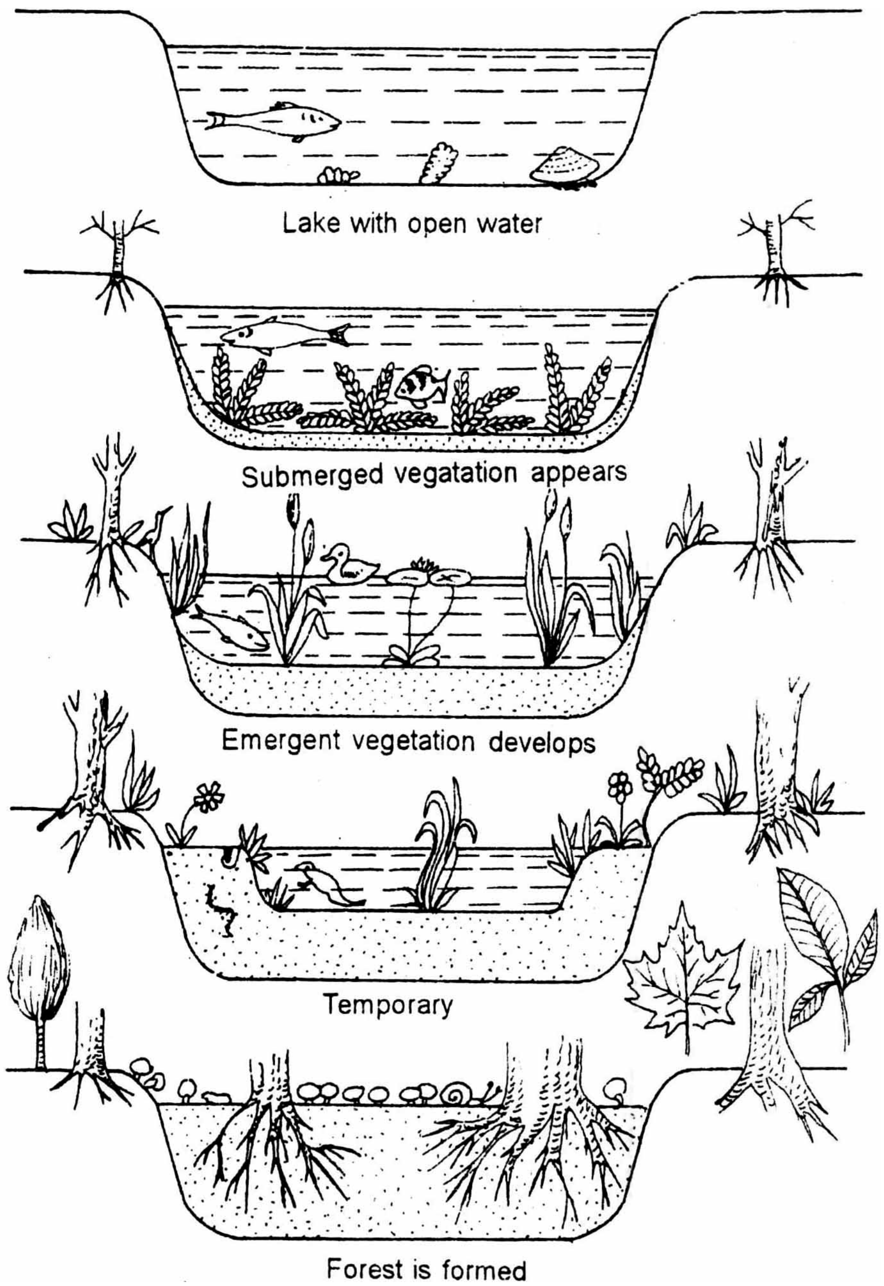

चित्र 8.1 जल अनुक्रमण की अवस्थाएँ

(स) प्लावी अवस्था (Floating Stage)

जल स्त्रोतों में जल की गहराई कम होने पर निमग्न पौधे अधिक गहराई की ओर प्रस्थान कर जाते है उनके स्थान पर प्लावी पादप जातियां निम्फिया, ट्रापा उगने लग जाती है। विशेषत: जहां पानी की गहराई 6 से 8 फीट रह जाती है इन पादपों की जड़े तल में जमी रहती है। इनके स्तम्भ पानी के ऊपर तक पहुँच जाते है तथा पत्तियां पानी पर तैरती रहती है। इनके साथ ही कुछ स्वतंत्र प्लावी पौधे जैसे-एजोला, लेम्ना, वोल्फिया, पिस्टीया आदि भी विकसित होते है। इन पौधों के कारण प्रकाश जल में प्रवेश नहीं कर पाता। फलस्वरूप जलमग्न पौधों

की मृत्यु हो जाती है। इस अवस्था में विभिन्न प्राणी जातियां भी इन पादपों के साथ पायी जाती है।

(द) नड अनुप अवस्था (Reed Swamp Stage)

किनारों की अपरदन हुई मिट्टी, ह्यूमस के लगातार जमा होने से गहराई कम होने लगती है प्राय: 2 से 3 फीट या कहीं कहीं 1 फीट से भी कम होने के कारण यह जल निमग्न एवं जल प्लावी पादपों के लिए उपयुक्त नहीं होता है। इस कारण नड अनुप एवं मार्शीय पौधे जैसे-रेननकुलस, सेजिटेरिया एवं टाइफा आदि भी विकसित हो जाते हैं।

प्लावी अवस्था के प्राणी भी नड़ अनुप अवस्था के प्राणियों के द्वारा प्रेतिद्स्थापित हो जाते है। अब नैपा बेलोस्टोमा हाइड्रोफिस आदि विकसित होते है।

(य) कच्छ शाद्वल अवस्था (Marsh Meadow Stage)

मूल तंत्र तथा पत्तियों के निक्षेपण के कारध जल स्रोत का अद्य स्तर कच्छ भूमि में परिवर्तित हो जाता है। भूमि के ऊपर मात्र कुछ इंच पानी उपस्थित रहता है। अब इस पर पोदिना कुल के कुछ पौधे तथा ऊँची घास की जातियां आक्रमण करती है। जिससे यह क्षेत्र शाद्वल अर्थात् घास मैदान बन जाता है तथा यह पौधे आवास को कई प्रकार से प्रभावित करते है। अब इस प्रकार की भूमि में पहले झाड़ू तथा बाद में वृक्ष उत्पन्न हो जाते है।

(र) वनस्थली अवस्था (Woodland Stage)

इस अवस्था में वे पौधे मुख्य रूप से पाये जाते है जिनमें जलाक्रान्त स्थिति को सहन करने की क्षमता पाई जाती हैं। जैसे-सालिक्स कार्नस आदि।

इन पादपों की जड़े उदग्र के स्थान पर क्षैतिज रूप में अधिक फैली रहती है।

(ल) चरम वन (Climax Forest)

जैसे-जैसे ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्म जीव भी भूमि में बढने लगते है जिससे भूमि उर्वरक बन जाती है। अब नये वृक्ष प्रकट होते है। ट्रोपिकल क्षेत्रों मे ट्रोपिकल वनों का निर्माण हो जाता हैं जबकि टेम्परेट क्षेत्रों में मिश्रित वनों का निर्माण होता हैं। इस प्रकार जो क्षेत्र किसी गहरे पानी से ढका था अन्त में वन में परिवर्तित हो जाता है।

8.3.5 जलक्रमक के दौरान जन्तु जीवन में होने वाले परिवर्तन :

जलक्रमक के दौरान पादप जीवन में परिवर्तनों के साथ जन्तु जीवन में भी परिवर्तन होता है। जैसे जन्तु जीवन में गेरामिशियम युग्लीना, अमीबा आदि प्रोटोजोआ पायोनियर होते है। जब इनकी संख्या बढ़ जाती है तो दूसरी जन्तु जातियां जैसे ब्लूगिल फिश, सनफिश आदि दिखाई देने लगती है। छोटी कैडीस फ्लाई भी रहने लगती है।

वनस्पति की उच्च किस्में विकसित होने पर कैडीसपलाई का स्थान वनस्पति पर रेंगने वाली जातियों ले जाती है। जैसे ड्रेगनफ्लाई, मेफ्लाई तथा कुछ कस्टेशियन जैसे डेफ्निया साइक्लोफ्स आदि।

प्लावी अवस्था में जन्तु जीवन का प्रतिनिधित्व मुख्य रुप से हाइड्रा, घोघों, मेढक तथा मच्छरों द्वारा किया जाता है।

नड़ अनूप अवस्था में तालाब का पानी उथला हो जाता है तथा प्लावी पौधों का स्थान जलमग्न पौधे ले लेते हैं इसी के साथ प्लावी जीवों के स्थान पर जलमग्न पौधों के साथ रहने वाले जीव आ जाते

है। मेपलाई और ड्रेगनफ्लाई की विभिन्न जातियां जलमग्न पौधों की ऊपरी सतह पर दिखाई देने लगती है। जबकि उनके निष्क पौधों के निमग्न भागों पर चिपके रहते है। अन्य जीवों में जल बिच्छू समुद्री सांप आदि प्रमुख हैं।

कच्द शाद्वल अवस्था में गर्मी में तालाब सूख भी सकता है तथा इस समय मछलियों का स्थान घोघें ले लेते हैं तथा अन्त में वनस्थली अवस्था में अधिकतर स्थलीय जीव पाये जाते हैं।

8.3.6 मध्यवर्ती क्रमक (Mesosere)

यह मध्यम प्रकार का अनुक्रमण है, जिसमें उचित मात्रा में आर्द्रता पायी जाती है। यहां अनुक्रमण की अवस्था छोटी होती है क्योंकि यहां आर्द्रता की अवस्था अधिक उपयुक्त होती है तथा मरुक्रमक व जलक्रमक के समान यहां जल से सम्बन्धित समस्यायें नहीं होती है। यहां पर जलारम्भी तथा शुष्कतारम्मी समुदाय मध्य विदारुक शृंखला में पायी जाने वाली परिस्थितियों के प्रति अग्रसर होते है।

8.4 बोध प्रश्न

1. जैव समुदाय किसे कहते है।
   ....
   ....
2. जैव समुदाय के साधारण लक्षणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
   ....
   ....
3. एक समुदाय की रचना कितने प्रकार के सजीवों से होती है।
   ....
   ....
4. मुख्य रूप से जैव समुदायिक आश्रियतायें कौन-कौन सी है।
   ....
   ....
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :-
   (अ) अनुक्रमण तब तक चलता रहता है जब तक कि......................समुदाय स्थापित नहीं हो जाता है।
   (ब) किसी समुदाय में अनुक्रमण का प्रारम्भ.................................अवस्था से होता है।
   (स) सर्वप्रथम.................................ने अनुक्रमण शब्द का प्रयोग किया।
   (द) प्राथमिक अनुक्रमण..................................से प्रारम्भ होता है।
6. चरमावस्था (climax) किसे कहते है?
   ....
   ....
7. जल क्रमक की अवस्थाओं के नाम लिखिये।
   ....

....

8.5 सारांश (Summary)

एक क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाले सभी जीवों का समूह जैविक समुदाय कहलाता है। ये जीव एक ही वातावरण में रहते है। ये आपस में सहनशील तथा भोजन, प्रजनन एवं सुरक्षा के लिए पारस्परिक रूप में आश्रित रहते है। इन सामुदायिक सदस्यों के मध्य अन्योन्य क्रियाऐं होती रहती है। जैविक समुदाय इन्ही अन्योन्य क्रियाओं का सामूहिक परिणाम है।

जिस प्रकार वातावरण कभी स्थाई नहीं होता है उसी प्रकार समुदाय भी कभी स्थिर नही होते है। अनुक्रमण के द्वारा समुदाय स्थायित्व प्राप्त करता है। अनुक्रमण की विभिन्न अवस्थायें मानव समष्टि के लिए महत्वपूर्ण है।

8.6 शब्दावली (Glossary)

1. **जैविक समुदाय (Biotic Community) :** प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले पौधों व जन्तुओं का समूह जो एक ही वातावरण में पाये जाते है।
2. **आवर्तिता (Periodicity) :** चक्रीक रूप में सम्पादित क्रियाओं का रूप।
3. **उत्पादक (Producers) :** वे जीव जो सौर ऊर्जा तथा खनिज पदार्थ की सहायता से ऊर्जादायक पदार्थ का निर्माण करते है।
4. **स्थिरीकरण (Stratification) :** विभिन्न स्तरों में बांटना।
5. **अनुहरण (Mimicry) :** किसी की नकल करना।
6. **चरमावस्था (Climax) :** अनुक्रमण रूक जाने पर समुदाय का स्थाई रूप में रहने लगना।
7. **कच्छ एवं अनुप (Marsh & Swamp) :** झीलों तथा तलाबों के तंग किनारों के साथ-साथ गीले स्थान जहां क्षयी कार्बनिक पदार्थ तथा खनिज मिट्टी मिश्रित होती हैं।
8. **ह्यूमस (Humus) :** मिट्टी का वह विशेष महत्वपूर्णभाग जिसमें पेड़-पौधों की पत्तियां, तने, टहनियां और जन्तुओं का मलमूत्रै तथा मृत शरीर मिलते रहते है। जिनको जीवाणु आदि सड़ा-गलाकर मिट्टी को उपजाऊ बनाते है।

8.7 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Bookds)

1. प्राणी पारिस्थितिकी एवं जैव सांख्यिकी-के.सी. सेनी
2. प्राणी पारिस्थितिकी, पर्यावरणीय'जैविकी के विभिन्न आयाम-भाटिया कोहली, स्वरूप
3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण - पी.डी शर्मा
4. जन्तु पारिस्थितिकी - डॉ. वीरबाला रस्तोगी
5. जन्तु परिस्थितिकी एवं सांख्यिकी-पारिख आदि।

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. एक क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाले सभी जीवों का समूह जैव समुदाय कहलाता है।
2. एक जैव समुदाय में निम्न साधारण लक्षण पाये जाते है।

1. समुदाय विविधता 2. समुदाय प्रभाविता
3. सामुदायिक स्तरीकरण 4. सामुदायिक आर्वतता
5. सामुदायिक विचलन

3. एक समुदाय की रचना निम्न प्रकार के सजीवों से होती है।
1. उत्पादक 2. उपभोक्ता 3. सर्वाहारी 4. विघटक

4. मुख्य रूप से जैव समुदायिक आश्रियता निम्न है।
1. भोजन के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता
2. प्रजनन के लिए पारस्परिक सामुदायिक आश्रयता
3. सुरक्षा के लिए सामुदायिक आश्रयता

5. (अ) स्थायी (ब) पायोनियर (स) हुल्ट (द) निर्जन क्षेत्र

6. जब अनुक्रमण रुक जाता है तथा एक प्रथम प्रकार का समुदाय स्थायी हो जाता है तथा वह अपना निश्चित समय तक समन्वय बनायें रख सकता है चरमावस्था कहलाती है।

7. जलक्रमक की अवस्थायें निम्न है -
(अ) प्लवक प्रावस्था (ब) निमग्न अवस्था (स) प्लावी अवस्था
(द) नड अनुप अवस्था (य) कच्छ शाद्वल अवस्था (र) वनरथली अवस्था
(ल) चरम वन

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जैव समुदाय की परिभाषा दीजिये।
2. जैव समुदाय कौन-कौन से है नाम लिखिये।
3. समुदायिक स्तरीकरण पर टिप्पणी लिखिये।
4. जैव समुदाय में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की अन्तरनिर्भरताओ का वर्णन कीजिए।
5. अनुक्रमण कितने प्रकार के होते है?
6. प्राथमिक अनुक्रमण क्या है?
7. विचरमावस्था क्या होती है?
8. जलक्रमक की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

इकाई 9

आवास-स्थान व अलवणजलीय आवास

(Habitat & Fresh-Water Habitat)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 आवास स्थान एवं अलवणजलीय आवास

- 9.2.1 आवास स्थान
- 9.2.2 सामुदायिक निवास संरचना
- 9.2.3 स्वच्छ या अलवणीयजल सामुदायिक आवास
- 9.2.4 स्वच्छ (अलवण) जलीय आवास लक्षण
- 9.2.5 स्वच्छ (अलवण) जलीय जीव-जात
- 9.2.6 गतिक एवं स्थायीजल विशेषताऐं सामान्य तुलना
- 9.2.7 गतिमय जलीय आवास
- 9.2.8 गतिमय जलीय आवास के अनुकूलन
- 9.2.9 स्थिरजलीय आवास
- 9.2.10 लेन्टिक आवास की विशेषताएँ एवं अनुकूलताएँ
- 9.2.11 झीलों का वर्गीकरण
- 9.2.12 स्थिरजलीय जीव-जात

9.3 बोध प्रश्न

9.4 सारांश

9.5 शब्दावली

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य (Objective)

आवास स्थल वह विशिष्ट स्थान या जगह है जहाँ पादप या प्राणी वृद्धि करता है तथा अपना. जीवन आगे बढ़ाता है। उदाहरण-एक झरना, एक तालाब, घास का मैदान आदि।

आवास स्थल वातावरण की तुलना में अधिक विशिष्ट' है तथा छोटी विचारधारा है इस पाठ में निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है

(1) आवास स्थान

(2) सामुदायिक निवास संरचना

(3) स्वच्छ या अलवणीय जल सामुदायिक आवास

(4) स्वच्छ (अलवण) जलीय आर्वास लक्षण

(5) स्वच्छ (अलवण) जलीय जीव-जात

(6) गतिक एवं स्थायींजल विशेषताऐ सामान्य तुलना

(7) गतिमय जलीय आवास

(8) गतिमय जलीय आवास के अनुकूलन

(9) स्थिरजलीय आवास

(10) लेन्टिक आवास की विशेषताएँ एवं अनुकूलताएँ

(11) झीलों का वर्गीकरण

(12) स्थिरजलीय जीव-जात

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी पर पादप एवं जन्तु यादृच्छिक रूप से नहीं फैले हुए बल्कि अलग-अलग प्रकार के आवासों में अलग-अलग प्रकार के जीव-जात एवं वनास्पति जात पाये जाते है। वातावरणीय कारक इन जीव-जातो एव वनस्पति को प्रभावित करते है। वातावरण की तुलना में आवास स्थल एक छोटी विचारधारा है। जिसका तात्पर्य है जातो वह स्थान या जगह जहाँ कोई पादप या प्राणी वृद्धि करता है। ध्रुवों के कुछ अत्यधिक ठण्डे भागों को छोड़कर पृथ्वी का प्रत्येक भाग विभिन्न प्रकार के जीवों का आवास गृह है। भूमि हो या जल सभी स्थानों पर किसी न किसी रूप में जीवन उपस्थित है।

जीव मण्डल में चार मुख्य प्रकार के आवास होते है

1. अलवणजलीय आवास (Fresh Water Habitat)
2. समुद्री जलीय आवास (Marine Water Habitat)
3. वेलांचली या बेलासंगम आवास (Fresh Water Habitat)
4. स्थलीय आवास (terrestrial habitat)

1. **अलवण जलीय आवास (fresh water habitat) :** प्रवाह के आधार पर स्वच्छ जल आवास को दो उपवर्गो में विभाजित किया गया है।

(अ) सरित या बहता जल अलवणजलीय आवास : वे सभी स्वच्छ जलीय स्रोत जिनमें जल निरन्तर बहता रहता है। जैसे-झरने, सरिता, नदियाँ आदि।

(ब) स्थिर अवलणजलीय आवास : वे स्वच्छ जलीय आवास जिनमें प्रवाह-विहीन जल स्थाई रूप से एक स्थान पर स्थिर रहता है। जैसे. तालाब, झील आदि।

2. **समुद्री जलीय आवास (Marine Water Habitat) :** संसार का सबसे विस्तृत निवास समुद्री जलीय आवास है। जो पृथ्वी के 73% भाग को समेटता है।

3. **वेलांचली - बेलासगम आवास (estuarine habitat) :** बेला संगम आवास वे आवास है जहाँ समुद्री एवं स्वच्छ जल मिलते है।

4. **स्थलीय आवास (terrestrial habitat) :** स्थलीय आवास जलीय आवासों की तुलना में अधिक जटिल आवास होता है।

9.2 आवास स्थान एवं अलवण जलीय आवास (Habitat and Fresh Water Habitat)

9.2.1 आवास स्थान (Habitat) :

आवास स्थान से तात्पर्य उस स्थान से है जहाँ जीव रहते हैं। ध्रुवों के कुछ अत्यधिक ठण्डे भागों को छोड़कर पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर विभिन्न प्रकार के जीव पाये जाते है। पृथ्वी का प्रत्येक भाग एक आवास स्थल है।

कुछ प्राणी ठण्डे प्रदेशों में पाये जाते है, तो कुछ ऊँचे-ऊँचे पहाडों पर, तथा कुछ गहरे समुद्र में पाये जाते है। अलग-अलग प्रकार के आवास अपनी-अपनी विशेषताएँ रखते है।

9.2.2 सामुदायिक निवास संरचना .(Structure of Community Habitat) :

किसी भी समुदाय में प्रत्येक जीव अपने वातावरण में उपस्थित कारकों से अनुक्रिया कर अपना जीवन चलाता है। जीवन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए अन्तत: ऊर्जा सौर ऊर्जा से प्राप्त की जाती है एक सामुदायिक निवास में निम्न घटकों का होना आवश्यक है :-

(अ) उत्पादक (Producers)

(ब) उपभोक्ता (Cosumers)

(स) अपघटक (Decomposers)

(अ) **उत्पादक (Producers) :** वे जीवधारी जो सौर ऊर्जा तथा खनिज पदार्थो की सहायता से ऊर्जादायक योग्य पदार्थो का निर्माण करते है उत्पादक कहलाते है। उदाहरण-हरे पादप, शैवाल।

(ब) **उपभोक्ता (Consumers) :** उत्पादक का उपभोग करने वाले प्राणी अपभोक्ता कहलाते है। उपभोक्ता निम्न प्रकार के होते है।

(i) **प्राथमिक उपभोक्ता :** वे सभी जन्तु जो सीधे उत्पादकों या उनके द्वारा निर्मित फलों, फूलों का भक्षण करते है उदाहरण-शाकाहारी प्राणी।

(ii) **द्वितीयक उपभोक्ता :** वे सब जन्तु जो प्राथमिक उपभोक्ताओं को अपने भोजन के रूप में खाते है। उदाहरण-शिकारी कीड़े, छोटी मछलियाँ आदि।

(iii) **तृतीयक उपभोक्ता :** अनेक माँसाहारी प्राणी जो द्वितीयक उपभोक्ताओं का भक्षण करते है। उदाहरण- बड़ी मछली, मेढक, साँप आदि।

(iv) **शिखर उपभोक्ता :** बाघ और बाज जैसे जीव जो तृतीयक उपभोक्ताओं को अपना भोजन बनाते है।

(स) **विघटक (Decomposers) :** पौधों तथा जीवों की मृत्यु के पश्चात् उनके शरीर को विघटित करके मूलभूत तत्वों को फिर से उद्गम स्रोतों में वापस भेजने वाले सूक्ष्मजीव विघटक कहलाते है। उदाहरण कवक, जीवाणु आदि।

सौर ऊर्जा, उत्पादक, उपभोक्ता तथा विघटकों में जब तक आपसी तालमेल बना रहेगा तब तक ही सामुदायिक जीवन निरन्तर चलता रहेगा।

9.2.3 स्वच्छ या अलवणीयजलीय सामुदायिक आवास :

स्वच्छ जलीय परिस्थितिकी को लिम्नोलॉजी (Limnology) कहा जाता है। जिसके अन्तर्गत स्वच्छ जलीय स्रोतों एवं जीव जन्तुओं का विशद् अध्ययन किया जाता है। इसके दो उपभाग है :-

(अ) स्थिर जलीय आवास

(ब) प्रवाही या गतिक जलीय आवास

समुद्रों तथा महासागरों का जल वाष्पीकृत होकर बादलों के माध्यम से वर्षा करता है। यहीं अलवण जल पोखरों, तालाबों, झीलों, झरनों तथा नदियों आदि के रूप में स्वच्छ जलीय भण्डारों का निर्माण करता है। यह स्वच्छ जल समुद्रों तथा थल का संयोजक है।

स्वच्छ जलीय स्रोतों में अपने-अपने विशिष्ट जन्तु-जात (fauna) होते है।

9.2.4 स्वच्छ जलीय आवास लक्षण :

स्वच्छ जलीय आवास समुद्रों की तुलना में कम गहरे होते है। इनमें ताप, वायु तथा लवणों की मात्रा सभी परिवर्तनशील होते है। यहाँ प्रकाश की मात्रा, पानी का गंदलापन, ऑक्सीजन की मात्रा तथा लवणों की मात्रा, सीमाकारी कारक के रूप में कार्य करते है। स्वच्छ जलीय आवासों के मुख्य लक्षण निम्न है :-

(अ) **अल्प लवणता :** स्वच्छ जल की लवणता कम होती है इसलिए इसका परासरण दाब भी कम होता है। यही घुलित लवणों की मात्रा परिवर्तनशील होती है। इसलिए अलग-अलग आवासों की अपनी विशेष लवणता होती है। सामान्यत: इन आवासों की लवणता 1. 8 प्रतिशत तक मानी जाती है।

(ब) **तापक्रम :** स्वच्छ जलीय आवासों में तापीय भिन्नता बहु त कम होती है। तापीय परिवर्तन भी धीरे धीरे होते है। इसलिए जलीय जीवन के लिए ताप एक प्रकार से सीमाकारी कारक का कार्य करता है। तेज गर्मी के दिनों में प्राणी उच्च ताप से बचने लिए तल की ओर प्रवास कर जाते है। सर्दियों के दिनों में जल स्रोतों का ऊपरी जल जम जाता है। इससे इन स्रोतों के प्राणी प्रभावित होते है।

(स) **प्रकाश :** स्वच्छ जल में प्रकाश की भेदन क्षमता अधिक होती है। स्वच्छ जल में गंदलापन (turbidity) आवास स्थान में उपस्थित जन्तुओं तथा पौधों के लिए सीमाकारी कारक की तरह कार्य करता हैं।

(द) **ऑक्सीजन :** जैविक क्रियाओं के लिए ऑक्सीजन एक महत्वपूर्ण घटक है। जल में यह घुलित अवस्था में पाई जाती है। जलीय जीवन इस पर निर्भर होते हैं।

(य) **कार्बन-डाई-ऑक्साइड :** कार्बन-डाई- ऑक्साइड जल में घुलित अवस्था में पायी जाती है। सभी जलीय पादप प्रकाश संश्लेषण हेतु Co२ पर निर्भर रहते है।

(र) **घनत्व :** जल का घनत्व घुलित पदार्थो को सीधा समानुपाती तथा तापक्रम का व्युत्क्रमानुपाती होता है। जल का अधिकतम घनत्व 4 C ताप पर होता है।

(ल) **दाब :** समुद्री जल की अपेक्षा स्वच्छ जलीय अवास में दाब कम होता है।

(व) **मलिनता :** जल में उपस्थित विभिन्न पदार्थो के कारण प्रकाश का प्रवेश कम हो जाता है यदि मलिनता मिट्टी के कणों के कारण होती है तो यह सीमाकारी कारक का कार्य करती है। मलिनता की अधिकता के कारण जलीय प्राणियों के गिलन अवरूद्ध हो जाते है। जिससे वे मर जाते है।

(श) **जल धाराएँ :** जलीय स्रोतों में वायु के प्रवाह के कारण जल धाराएँ उत्पन्न होती है जो गैसों, लवणों आदि के वितरण को प्रभावित करती है। जिससे जीवों का वितरण प्रभावित होता है।

9.2.5 स्वच्छ जलीय जीव-जात :

स्वच्छ जलीय वातावरण में मुख्य उत्पाद शैवाल ही होते है। जबकि उपभोक्ताओं में अनेक प्राणी पाये जाते है जिनमें प्रोटोजोआ, कुछ स्पन्य, सीलेन्टरेट, ब्रायोजोआ या रॉटीफर, हाइड्रा, प्लेनेरिया क्रस्टेसिन लारवे, कृमि, ऐनेलिड्स मोलस्क, मछलियाँ एवं कछुऐं इत्यादि प्रमुख है। स्वच्छ जलीय जीव-जात का विशेष विवरण स्थिर जलीय जीव-जात के अन्तर्गत भी किया जाता है।

9.2.6 गतिक एवं स्थायी जल विशेषताएँ - सामान्य तुलना :

स्वच्छजलीय आवास को दो क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है.

(क) गतिक या लोटिक (Lotic) आवास

(ख) स्थाई या लेन्टिक (Lentic) आवास

(क) **धाराएँ (Currents) :** बहने वाले जल में धाराएँ एक मुख्य कारक है जो एक ही स्रोत में अलग अलग हो सकती है। बड़ी नदियों में धाराएँ कम भी हो सकती है। स्थिर जल में हवा के वेग से तरंगें चलती है।

(ख) **ऑक्सीजन (Oxygen) :** कम गहराई के कारण नदी में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है वैसे स्थिर जल की अपेक्षा गतिक जल में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है।

(ग) **हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (Hydrogen Ion Concentration) :** गतिक जल में pH में परिवर्तन अधिक नहीं होते है। जैसा की स्थिर क्षेत्र में होता है।

(घ) **शाकाहारी (Herbivores) :** कुछ ही स्वच्छ जलीय जन्तु पौधों का भक्षण करते है। शेषंपादप प्लवकों का भक्षण करते है। शाकाहारियों में उभयचरी लारवा, गेस्ट्रोपोड्स तथा मोलस्क प्रमुख है।

(ङ) **मांसाहारी (Cornivores) :** लगभग सभी बड़े स्वच्छ जलीय जन्तु मांसाहारी होते है।

(च) **अपरद भक्षक (Detritus Feeders) :** स्थिर जल में सबसे बडे जन्तु मौलस्क होते है। जबकि गतिक जल में कैडिस मक्खी (Caddis Fly) के लारवा प्रमुख रूप से पाये जाते है।

(छ) **तापक्रम (Temperature) :** गहरे स्वच्छ जलीय स्रोतों को छोड़कर अन्य स्रोतो में तापक्रम में भिन्नता रहती है। स्वच्छ जलीय जन्तु यूरीथर्मस होते है तथा तापक्रम की बडी परास में आसानी से जीवन व्यतीत कर लेते है।

(ज) **प्रकाश (Light) :** स्वच्छ जलीय जन्तुओं का आचरण प्रकाश की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर निर्भर करता है। कुछ प्रकाश ऋणात्मक होते है जबकि कुछ प्रकाश धनात्मक होते है।

9.2.7 गतिमय जलीय आवास (Lotic Habitat) :

इस प्रकार के आवास में पानी लगातार बहता रहता है तथा इसमें धाराएँ बराबर बनी रहती है। उदाहरण-झरने, सरिता एवं नदियाँ आदि। इस प्रकार के आवास में पानी के सभी भागों में ऑक्सीजन, खाद्य पदार्थ, ताप आदि समान रूप से वितरित रहते है। गतिमय जलीय आवासों अर्थात् सरिताओं में मुख्यतया दो प्रदेश पाये जाते है।

(अ) **क्षिप्रिका प्रदेश (Rapid Zone) :** यह किनारे वाला उथले जल वाला प्रदेश होता है। यहां धाराओं का वेग अधिक होता है। तेज धाराओं के कारण यह प्रदेश गाद आदि से मुक्त रहता है। इसलिए यही कडा आधार तल पाया जाता है।

(ब) **कुण्ड प्रदेश (Pool Zone) :** यहाँ जल धारा का वेग कम होता है। इसलिए यही गाद, अपघटित तथा कार्बनिक पदार्थ एकत्रित हो जाते है। यहाँ पर सूक्ष्म अपरद (Detritus) ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होता है। गाद एवं अन्य पदार्थो के कारण यही तल नरम बन जाता है।

9.2.8 गतिमय जलीय आवास के अनुकूलन (Adaptations of Lotic Habitat)

गतिमय जलीय आवासों में जल निरन्तर बहता रहता है जिसके कारण जन्तुओं में कुछ विशेष प्रकार के अनुकूलन विकसित हो जाते है जैसे :

(अ) **अंकुश, चूषक आदि की उपस्थिति :** गतिमय जलीय आवासों के जन्तुओं में अंकुश, चूषक आदि रचनाएँ पायी जाती है। जिनकी सहायता से ये किसी आधार से मजबूती से चिपक जाते है।

(ब) **धारारेखीत शरीर :** अधिकत्तर जन्तुओं का शरीर धारा रेखीत (Stream Lined) होता है। जिसके कारण इनको पानी के बहाव में कम प्रतिरोध होता है।

(स) **शारीरिक आकृति में परिवर्तन :** कुछ जन्तु अपने शरीर को चपटा बना लेते है। जिससे वे किसी दरार या पत्थर के नीचे छुप जाते हैं।

(द) **धनात्मक स्पर्शानुचलन (Thigmotaxis) :** अधिकांश जन्तुओं में धनात्मक स्पर्शानुचलन पाया जाता है। इसके कारण वह आपस में या किसी आधार से चिपक जाते है।

(य) **धनात्मक धारानुचलन (Rheotaxis) :** अधिकांश जन्तुओं में धनात्मक धारानुचलन पाया जाता है। इसके कारण वे जल धारा के विरूद्ध विन्यासित रहते है।

(र) **परासरण नियन्त्रण :** इन प्राणियों में परासरण नियन्त्रण के लिए विभिन्न रचनाएँ उपस्थित होती है।

(ल) **विशेष श्वसन रचनाओं की उपस्थिति :** जलीय कीटों में विशेष श्वसनीय रचनाएँ जैसे त्वचा, श्वसन नलिकाएँ, गिल्स ट्रेकिया आदि पाये जाते हैं।

9.2.9 स्थिर जलीय आवास (Lentic Habitat)

स्थिर जलीय आवास के अर्न्तगत झील, तालाब, पोखर एवं खड्डे, दलदल आदि सम्मिलित किये गये है। इनमें अलग-अलग समुदाय पाये जाते है। स्थिर जलीय आवासों में मुख्यत: प्लवक पाये जाते है जो जल तरंगों के साथ इधर-उधर बहते रहते है। इन आवासों में कुछ बड़े तैरने वाले प्राणी-तरणक

(Nekton) भी पाये जाते है। तालाबों में पाये जाने वाले प्राणियों में कुछ विशेष प्रकार के अनुकूलन भी पाये जाते है। इससे तालाब के सूखने पर वे स्वयं को बचाते है।

9.2.10 लेन्टिक आवास की विशेषताएँ एवं अनुकूलताएँ

(Characteristic and Adoptations in Lentic Habitat) :

इन आवासों में जलधाराएँ अनुपस्थित होती है इसलिए जल सतह पर रहने वाले जन्तुओं को कॉलोनी बनाने का अवसर मिलता हैं। वायुमण्डलीय ऑक्सीजन श्वसन के उपयोग में लाई जाती है। कुछ कीट जल सतह पर आसानी से तैरते है तथा वातावरणीय ऑक्सीजन का उपयोग आसानी से करते है। उदाहरण-जल झिंगुर (Water Crickets) तथा तालाब स्केट्स (Pond Skates) इन आवासों में सतह के नीचे जहाँ प्रकाश पर्याप्त मात्रा में पहुँचता है वहाँ जलीय पादप पनपते है। इसके कारण O२ की सान्द्रता बढ़ जाती है। इस क्षेत्र में भोजन अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसलिए बहुत से जन्तुजात पोषित होते है। कई जल मग्न पादपों तनों एवं पत्तियों पर कई जीव चिपके रहते है। जैसे-प्लेनेरिया एवं जोंक आदि।

इस क्षेत्र में रहने वाले कीट वायुमण्डलीय ऑक्सीजन ग्रहण करने के लिए अनुकूलित होते है। छोटे तालाबों में अधिकांशत: मोलस्क पाये जाते है। जो जलीय एवं वातावरणीय O_2 का उपयोग कर लेते है। उथले जल में मच्छलियां प्रमुख रूप से पायी जाती है। गहरे जल स्रोतों में ऑक्सीजन एवं भोजन की कमी के कारण प्राणी बहुत कम पाये जाते है। यहाँ काइरोनॉमस लारवा आदि ही पाये जाते है। कुछ जातियां कीचड़ में ट्यूब्स बनाकर रहती है। जैसे-ट्यूबिफेक्स।

9.2.11 व झीलों का वर्गीकरण (Classification of Lakes)

झीलों का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो आधारों पर किया जाता है :-

1. उत्पादकता के आधार पर
2. जल परिसंचरण के आधार पर

1. उत्पादकता के आधार पर : उत्पादकता के आधार झीलें तीन प्रकार की होती है

(अ) अल्पपोषी (Oligotrophic) : ये झीले गहरी होती है। इनमें भोजन की कमी होती है। इनका पानी पारदर्शी होता है। इनमें कार्बनिक कम मात्रा में पाये जाते है। इनके जल का p^Hमान कम होता है। इनमें वनस्पतियां एवं जन्तु कम मात्रा में पाये जाते है।

(ब) सुपोषी (Eutrophic) : ये झीले उथली (Shallow) होती है। इनमें फॉरफोरस, कार्बनिक पदार्थ तथा प्लवक काफी मात्रा में पाये जाते है। इसलिए इनमें वनस्पतियां एवं जन्तु बहुतायत में पाये जाते है।

(स) दुष्पोषी (Dystrophic) : ये उथली या गहरी हो सकती है। इनके जल में ह्यूमस, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस आदि का आधिक्य होता है। लेकिन O२ की कमी होती है। इसमें जन्तु प्राय: कम ही पाये जाते है।

2. जल परिसंचरण के आधार पर : जल संचरण के आधार पर झीलें तीन प्रकार की होती 'है :-

(अ) एमिक्सिस (Amixis) : इसमें जल का परिसंचरण कभी भी नहीं होता।

(ब) होलोमिक्सिस (Holomixis) : इसमें वायु प्रवाह के कारण झील में जल का परिसंचरण होता रहता है।

(स) मीरोमिक्सिस (Meromixis) : इसमें अपूर्ण जल प्रवाह होता है।

9.2.12 स्थिर जलीय जीव-जात (Lentic Biota) :

थर जलीय स्रोतों के अलग-अलग स्तरों में अलग-अलग प्रकार के जीव-जात पाये जाते है।

1) **तटीय क्षेत्र का समुदाय (Community of Littoral Zone) :** तटीय क्षेत्र में पादप एवं प्राणी बहुतायत मात्रा में पाये जाते है।

(अ) उत्पादक (Producers) : उत्पादकों में मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां एवं फाइटोप्लेक्टॉन पाये जाते है। वनस्पतियों में दृष्टिगोचर वनस्पतियां जैसे-आइपोमिया जुसिया, टाइफा आदि पाये जाते है। जबकि प्लावी वनस्पतियों में पिस्टिया तथा वॉल्फिया मुख्य है। जल मग्न वनस्पतियों में वेलिसनेरिया हाइड्रिला, कारा आदि प्रमुख है। फाइटोप्लेक्टॉन (Phytoplankton) में तन्तुमय शेवाल एवं अन्य शेवाल जैसे-स्पाइरोगाइरा उडोगोनियम वॉल्वॉक्स, एनाबिना आदि प्रमुख पाये जाते है।

(ब) उपेभोक्ता (Consumers) : तटीय क्षेत्र में प्राय: सभी संघों के प्राणी पाये जाते है। जो निम्न है :-

(क) प्राणी प्लवक (Zoo plankton) : तटीय भाग में डेफनिया, कोपीपोड्स ओस्ट्राकोड्स तथा रोटिफर्स पाये जाते है।

(ख) नेक्टोन (Nektons) : नेक्टोन में पेरामिसियम यूग्लिना तथा विभिन्न प्राणियों के लारवा पाये आदि पाये जाते है।

(ग) न्यूस्टोन (Neustons) : तटीय क्षेत्र में न्यूस्टोन प्रोटोजोआ, वाटर स्पाइडर, सनफिश मिन्नोज, मेंढक, कछुऐं, जलीय सांप आदि पाये जाते है।

(घ) पेरीफाइटोन (Periphyton) : तटीय क्षेत्र में तालाब घोंघे, ड्रेगनफ़्लाइ के निम्फ़, रॉटिफर्स, हाइड्रा आदि पाये जाते है।

(2) **प्रकाशित क्षेत्र का समुदाय (Community of Limnetic Zone) :** यह तीव्र विभिन्नताओं वाला स्तर है इस क्षेत्र में निम्न जीव-जात पाये जाते है :-

(अ) उत्पादक (Producers) : प्रकाशित क्षेत्र में उत्पादक मुख्य रूप से फाइटोप्लेंक्टोन के रूप में पाये जाते है। जैसे-स्पाइरोगाइरा, उडोगोनियम, वॉलॉकन, यूग्लिना आदि।

(ब) उपभोक्ता (Consumers) : उपभोक्ताओं में मुख्य रूप से कोपीपोड़, रॉटिफर्स व विभिन्न जातियों की मछलियां पायी जाती है।

(3) **गम्भीर क्षेत्र का समुदाय (Community of Profundal Zone) :** गम्भीर क्षेत्र में प्रकाश के अभाव के कारण उत्पादक प्राय : अनुपस्थित होते है। यही पर क्लेम, एनेलिड्स, काइरोनॉमस लारवा आदि जीव पाये जाते है।

9.3 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. गतिक जलीय आवास में जल निरन्तर.............................रहता है।
2. स्वच्छ जल की लवणता समुद्री जल की तुलना में....................होती हैं।
3. अल्पपोषी झिलों में भोजन की..होती है।
4. बाघ एक..उपभोक्ता है?

प्रश्न 2 सामुदायिक नीवास सरंचना में कौन-कौन से घटक पाये जाते है?

....

प्रश्न 3 स्वच्छ जलीय आवास के उपवर्ग कौन-कौन से है?

....

प्रश्न 4 उत्पादन के आधार पर झीलों के श्रेणियों के नाम लिखो?

....

9.4 सारांश (Summary)

अधिकांश जीव जलीय आवास में पाये जाते है। जल को सार्वत्रिक विलायक माना जाता है। जल आवास के लिए सबसे बड़ा माध्यम है। जलीय जीवों में अधिकांश समुद्री जल में पाये जाते है। समुद्री जल के साथ- साथ कुछ प्राणी स्वच्छ जलीय आवासों में पाये जाते है। स्वच्छ जलीय आवास भी जन्तुओं के लिए महत्वपूर्ण आवास है। जिसके अन्तर्गत सरित जलीय आवास एवं स्थिर जलीय आवास सम्मिलित किये जाते है। इन आवासों में विभिन्न प्रकार के कारक जन्तुओं को प्रभावित करते है। इनमें रहने वाले जीव इन कारकों से अनुक्रियाऐ करके अपना जीवन चलाते है। अन्य आवासों की भांति यहाँ पर भी उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक पाये जाते है।

9.5 शब्दावली (Glossary)

1. **उत्पादक :** जो सौर ऊर्जा एवं खनिज पदार्थो की सहायता से ऊर्जादायक पदार्थ निर्मित करते है।
2. **प्राथमिक उपभोक्ता :** जो जीव उत्पादकों को भोजन के रूप में ग्रहण करते है।
3. **नेक्टोन :** तैरने वाले जीव जो स्वयं की इच्छा से किसी भी दिशा में गमन कर सकते है।
4. **न्यूस्टोन :** जो जीव जल सतह पर तैर सकते है आराम कर सकते है।
5. **पादप प्लवक :** जो प्लवक अपना स्वयं का भोजन बना सकते है।

9.6 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. **जन्तु परिस्थितिकी एवं जैव सांख्यकी :** पारिख, दुबे आदि।
2. **प्राणी परिस्थितिकी एवं जैव सांख्यकी :** के. सी. सोनी
3. **प्राणी पारिस्थितिकी, पर्यावरण जैविकी के विभिन्न आयाम :** भाटिया, कोहली, स्वरूप।
4. **पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण :** पी. डी. शर्मा
5. **जन्तु पारिस्थितिकी :** डी. वीरबाला रस्तोगी

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1	1. बहता 2. कम 3. कमी 4. शिखर
उत्तर 2	सामुदायिक निवास संरचना में सौर ऊर्जा के अतिरिक्त उत्पादक, उपभोक्ता एवं विघटक पाये जाते है।
उत्तर 3	स्वच्छ जलीय आवास को निम्न दो उपवर्गो में बांटा गया है। 1. गतिक स्वच्छ जलीय आवास 2. स्थिर स्वच्छ जलीय आवास
उत्तर 4	उत्पादन के आधार पर झीलों को तीन श्रेणियों में बांटा गया हैं। 1. अल्पपोषी (Oligotrophic) 2. सुपोषी (Eutrophic) 3. दुथोषी (Dystrophic)

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न प्रश्न

प्रश्न 1 जैव मण्डल पर मुख्यत: कितने प्रकार के आवास है नाम लिखिए?

प्रश्न 2 आवास स्थान से आप क्या समझते है?

प्रश्न 3 सामुदायिक निवास में कौन-कौन से घटक पाये जाते है? वर्णन कीजए।

प्रश्न 4 स्वच्छ जलीय आवास के सामान्य लक्षणों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5 गतिक जलीय आवास के जीवों में पाये जाने वाले अनुकूलनों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 स्थिर जलीय आवास के जीव-जात का वर्णन कीजिए।

इकाई 10
समुद्रीय आवास स्थान
(Marine Habitat)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 संघटन
10.2.1 समुद्रीय आवास की विशेषताएँ
10.2.2 समुद्रों का क्षेत्रीकरण
10.2.3 बेलापवर्ति क्षेत्र की विशेषताएँ व जीवजात
10.2.4 नेरिटीक क्षेत्र
10.2.5 महासागरीय क्षेत्र
10.2.6 नितलस्व क्षेत्र की विशेषताएँ व जीवजात
10.2.7 बेलाचली क्षेत्र
10.2.8 गहरे समुद्रीय क्षेत्र
10.2.9 गहरे समुद्रीय क्षेत्र के जन्तुजात में अनुकलन
10.2.10 बेलासंगम आवासीय क्षेत्र
10.3 बोध प्रश्न
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 संदर्भ पुस्तकें
10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objective)

1. समुद्रीय आवास एवं उसकी पारिरिथतिकी का ज्ञान हैं।
2. समुद्रीय आवास तथा उसमें पाए जाने वाले जीवजात का सम्पूर्ण अध्ययन।
3. पारिस्थितिकी समुद्री आवास का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।जो पृथ्वी की सतह का 70 : भाग आवरित करता है।
4. समुद्रीय आवास की विशेषताएँ उसके विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति और वहाँ पाये जाने वाले जन्तुओं की विशिष्टता का अध्ययन हैं।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

समुद्रीय आवास वास्तव में एक अथाह क्षेत्र है। समुद्रों का क्षेत्रीकरण वही उपस्थित भौतिक रासायनिक दशाओं के आधार पर किया गया हैं। समुद्री विशेषताओं, समुद्र का क्षेत्रीकरण क्षेत्र अनुसार वहाँ की भौगोलिक व पर्यावरणीय दशाओं और वहां पाये जाने वाले विशिष्ट रूप से अनुकूलित जीव जात निर्भर करता है। समुद्रीय आवास अपने खारेपन, जार भाटा, धाराओं और गहराई पर दाब जैसे भौतिक कारकों के कारण अत्यन्त विशेष प्रकार का आवास है। पृथ्वी पर सभी समुद्र आपस में जुड़े हुये है इसलिए इन आवासों में विविध प्रकार के जीव जन्तुओं की बहुलता देखी जाती है। साथ ही इन कारकों के प्रति जन्तु में विशिष्ट प्रकार का अनुकूलन देखने को मिलता है, जिससे यह इस आवासीय क्षेत्र में जीवित रह पाते है।

बेलासंगम आवासीय क्षेत्र एक तनाव क्षेत्र है जहाँ स्वच्छ व लवणीय जल का मिश्रण पाया जाता है। यही विशिष्ट प्रकार का जीवजात पाया जाता है। बेलासंगम आवासीय क्षेत्र को कई आधारों के अनुसार वर्गीकृत किया गया है।

10.2 संघटक (Component)

समुद्रीय आवास स्थान (Marine Habitat)

जलीय आवास स्थानों में समुद्रीय आवास स्थान सबसे बड़ा आवासीय स्थल है। यह पृथ्वी का 70% भाग आवासित करता है। औसत समुद्रीय गहराई लगभग. 4000 मीटर होती है। किन्तु गम्भीर क्षेत्र 6000 मीटर तक गहरा हो सकता है। समुद्रीय पारिस्थितिकी में समुद्रीय जीवों का उसके वातावरण में अध्ययन किया जाता है। समुद्र के भौतिक व रासायनिक वातावरण व सभी जैविक कारक के अध्ययन को महासागरीय विज्ञान (Oceanography) कहते है। समुद्री का बहुत कम क्षेत्र सूर्य के द्वारा उद्भासित होता है। इसका समुद्रीय जल अल्प पोषकता वाला होता है। उत्पादन की क्षमता सीमित होती है। पृथ्वी के सभी समुद्र एक दूसरे से धाराओं द्वारा जुडे रहते हैं। समुद्रों को मुख्य रूप से लहरें, ज्वार व खारापन प्रभावित करते है। तापमान, खारापन और दबाव व गहराई समुद्रीय जन्तुओं के लिए मुख्य बाधक होते है।

10.2.1 समुद्रीय आवास की विशेषताऐ (Characteristic feature of the marine habitat)

(1) **तापक्रम (Temperature) :** पृथ्वी की सतह की तुलना में समुद्रों का तापमान कम विभिन्नताएँ रखता है। अक्षांशों के अनुसार तापमान में भिन्नता पाई जाती है। समुद्र का तापमान आर्कटिक क्षेत्र में 9 C से ट्रोपिकल क्षेत्र में 27 C तक पाया जा सकता है। सामान्यत: समुद्री जल -2 से -3 C तक ठण्डा व 35 C तक गर्म पाया जा सकता है।

मौसमी व दैनिक क्रियाओं के कारण तट का तापमान खुले समुद्रों की अपेक्षा अधिक भिन्नता दर्शाता है। गहरे समुद्रों का जल लगभग जमाव बिन्दु के पास पाया जाता है। तापमान एक मुख्य सीमाधारी कारक होता है क्योंकि यह दूसरे अजैविक व जैविक कारकों से अन्तरक्रिया करके इन्हें प्रभावित करता है। जैसे:-

(i) तापक्रम के बढ़ने से जल का घनत्व कम होता जाता है।

(ii) जल का घनत्व कम होने व तापमान बढ़ने से जल में विलय ऑक्सीजन कम होती जाती है।

(iii) ऑक्सीजन के कम होने से जीव जात का वितरण प्रभावित होता है।

समुद्री प्राणियों में तापक्रम के अनुरूप कुछ संरचनात्मक विभिन्नताएँ भी पाई जाती है। जो इन्हें समुद्री आवास में रहने योग्य बनती है।

(2) **लवणता (Salinity) :** समुद्रीय आवास की औसत लवणता 3.5% तक होती है। समुद्री जल मुख्य रूप से सोडियम तथा क्लोरीन लवण के कारण खारा होता है। यह लवण औसत लवणता का 80% भाग बनाते है।

इनके अलावा कैल्सियम, पोटेशियम, मैगनीशियम, सल्फर, कार्बोनेट व बाइकार्बोनेट आयनों के कारण भी जल में लवणता पाई जाती है।

समुद्रीय जल इन्हीं लवणों के कारण थोडा क्षारीय होता है। लवणता में परिवर्तन होने से जल का विशिष्ट गुरूत्व परिवर्तित हो जाता है।

(3) **प्रकाश (Light) :** प्रकाश भी एक महत्वपूर्ण कारक है जो समुद्रीय आवास के वातावरण को प्रभावित करता है। समुद्र की ऊपरी सतह सूर्य द्वारा पूर्णतः उद्भासित होती है। जबकि गहराई बढ़ने से प्रकाश की तीव्रता क्रमशः कम होती जाती है। गहरे समुद्रों में 2000 मीटर की गहराई पर अन्धकार प्रारम्भ हो जाता है। प्रकाश की तीव्रता गहराई के साथ साथ समुद्रों के गंदलेपन पर भी निर्भर करती है।

तटीय क्षेत्रों के कम गहरा होने के कारण यह प्रकाश द्वारा उद्भासित होते है। किन्तु तटों पर बन्दरगाह, मछली पालन, ज्वार आदि के कारण यहाँ समुद्री जीव जात व उत्पादकता कम पाई जाती है।

गहरे खुले मध्यीय समुद्रो में प्रकाश संश्लेषण के कारण उत्पादकता अधिक देखी गई है। प्रकाशीय भेदन के आधार पर समुद्री क्षेत्रों को सुप्रकाशित क्षेत्र (Euphotic Zone) दुष्प्रकाशित क्षेत्र (dysphotic Zone) एवं अप्रकाशित क्षेत्र (aphotic Zone) में विभक्त किया गया है। गहरे समुद्रों में प्रकाशहीनता के कारण यही के जन्तु विशेष रूप से अनुकूलित होते है तथा इनमें जैव प्रदीप्ती (Bioluminescence) का गुण पाया जाता है।

(4) **दाब (Pressure) :** समुद्रीय आवास में दाब एक महत्वपूर्ण भौतिक कारक है। जो गहराई बढने के साथ बढ़ता जाता है। दाब का मान समुद्री सतह पर 1 atm एवं अत्यधिक गहराई पर 1000 atm तक होता है। दाब एक ऐसा कारक है जो स्थलीय वातावरण में अधिक परिवर्तित नहीं होता है बजाये समुद्री वातावरण के। अतः दाब समुद्री जीव जात के वितरण में मुख्य भूमिका निभाता है, कुछ जन्तु अत्यधिक दाब को सहने के लिए अनुकूलित हो जाते है अतः गहराई में पाये जाते है। जबकि कुछ ऊपरी सतह पर पाये जाते है। अत्यधिक दाब के कारण गहराई में रहने वाले जन्तु प्रायः चपटे होते है।

(5) **लहरें (Waves) :** लहरे भी समुद्रीय आवास का एक मुख्य लक्षण है। समुद्रों में बहुत ऊँचाई तक लहरें देखी जा सकती हैं। लहरें अन्तः ज्वारीय (inter tidal zone) क्षेत्रों को अधिक प्रभावित करती है।

लहरों के कारण समुद्रीय तटों की आकृति परिवर्तित होती रहती है। लहरों के कारण ही तटों का जल समुद्री जल के सम्पर्क में बना रहता है और शुद्ध होता रहता है।

(6) **ज्वार (Tides) :** सूर्य एवं चंद्रमा के गुरूत्वीय आकर्षण के कारण समुद्रो में ज्वार आते है। ज्वार के कारण समुद्रीय जल रत्तर कम व ज्यादा होता रहता है। ज्वारीय लहरें 12 घण्टे में एक बार आती है। कभी कभी जार की क्षमता अधिक होने के कारण यह तटीय क्षेत्रों को नुकसान भी पहूंचाते है। तटीय क्षेत्र ज्वार के कारण अधिक प्रभावित होते है जिससे यही का जीवजात भी प्रभावित होता है।

(7) **जल धाराएँ (Water Currents) :** समुद्रों में धाराओं का चलना ध्रुवों व विषुवत रेखा के बीच तापमान की भिन्नता पर निर्भर करता है। वायु के तापमान में परिवर्तन से तेज हवाएँ चलती है। जो समुद्रो में जल धाराओं को उत्पन्न करती है। धाराओं के कारण गर्म व ठण्डा जल मिश्रित होता रहता है। इसमें समुद्रों का तापमान स्थिर बना रहता है। धाराओं के कारण जल का तापमान जल में विलेय ऑक्सीजन, प्रकाश तीव्रता, व अन्य खाद्य पदार्थों की उपलब्धता एक समान बनी रहती है। जल धाराओं के कारण जन्तुओं का वितरण विश्वव्यापी बना रहता है।

10.3.2 समुद्रों का क्षेत्रीयकरण (Zonation of Sea)

हेडगेपाथ (Hedgepath - 1957) ने समुद्रीय आवास को मुख्य रूप से दो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया

(1) बेलापवर्ति क्षेत्र (Pelagic Zone)

(2) नितलस्थ क्षेत्र (Benthic Zone)

यह वर्गीकरण गहराई व प्रकाश की मात्रा पर निर्भर था। समुद्र के ऊपर के क्षेत्र को जिसमें प्रकाश अधिक तीव्रता से प्रसारित होता है उसे बेलापवर्ति क्षेत्र कहा गया तथा पैंदे के अंधकारमय क्षेत्र को नितलस्थ क्षेत्र कहा गया। यह विभाजन समुद्र को क्षैतिज रूप से वर्गीकृत करता है।

समुद्रों का क्षेत्रीयकरण निम्न आरेख द्वारा समझा जा सकता है:-

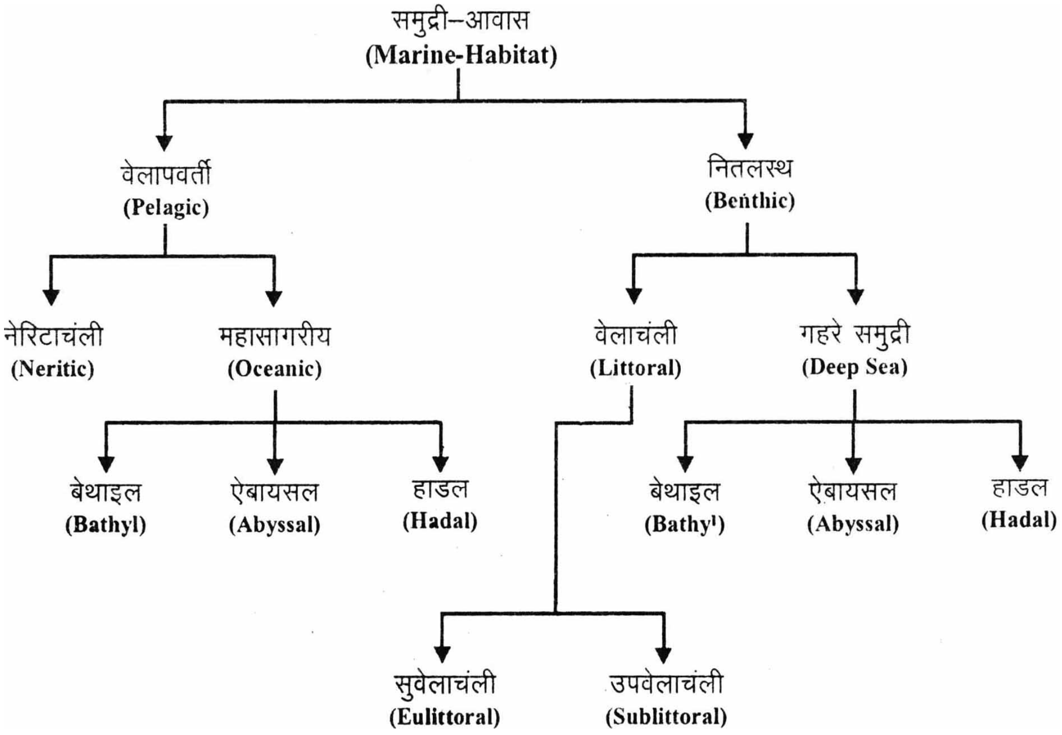

I. **बेलापवर्ती क्षेत्र (Pelagic Zone) :** यह समुद्र का सतही क्षेत्र है। यह सूर्य द्वारा उद्भासित होता रहता है। यह नितलस्थ (Benthic) क्षेत्र के ऊपर का सम्पूर्ण जल राशि क्षेत्र है। सतह पर क्षैतिज रूप से यह क्षेत्र पुन: नेरिटीक (neritic zone) क्षेत्र एवं महासागरीय (oceanic zone क्षेत्रों मे बेटा रहता है।

(A) **नैरिटीक (Neritic Zone) क्षेत्र**

- यह समुद्र का तटीय क्षेत्र होता है।
- यह छिछले पानी का वह क्षेत्र है जिसकी गहराई 200 मीटर है। यह समुद्र में 200 मीटर की लम्बाई तक क्षैतिज रूप से फैला रहता है।
- समुद्र के किनारे से मध्य में जाने पर यह ढलान प्रदर्शित करता है। यह ढलनीय क्षेत्र महाद्वीपीय शेल्फ (continental shelf) कहलाता है।
- यह क्षेत्र स्थलीय वातावरण के समीप होने के कारण वातावरणीय कारकों द्वारा अधिक प्रभावित होता है।
- इस क्षेत्र में व्यवसायिक रूप से मछली पालन भी किया जाता है।
- फाइटोप्लैक्टोन, जूप्लैंक्टोन और मछलियाँ यहाँ का जीवजात (Biota) होता है।
- ज्वार भाटा आने के कारण यह क्षेत्र फिर से निम्न तीन उपछेत्रों में विभाजित किया गया है

(1) ज्वारोपरि उपक्षेत्र (Supra-tidal Subzone)

(2) अंतराज्वारीय उपक्षेत्र (Inter-tidal Subzone)

(3) उपज्वारीय उपक्षेत्र (Sub-tidal Subzone)

(B) **महासागरीय क्षेत्र (Neritic Zone) :** महाद्वीपीय शेल्फ से आगे का खुला मध्यवर्ती क्षेत्र महासागरीय क्षेत्र कहलाता है। यह 1000 मीटर की गहराई तक फैला रहता है।

- यह क्षेत्र स्थलीय वातावरण के प्रभाव से मुक्त। होता है।
- इस क्षेत्र को गहराई व प्रकाश की तीव्रता के आधार पर पुन: 3 उपक्षेत्रो में विभाजित किया गया है।

(1) बेथाइल (Bathyl) (2) ऐबायसल (Abyssal) (3) हाडल (Hadal)

प्रकाश की तीव्रता के आधार पर बेलापवर्ति क्षेत्र (pelagic zone) उदग्र रूप से दो. भागों में बाँटा होता है।

(1) **सुप्रकाशित क्षेत्र (euphotic zone) :** यह समुद्र का ऊपरी जल क्षेत्र है जिसमें प्रकाश की तीव्रता अधिक पाई जाती है। प्रकाश के कारण प्रकाश संश्लेषण की अधिकता होती है। इसलिए इस क्षेत्र को उत्पादक क्षेत्र (producing zone) कहते है। यह क्षेत्र 100 से 200 मीटर तक गहराई वाला क्षेत्र होता है।

(2) **अप्रकाशित क्षेत्र (aphotic zone) :** यह क्षेत्र सुप्रकाशित क्षेत्र के नीचे उपस्थित होता है। यह कम प्रकाशित क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र की गहराई में प्रकाश पूर्णतया अनुपस्थित होता है। अत: प्रकाश संश्लेषण सम्भव नहीं होता है। इसलिए उसे उत्पादकता विहीन क्षेत्र कहते है। यहाँ जल का तापमान भी कम होता है। इस क्षेत्र में जन्तु कम पाये जाते है और यह अपना भोजन मृत पादपों व जन्तुओं से ग्रहण करते है।

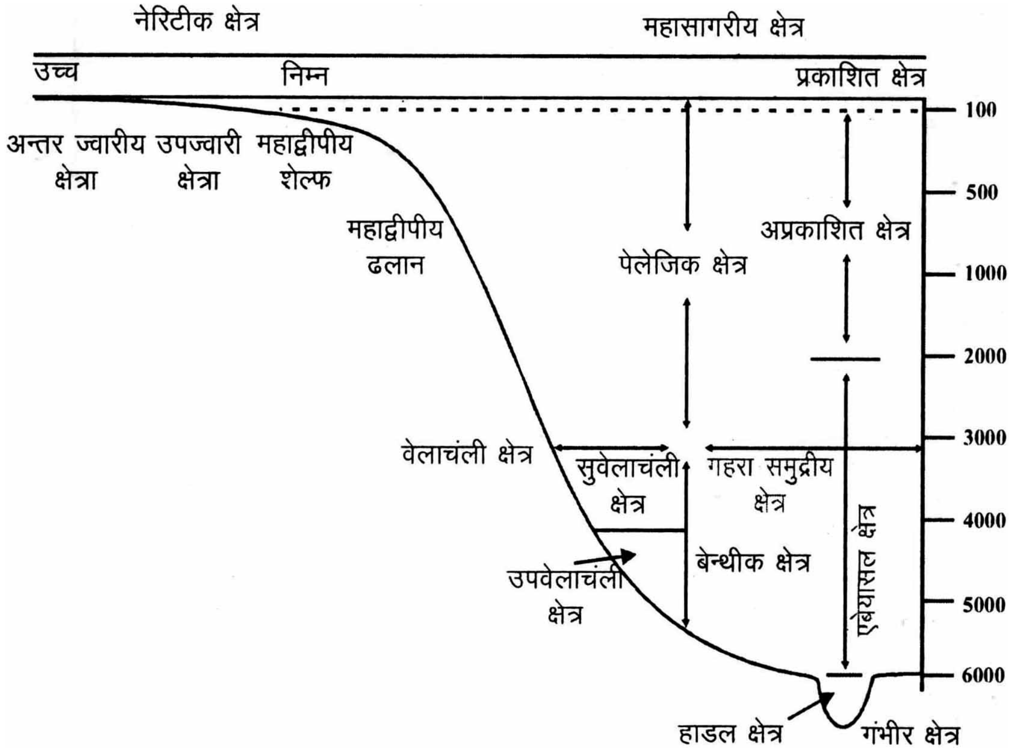

चित्र 10.1 : समुद्रीय आवास का क्षेत्रीकरण

10.3.3 महासागरीय क्षेत्र का जीवजात (Biota of Oceanic Zone)

(1) **प्रकाशित क्षेत्र का जीवजात :** इस क्षेत्र में प्रकाश की उपलब्धता होने के कारण यही उत्पादकता (Producers) उपभोक्ता (Consumers) और विघटनकारी (Decomposers) सभी पाये जाते है।

(i) उत्पादक (Producers) : जैसे हरी भूरी और लाल शैवाल, डायटम्स, डायफैलैजिलेट्सं जन्तु।

(ii) उपभोक्ता (Consumers) : जूप्लैक्टोन जैसे प्रोटोजोआ कृस्टेशियनस, मॉलस्का और सीलन्ट्रेटा जन्तु। तैरने वाले लोलिगो सीपिया, ऑक्टोपस।

(iii) विधटनकारी (Decomposers) : बैक्टीरिया, कवक आदि।

(2) **अप्रकाशित क्षेत्र का जीवजात :** यहाँ उत्पादन शून्य के बराबर होता है क्योंकि यहाँ प्रकाश अनुपस्थित होता है।

प्रकाश संश्लेषण के अभाव में यहाँ उत्पादक अनुपस्थित होते है। उपभोक्ता के रूप में कुछ मछलियाँ पाई जाती है।

बेलापवर्ती जीवजात (Pelagic Biota)

इस क्षेत्र के मुख्य जीवजात प्लैंक्टोन (Plankton) एवं नेक्टोन (Nekton) के रूप में पाये जाते है। प्लैंक्टोन जन्तु जल की सतह पर तैरने वाले जीव होते है।

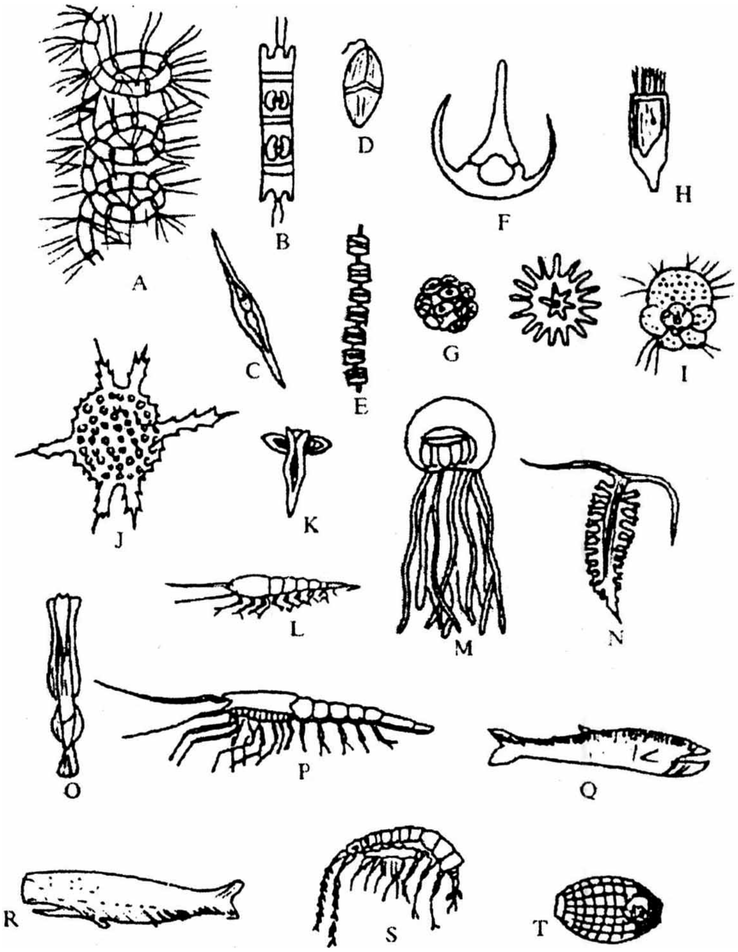

चित्र 10.2 : वेलापवर्ती क्षेत्र का जीवजात

प्लवक (Plankton) दो प्रकार के होते है।

(a) **पादप प्लवक (Phyto plankton) :** यह ऐसे जीव है जो हरितलवक की उपस्थिती के कारण प्रकाश संश्लेषण करने की क्षमता रखते है और जल की सतह पर मुक्त रूप से तैरते, है। यह सभी स्वयंपोषी का कार्य करते है। अत: उत्पादक कहलाते है।

(b) **प्राणी प्लवक (Zoo Plankton) :** यह प्रकाश संश्लेषण नहीं करते है। क्योंकि इनमें हरितलवक अनुपस्थित होता है। अत: यह उत्पादक की भूमिका नहीं निभाते है।

उदाहरण : ट्रोकोफोर (Trochophore) : नोप्लियस (Nauplius). जोइया (Zoea), मायसिस (Mysis), एलिमा (Alima), लारवे वेलेला (Valella). फाइसेलिया (Physalia), जैलीफिसेज (Jelly fishes), केलेनस (Calanus), साल्पा (salpa), डोलियोलम (Doliolum)

वेलापवर्ती जन्तुओं में अनुकूलन (Adaptation of pelagic biota)

वेलापवर्ती जन्तुओं में तैरने के लिए निम्नांकित अनुकूलन पाये जाते है।

(1) **आकार एवं आकृति (Shape and Size) :** तैरने के लिए इन जन्तुओं का आकार रोम सदृश्य फीते की आकृति का, गोल, कुण्डलित और चपटा होता है।

(2) **पतला. एवं छिद्रित कवच :** इन जन्तुओ का बाह्य कवच पतला होता है। कवच छिद्रित होने के कारण हल्का भी होता है। जिससे यह आसानी से तैर सकते है।

(3) **अकेल्सीभूत बाह्मकक्कांल (Uncalcified Exoskeleton) :** इन जन्तुओ का कवच मृदु एवं कमजोर होता है। जैसे बोगिलो और अन्य गैस्ट्रोपोड जन्तु में कवच छासित होता है।

(4) **हल्का शरीर (Light Body) :** यह जन्तु जल को उत्तको में संग्रहित करने की क्षमता रखते है जिससे विशिष्ट गुरूत्व कम होने के कारण यह जल सतह पर तैर सकते है। उदाहरण साइनिया साल्पा, टीरोपोड आदि।

(5) **वात पुटिकाओं की उपस्थिति (Presence of pneumato phores) :** सिलेन्द्रेटा प्राणियों में गैस से भरी हुई न्यूमेटोफोर संरचना पाई जाती है जिसकी सहायता से वे जल में तैरते रहते है। जैसे:- फाइसिलिया।

(6) **लम्बे उपाँग (Elongated appendages) :** अनेक जन्तुओं में लम्बे उपांग पाये जाते है। जैसे मेगालोपा (Megalopa), फिलोसोमा (Phyllosoma), जोइया लारवा (Zoea Larva) आदि। यह प्राणि को जल मे तैरने में सहायता प्रदान करते है।

(7) **संवेदी अंगों की उपस्थिति :** विकसित तंत्रिका तन्त्र के कारण यह जन्तु संवेदी होते है और अपना भोजन व रक्षा कर पाते है।

(8) **पदमाओं की उपस्थिति :** इन जन्तुओ में पदमाओं की अधिकता देखी गई है। जैसे प्रोटोजोआ एवं मेटाजोआ जन्तु। पदमाओं की सहायता से यह जल धारा उत्पन्न करके भोजन प्राप्त करते है व जल की सतह पर तैर पाते है।

II. **नितलस्थ क्षेत्र (Benthic Zone)**

– इस क्षेत्र को समुद्र का पैंदा कहा जाता है। बेवांचली क्षेत्र के नीचे की सम्पूर्ण जल राशि नितलस्थ क्षेत्र में शामिल की गई है।

– यह क्षेत्र की वेलांचली क्षेत्र की भाँति विभाजित किया गया है।

– नेरेटीक क्षेत्र के ठीक नीचे तटीय नितलस्थ क्षेत्र वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone) में विभाजित किया गया है। नितलस्थ क्षेत्र

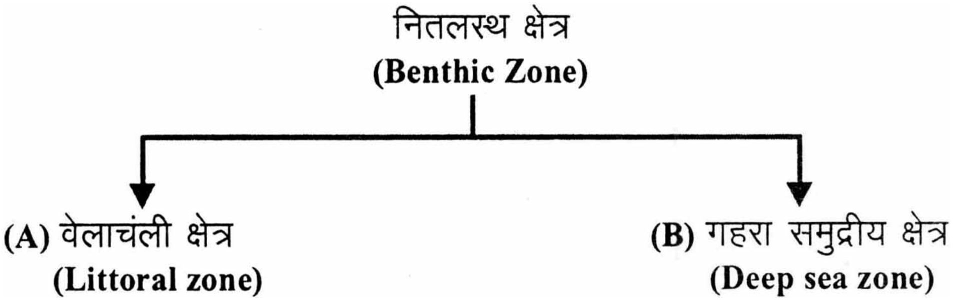

(A) **वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone) :** नेरेटीक क्षेत्र के निचे तट से 200 मीटर की गहराई व लम्बाई रखता है। प्रकाश की उपस्थिति व अनुपस्थिति के आधार पर इस क्षेत्र को फिर से दो उपक्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

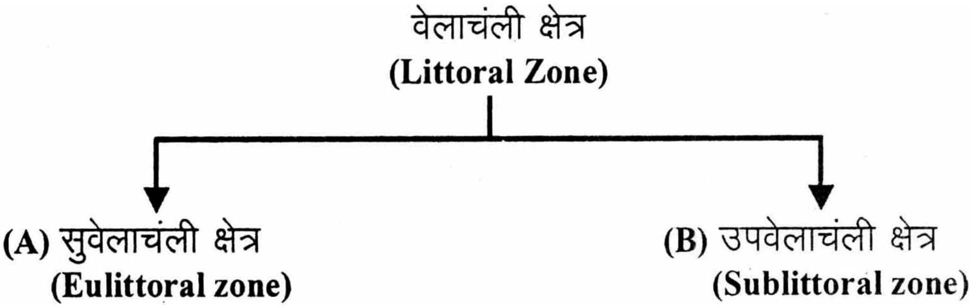

(a) वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone)

- यह क्षेत्र 40 से 60 मीटर तक गहरा क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में प्रकाश उपस्थित होने के कारण इसे सुवेलांचली क्षेत्र कहते है।
- यह क्षेत्र अन्तरज्वारीय क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है।
- इस समुद्री आवास का सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र है।
- इन छिदले क्षेत्रों में प्रकाश, जल का तापमान CO२ की प्रचुरता के कारण पादपों की वृद्धि तेजी से होती है। अत: यह उत्पादक क्षेत्र के समान होता है।
- उत्पादकता अधिक होने के कारण यहाँ उपभोक्ताओं की संख्या भी ज्यादा होती है। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के शैवाल घास एवं अन्य प्राणि प्रचुरता से पाये जाते है।

सुवेलाचली क्षेत्र अपने तल की भिन्नता के आधार पर पुन: तीन भागों में विभेदित किया गया है

(i) चट्टानी तट (Rocky Shore)

(ii) रेतीला तट (Sandy Shore)

(iii) दलदली तट (Muddy Shore)

(i) चट्टानी तट (Rocky Shore) : यह पथरीला तट होता है। कभी कभी शैवाल के जमा होने के कारण यह फिसलन युक्त भी होता है। चट्टानों के मध्य अवकाश जल से भरे रहते है। यहाँ पर्यावरणीय दशाएँ उपयुक्त होती है।

- **चट्टानी तट के प्राणि जात (Fauna of Rocky Shores)**

  चट्टानी क्षेत्रों में मुख्यतया स्थानबद्ध व कुछ तैरने वाले जन्तु भी पाये जाते है।

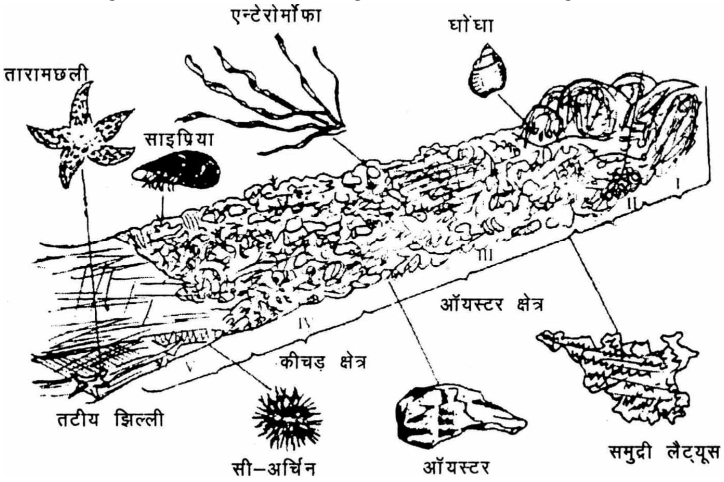

चित्र 10.3 : चट्टानी तट का जीवजात

इस क्षेत्र में मुख्य रूप से साइकन (Sycon), समुद्री एनिमोन (Sea Anemone), प्लमुलरिया (Plumularia), नेरीस (Nereis), सबेला (Sabella), बेलेनस (Balanus), एम्फीपोडस (Amphipods), लीपस (Lepas), सिहप्रिया (Cyprea), माइटिलस (Mytilus), पटेला (Patella), काइटन (Chiton), टेरेडों (Teredo), ओक्टोपस (Octopus), स्टारफिश (Starfish), ब्रिटल स्टार (Btittle Star), समुद्री कुकम्बर (Sea cucumbar), हर्डमानिया (Herdmania) आदि।

चट्टानी तट का अनुकूलन (Adaptations of Rocky Shore)

इस क्षेत्र के प्राणियों में आंसजन व सुरक्षा हेतु बहु त सी संरचनात्मक व क्रियात्मक अनुकूलता से पाई जाती है :

(1) **आसंजन अंगो की उपस्थिति (Presence of Organ for Adhesion) :** लहरों के कारण प्राणी एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते है। इससे बचने के लिए इन प्राणियों में आंसजन हेतु विशिष्ट रचनाएँ पाई जाती है। जैसे सीएनिमीन (Sea Anemone) में पेडल डिस्क (Pedal Disc), एसिडियन द्वारा चिपचिपे तरल का स्त्रावण, बेलेनस (Balanus) में सिमेन्ट ग्रंथियाँ, आसजी पदार्थों का स्त्रावण करती है।

(2) **स्थानबद्ध जीवन (Sessile Life) :** चट्टानों पर आसानी से चिपक सकने के कारण यह जन्तु स्थानबद्ध होते है।

(3) **शुष्कता से रक्षा (Prevention from Dessication) :** ये प्राणी अधिकांशत: बिलधारी होते है जिससे यह जल का संरक्षण करते है व शुष्कता से स्वयं की रक्षा करते है।

(4) **चपटा शरीर (Flattened Body) :** इन जन्तुओं का शरीर चट्टानों में छिपे रहने के कारण चपटा होता है। जैसे प्लेनेरिया (Planaria) एवं बोट्रिलस (Botrylus)

(5) **सुप्तावस्था (Suspended Position) :** प्रतिकूल वातावरण मे रक्षा हेतु यह जन्तु सुप्तावस्था धारण कर लेते है।

(6) **रक्षण विधियाँ (Defensive Mechanism) :** इन जन्तुओं में अपने शिकार से रक्षा हेतु कई अनुकूलन पाये जाते है। जैसे स्पंजो में कंटिकाओं का पाया जाना, सिलेत्रेट्स में दंश कोशिकाओं का पाया जाना।

(7) **सुरक्षात्मक कवच :** चट्टानी प्राणियों का आकार रंग एवं बाहय लक्षण इनके बाहरी वातावरण के समान होते है। जैसे ओक्टोपस का रंग, शैवालों का रंग आदि।

(ii) **रेतीला तट (Sandy Shore) :** रेतीले तट में समुद्री खरपतवार (Sea weeds) पाई जाती है। किन्तु यह तट अधिक स्थाई नहीं होता है। रेतीला तट भी चट्टानी क्षेत्र के समान होता है। केवल ज्वारीय लहरों का प्रभाव इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम होता है।

रेतीले तट के जीवजात (Fauna of Sandy Shore) :

रेतीले तट में सभी प्रकार के जन्तु पाये जाते है। सीलेन्ट्रेटा संघ के: फाइसेलिया (Physalia), वलेला (Velella), समुद्री एनीमोन्स (sea Anemone), एनिलिडा (Annelida)। संघ के एरेलिकोला (Arenicola), ग्लाइसेरा (Glycera), नेफ्थीस (Napthys), आर्थोपोडा (Arthropoda)। संघ के हर्मिट क्रेब (Hermit Crab), हिया (Hippa), नेप्टुनस

(Neptunus), घोस्ट क्रेब (Ghost Crab) आदि। मॉलस्का (Mollusca), संघ के: सोलेन (Solen), म्यूरेक्स (Murex), कार्डिचन (Cardium), ओलिवा (Oliva), अर्का (Arca), इकाइनोडर्मेटा(Echiinodermata)। संघ के: होलोथूरिया(Holothuria), कूकूमेरिया (Cucumaria), पेन्टासिरोस(Pantaceros), ऐस्ट्रोपेक्टोन (Astropecten), प्रोटोकॉर्डेटा(Protochordata), जैसे बेलैनोग्लोसस (Balanoglossus), एम्फिओक्सस (Amphoioxus) आदि जन्तु इस आवास में पाये जाते है।

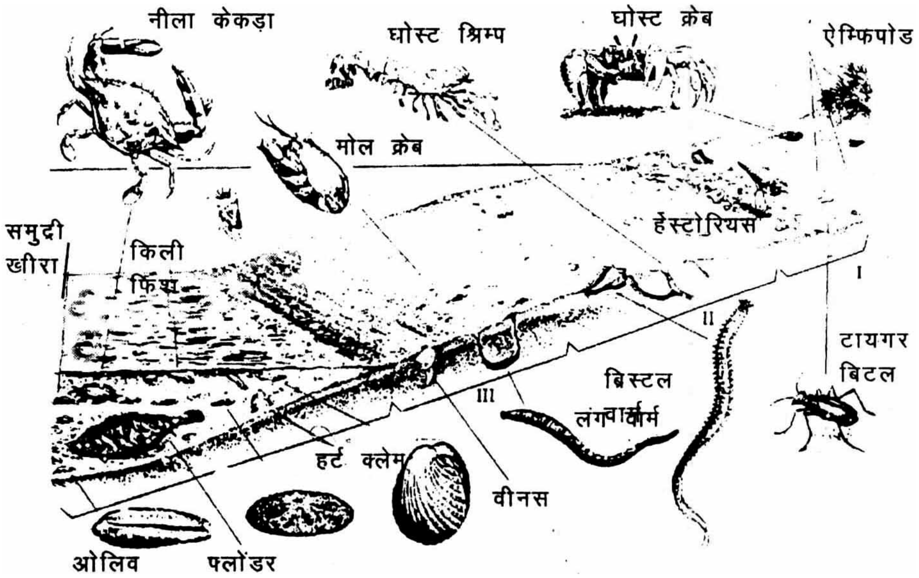

10.4 रेतीले तटों के जीवजात

रेतीले तटों के अनुकूलन (Adaptation of Sandy Sea Shores Animals)

(1) **बिलकारी प्रवृति (Burrowing Nature) :** ये जन्तु बिल में रहते है। यही यह शुष्कन प्रभाव, कम लवणता, चरम तापमान आदि से अपना बचाव कर पाते है।

(2) **खोदने वाले अंग (Digging Organ) :** बिलकारी स्वभाव के कारण यह जन्तु मिट्टी खोदने वाले अंग रखते है।

(3) **पक्ष्माभ पोषित (Ciliary Feeding) :** यह जन्तु सड़े गले कार्बनिक पदार्थों को भोजन के लिए ग्रहण करते है। यह अपने देह पक्ष्माभ द्वारा भोजन ग्रहण करते है।

(4) **श्वसन धारा का निर्माण (Water Current) :** यह जन्तु विभिन्न प्रकार से बिलों में श्वसन धारा बनाते है जिससे जल भोज्य पदार्थों के साथ प्रवेश करता रहता है।

(5) **चपटा शरीर व कवच (Flattened Body & Shell) :** बिलक्षरी स्वभाव के कारण यह जन्तु चपटा कवच रखते है व शरीर भी समतल या बेलनाकार होता है।

(6) **वायु कोष की अनुपस्थिति (Absence of Air Bladder) :** कुछ जन्तुओं व मछलियों में भी रेत में रहने के कारण वायुकोष अनुपस्थित होते है।

(7) **कम ऑक्सीजन तनाव (Low Oxygen Tension) :** एरेनिकोला जन्तु बिल में कम ऑक्सीजन दाब पर भी जीवित रह सकता है।

(8) **रेतीले तट में अण्डलयन (Egg Laying in Sandy Shore) :** रेतीले तट अण्डे देने के लिए सुरक्षित स्थानों के रूप में प्रयोग किये जाते है। समुद्री कछुए अपने अण्डों को रेत में ही देते है।

(iii) **दलदली तट (Muddy Shore) :** समुद्र के किनारे जहाँ रेत की अधिकता होती है दलदली तटों का निर्माण करते है। कीचड़ में मिट्टी, गाद एवं कार्बनिक पदार्थो की प्रचुरता भी पाई जाती है। इन स्थानों पर ऑक्सीजन की कमी पाई जाती है। मिट्टी के नीचे अवायवीय क्रियाओं के कारण गंध युक्त गैरने निकलती रहती है।

दलदली तटों में मृत कार्बनिक पदार्थों की प्रचुरता के कारण भोजन की बहुलता होती है। दलदली क्षेत्र में ईल घास, समुद्री लेट्पूस (Culva) मुख्य रूप से पाई जाती है। इन क्षेत्रों में ऑक्सीजन की संतृप्तता और CO_2 की मात्रा भिन्न होती है।

दलदली तट के जीवजात (Fauna of Muddy Shore) :

दलदली तटो में स्पंज (Sponge), सिलेन्द्रेटा (Coelenterata), ऐनेलिडा(Annelida), आर्थोपोडा(arthropoda), मॉलस्का(Molluseca) व इकाईनोर्डमटा (Echinodermata) सभी के जन्तु पाये जाते हैं। प्रमुख जन्तुजात हेलीकोण्ड्रीया (Helichondria), एफोडाइट (Aphrodite), एरेनिकोला (Arenicola), नीरीस(Nereis), अएलोगेस्टर(Aulogaster), हर्मिट क्रेब (Hermit Crab), लोबस्टर (Lobster), दलदली कैंकडा (Mud Crab), पिन्ना (Pinna), टेरेडो (Teredo), म्या (Mya), तारामीन (Star Fish), समुद्री खीरा (Sea Cucumber) व एसीडिया (Ascidia)।

दलदली तटीय प्राणियों के अनुकूलन (Adaptation of Muddy Shore Animal)

(1) **बिलकारी प्रवृति (Burrowing Nature) :** यह जन्तु भी बिलों मे रहने के लिए अनुकूलित होते हैं।

(2) **श्लेष्मा स्त्राव :** ऐनेलिडा संघ के मुलायम शरीर वाले प्राणी अपने शरीर से म्यूकस का स्त्राव करते हैं।

(3) **हासित संवेदी अंग (Reduced Sense Organ) :** बिलकारी होने के कारण तंत्रिका तन्त्र व संवेदी अंग अल्प विकसित होते हैं।

(4) **रंजकता (Pigmentation) :** इन प्राणियों के शरीर का रंग धूमिल हरा भूरा प्रकार का होता है जो इनकी शिकार से रक्षा करता है।

(5) **चौड़े पाद (Broad Foot) :** इन जन्तुओं के चौडे पाद जल में तैरने में सहायता करते है।

(6) **भोजन अंतर्ग्रहण (Feeding) :** यह जन्तु फिल्टर फीडिंग, डिपोजिट फीडिंग व डेट्रिटस फीडिंग करते हैं।

(7) **अल्प विकसित पेशीतन्त्र (Less Developed Musculature) :** दलदली प्राणियों में पेशियाँ कम विकसित होती है। शरीर मुलायम होता है। कवच पतला होता है।

(b) **उपवेलांचली क्षेत्र (Sub-Littoral Zone) :** यह क्षेत्र सुवेलांचली क्षेत्र के नीचे 200 मीटर की गहराई तक फैला रहता है। यह क्षेत्र मृदु मिट्टी युक्त होता है। यह क्षेत्र भी प्राणियों की विविधता

युक्त होता है। क्योंकि इस क्षेत्र में प्रचुर भोजन, ऑक्सीजन और उपयुक्त तापमान पाया जाता है। इरा क्षेत्र में प्रवाल भितियॉ सर्वाधिक विकसित होती है।

उपवेलांचली क्षेत्र के जीवजात (Fauna of Sublittoral Zone) :

इस क्षेत्र में स्पंज जैसे केलीस्पोंजिया (callyspongia), स्पाइरेस्ट्रेला (Sprirastrella), सिलेन्ट्रटा जैसे: पेन्नेरिया (Pennaria), ट्युबुलेरिया (Tublaria), एल्सायोनियम (Alyonium), ऐनेलिड जैसे: निरीस (Nereis), यूनिस (Eunice), डेन्ड्रोस्टोमम (Dendrostomum); मोलस्का (Molluss) जैसे: डोरिस (Doris), नाटिका (Natica); सिप्रिया (Cyprea), टर्बो (Turbo), इकाइनोडर्म जैसे: होलोथूरिया (Holothuria), प्रोटेस्टर (Protester), सरिसृप जैसे: कोरल सूप (Coral) आदि पाये जाते हैं।

(B) **गहरा समुद्रीय क्षेत्र (Deep Sea Zone) :** यह क्षेत्र महासागरीय क्षेत्र के ठीक नीचे का गहरा जल क्षेत्र है। यह क्षेत्र सबसे अधिक गहरा व अंधकारमय होता है। गहराई के कारण यह अपेक्षाकृत स्थिर क्षेत्र है। यहाँ सदैव सम्पूर्ण अंधकार पाया जाता है। यहाँ का तापमान बहुत कम पाया जाता है। इस क्षेत्र को प्रकाश की भेदन क्षमता के आधार पर मुख्य रूप से तीन उपक्षेत्रों में विभेदित किया गया है।

(i) **बैथायल क्षेत्र (Bathyal Zone)**

- यह क्षेत्र 1500 मीटर की गहराई पर स्थित होता है।
- यहाँ अर्द्धअंधकारमय वातावरण पाया जाता है।
- यहाँ उत्पादक अनुपस्थित होते है।
- यहाँ मछलियों की विभिन्न प्रजातियां पाई जाती है।

(ii) **ऐबायसल क्षेत्र (Abyssal Zone)**

- यह अधिक गहरा अंधकारमय क्षेत्र होता है।
- यही प्रकाश संश्लेषण व उत्पादक अनुपस्थित होतें हैं।
- यहाँ ऑक्सीजन व प्रकाश नहीं पाये जाते हैं।
- यहाँ का तापमान बहुत कम होता है।
- इस क्षेत्र में दबाव अत्यधिक होता है।
- 98% सागरीय जातीयॉ यहाँ पाई जाती है।
- जन्तु परभक्षी प्रकार के, व माँसाहारी होते हैं।
- जन्तुओं में जैव प्रदीप्ती का गुण पाया जाता है।
- यहाँ विघटनकारी बैक्टीरीया पाये जाते हैं।

(iii) **हाडल क्षेत्र (Hadal Zone) :** यह गम्भीरी क्षेत्र भी कहलाता है। यह वास्तव में गहरे विदर या गर्त होते लै जो ऐबायसल जोन के भी नीचे स्थित होते हैं। यह भी पूर्ण अंधकारमय क्षेत्र होता है। यह बहुत ठंडा क्षेत्र होता है। यही अल्पविकसित नेत्रों वाले जन्तु पाये जाते है या वे अन्धे होते है। ये जन्तु अपनी देहसतह द्वारा रोशनी उत्पन्न करते है।

गहरे समुद्रीय आवास की विशेषताएँ (Charateristics of Deep Sea Habitat)

(1) **प्रकाश (Light) :** इस क्षेत्र में अंधकार पाया जाता है। अत: उत्पादक विहीन क्षेत्र होता है।

(2) **तापमान (Tenperature) :** इस क्षेत्र में तापमान हमेशा कम होता है। यहाँ तापमान -2 to 3 C तक पाया जा सकता है।

(3) **दाब (Pressure) :** यहाँ दबाव अत्यधिक होता है जिसके कारण जन्तु चपटे होते है।

(4) **भोजन की कमी (Scarcity of Food) :** प्रकाश की अनुपस्थिती के कारण प्रकाश संश्लेषण अनुपस्थित होता है। अत: यह क्षेत्र पोषण की दृष्टि से न्यून होता है।

(5) **ऑक्सीजन मात्रा (Oxygen Content) :** गहरे समुद्री आवासों में उच्च दबाव के कारण ऑक्सीजन की मात्रा 5.88 सी.सी / लीटर होती है।

गहरे समुद्री आवास का जीवजात (Fauna of Deep Sea)

– इस क्षेत्र की परिस्थियॉ प्रतिकूल होती है अंत: जन्तुजात कम पाया जाता है।

इस क्षेत्र में रेडियालेरियंस जैसे प्रोटोजोआ, हायलोनीमा फीरोनीमा स्पंज की अनेक प्रजातियां सिलेन्ट्रेट जैसे: स्टोनी कोरल, सी पेन, सी एनीमोन एनिलिड जैसे: एरेनिकोला सबेला में तथा बार्नेकल, क्रेब, लोबस्टर, श्रीम्प लीमूलस प्रकार के आर्थोपोडा पाये जाते है। मोलस्का संघ के जन्तुओं के काइटन, गेस्ट्रोपोड प्रमुखतया पाये जाते हैं। मछलियों में काइमिरा, क्रिप्टोसिरस, लिनोक्रीने आदि पाई जाती हैं।

गहरे समुद्री आवास के अनुकूलन (Deep Sea Adaptation) :

गहरा समुद्रीय आवास अपने आप में विशिष्ट क्षेत्र होता है। यही की वातावरणीय परिस्थियॉ अपने अजैविक कारकों का विशिष्ट समुच्च रखती है। इस प्रकार इस स्थान पर पाया जाने वाला जीवजात विशिष्ट प्रकार की संरचनात्मक व क्रियात्मक विविधता रखता है। यह जन्तु अपने आकार, स्वरूप व व्यवहार में पृथक होते है।

गहरे समुद्री आवास के मुख्य अनुकूलन निम्न प्रकार हैं :

(1) **आकार (Size) :** गहरे समुद्रीय आवास मे दबाव के ज्यादा होने के कारण जन्तु छोटे आकार के होते है जिससे यह गातिशील रह सके। साथ ही भोजन की कमी भी एक कारण है जिससे यह जन्तु छोटे आकार के होते हैं।

(2) **शरीर आकृति (Body Forms) :** यह जन्तु मुख्यत: चपटे व बेलनाकार होते हैं। शरीर का आकार धारारेखित, शंकुकार प्रकार का पाया जाता है। साथ ही कुछ जन्तुओं की लम्बी टाँगें, लम्बी पूँछ, पार्श्व सम्पीडित शरीर भी पाया जाता है।

(3) **कंकाल (Skeleton) :** इस आवासीय क्षेत्र के प्राणियों का कंकाल मृदु (Soft) एवं अकेल्सीभूत होता है। यही सदैव आर्द्रता रहने के कारण इन्हें कठोर कंकाल की आवश्यकता नहीं रहती है। साथ ही समुद्र का यह क्षेत्र अत्यधिक ठंडा होने के कारण जन्तु कैल्शियम का संश्लेषण नहीं कर पाते है। इसी कारण इस क्षेत्र में कवच युक्त मुक्ता सीपी, घोंघे, केल्केरियस स्पंजो का अभाव होता है। कोरल भी यहाँ नही बनते हैं क्योंकि इनकी वृद्धि के लिए एक उचित तापमान की आवश्यकता होती है।

(4) **जैव संदीप्ती (Bioluminescence) :** गहरे समुद्रों में घोर अंधकारमय वातावरण के लिए जीवों में विशिष्ट प्रकार का अनुकूलन पाया जाता है यह है जैव संदीप्ती। इससे जन्तु के कुछ विशिष्ट दैहिक भाग जैसे अधिचर्म का स्तर, ऑखो की पुतलियाँ या नेत्र सदृश्य संवेदाँग अंधेरे में अचानक चमकते हैं और फिर यह प्रकाश ओझल हो जाता है। इस प्रकार कि क्रिया द्वारा

जन्तु अपने विपरीत लिंग के जन्तु को आसानी से खोज पाता है। साथ ही यह क्रिया इसे भोजन व परभक्षण में भी मदद करती है।

(5) संवेदी अंग (Sensory Organ) : गहरे समुद्रीय आवास में दृश्य अंग अल्पविकसित या अनुपस्थित होते हैं। किन्तु अन्य संवेदॉग अतिविकसित होते हैं। जैसे कृस्टेशिया के सदस्यो में एंटीना शरीर से भी लम्बी होती है। मछलियों में फिन रश्मिया लम्बी होती हैं। स्टाइलोफोरस पेराडोक्सस में पूँछ फिन (Caudal fin) एक लम्बे तंतु के समान हो जाती है। साथ ही रसायनग्राही, स्पर्शग्राही, घ्राणग्राही अंग विशिष्ट प्रकार के पाये जाते हैं।

(6) पार्श्व रेखा तन्त्र (Lateral Line) : यह तन्त्र भी संवेदी प्रकार के अंग की भाँति कार्य करता है। जिससे जन्तु अपने आसपास के जीवों से उचित दूरी बनाये रखता है। जैसे मछलियों की प्रजातिया।

(7) श्लेष्मा ग्रथियाँ (Mucous Gland) : श्लेष्मा ग्रंथियाँ भी इन जन्तुओं में पाई जाती हैं, जिससे यह चिकने बने रहते है और शिकार से अपनी रक्षा कर पाते हैं।

(8) लैंगिक अनुकूलन (Sexual Adaptation) : इन जन्तुओं में जनन एक विशिष्ट मौसम में ही होता है। इससे विपरीत लिंग के सदस्यों की बहुलता आसानी से पायी जाती है। नर व मादा सदस्य विशिष्ट प्रकार का आकर्षण प्रदर्शित करते हैं। कुछ जन्तु एक दूसरे से संगलित भी पाये जाते है जैसे एंगलर फिश (Angler Fish) में नर सदस्य, प्रजजन काल में मादा के साथ चिपका रहता है। निषेचन बाह्य प्रकार का होता है।

(9) रंजकता (Colour) : अधिकॉश सदस्य रंगहीनता प्रदर्शित करते हैं। फिर भी कुछ जन्तुओं में लाल, भूरा, बैगनी, नीला रंग प्रभावी रूप से देखा गया है।

(10) बहु पीतकी अण्डे (Polylecithal Egg) : अधिकाँश मछलियों के द्वारा बहु पितकी अण्डे दिये जाते हैं। इन अण्डों में स्फोटन लम्बे समय बाद देखा जाता है। कुछ मछलियाँ जरायुज (viviparous) प्रकार की भी होती है।

(11) कम उपापचय दर (Low Metabolic Rate) : गहरे समुद्रों में तापमान कम होने के कारण इन जन्तुओं की उपापचय दर भी कम पायी जाती है।

बेलासंगम आवास (Estuarine Habitat)

'बेलासंगम इसे नदी का मुख (Mouth of River) भी कहा जाता है। यह वह विशिष्ट स्थान होता है जहाँ पर एक नदी समुद्र में जाकर मिलती है। यह स्थान स्वच्छ जलीय आवास एवं सागरीय आवास के मध्य का आवासीय क्षेत्र होता है जो इन दोनों आवासों के मिले जुले लक्षण प्रकट करता है। इस स्थान की पारिस्थितिकी विशिष्ट प्रकार की होती है। यहाँ का तापमान, लवणता, पोषक पदार्थों की मात्रा, ऑक्सीजन की विलेयता व जन्तु जात की बहुलता अपने आप में विविध रूप लिये होती है।

एल्लिट्रन्धम (Eltringham-1971) के अनुसार जब नदियों का शुद्ध जल समुद्रीय जल के साथ विलिन होता है जो बेला संगम बनते हैं। इन स्थानों पर जल की सान्द्रता स्थलीय व मौसमी कारणों द्वारा परिवर्तित होती रहती है। जार के समय यहाँ का जल अधिक लवणता प्रदर्शित करता है। जबकि वर्षा के समय यह तनु हो जाता है।

बेलासंगम आवास की विशेषताएँ (Characteristic of Estuary)

यह क्षेत्र दो आवासों के उभयनिष्ट लक्षण प्रदर्शित करता है। इस क्षेत्र के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं।

(1) **तनाव क्षेत्र (Ecological ecotone) :** पर्यावरण की दृष्टि से बेलासगम क्षेत्र, एक प्रकार का तनाव क्षेत्र (ecotone) होता है क्योंकि यहाँ दो आवासों का संगम होता है।

(2) **डेल्टा निर्माण (Delta Formation) :** नदी जहाँ समुद्र में आकर मिलती है। यह मिट्टी का ढेर जमा कर देती है। यह डेल्टा का निर्माण करता है।

(3) **जल का संघटन (Composition of Water) :** ज्वारीय क्षेत्र होने के कारण व स्थलाकृति से जुड़े होने के कारण, जल की सान्द्रता लवणों के सान्द्र व तनु होने के कारण परिवर्तित होती रहती है।

(4) **जल स्तर में उच्चावचन (Fluctuation in Water Level) :** बेलासंगम में अनियमितता के कारण वर्ष भर जल का स्तर घटता बढ़ता रहता है। ग्रीष्म ऋतु में यह स्तर कम हो जाता है जबकि वर्षा ऋतु में यह स्तर बढ़ जाता है।

(5) **लवणता (Salinity) :** बेलासंगम में जल की लवणता उच्चावचन प्रदर्शित करती है। यह उच्चावचन स्वच्छ जल के प्रवाह, मौसमी चक्र, ज्वारीय घटनाओं से सम्बन्धित होता है।

(6) **भँवर धाराओं का निर्माण (Turbulence) :** दो अलग अलग आवासों से आये जल का संगम उनके बीच भँवर धाराओं का निर्माण करता है। यह धारायें क्षैतिज रूप में मिलती हैं। जिससे जन्तुओं का विवरण व पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है।

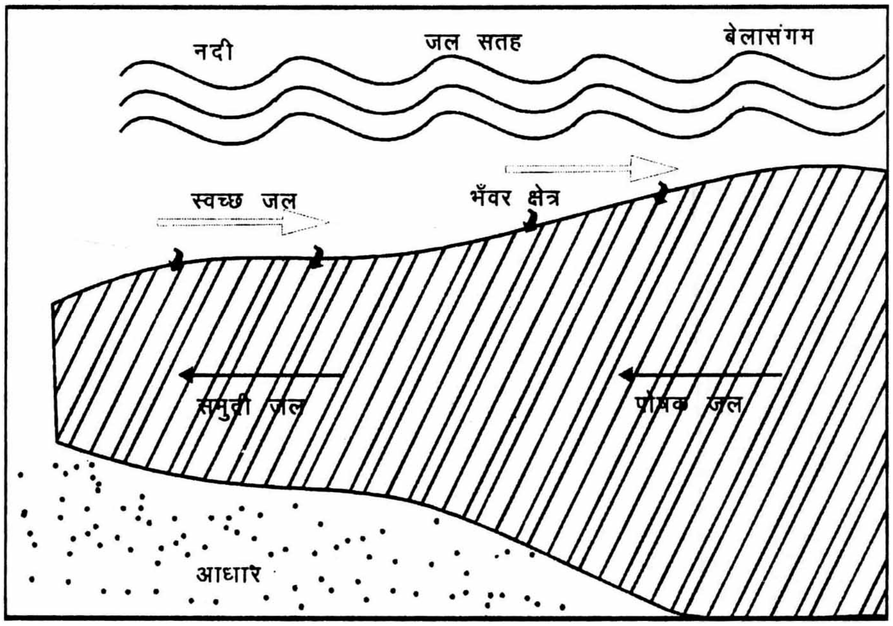

चित्र 10.5 भँवर धाराओं का निर्माण

(7) **कीचड़ की उपस्थिति (Formation of Mud) :** नदियों से बहाकर जो मिट्टी लाई जाती है वह इन मुहानों पर एकत्रित होती रहती है। ज्वारीय लहरों के समय यह मिट्टी कीचड़ का रूप ले लेती है। इस स्थान पर कार्बनिक पदार्थों की अधिकता के कारण यह पोषक पदार्थों से युक्त

होता है। यह गाद बेलासंगमी प्राणियों के लिये भोजन का अच्छा स्त्रोत होता है। साथ ही इसमें जन्तु बिल बना कर रहते है।

(8) **तापक्रम (Temperature) :** इस आवास के जल का सतही तापमान बहु त उच्चावचन प्रदर्शित करता है। किन्तु नीचे का तल सदैव कम तापमान का होता है। ऑक्सीजन की विलेयता भी यही ठीक रहती है।

बेलासंगमों का वर्गीकरण (Classification of Extuaries)

बेलासंगमों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया गया है। यह तीन आधार मुख्य हैं।

(I) भूआकृति विज्ञान के आधार पर (On the basis of geomorphology)

(II) जल परिसंचरण एवं स्तरण के आधार पर (On the basis of water circulastion and startification)

(III) ऊर्जा के आधार पर (On the basis of geomorphology)

(I) **भूआकृति विज्ञान के आधार पर (On the basis of geomorphology):**

इस आधार पर बेलासंगम चार प्रकार के होते हैं।

(A) **निमज्जित नदी घाटियाँ (Drowned River Valley)** इस प्रकार के बेलासंगम समतल मैदानी तट के पास पाये जाते है। यह चोडे एवं उथले जल युक्त होते हैं। उदाहरण- अमेरिका की **चैसापीक** खाड़ी।

(B) **दंतुर प्रकार के बेलासंगम (Fiard Type)** यह U-आकृति के बेलासगम होते है इनके नदीय मुख उथले सिल्ल (Sill) द्वारा ढके रहते हैं। यह ग्लेसियर द्वारा दंतुर आकार के बनाये जाते है। उदाहरण- नार्वे के फिर्याड।

(C) **रोधिका निर्मित बेलासंबम (Bar built Estuary)** यह वह बेलासंगम होते हैं जो समुद्र से खुले रूप में नहीं मिलते हैं बल्कि छोटे छोटे टापूओं द्वारा यह घिरे रहते हैं। इन टापूओं के मध्य स्थित अन्तर्गभो द्वारा यह समुद्रीय जल से सम्पर्क बनाये रखते हैं।

(D) **विवर्तनिक बेलासंगम (Tectonic Estuary)** यह समुद्रों के तटीय किनारे होते हैं जो स्थानीय लहरों के कारण दक्ष के आधार के हो जाते हैं।

(II) **जल परिसंचरण एवं स्तरण के आधार पर (On the basis of water circulation and startification)**

यह तीन प्रकार के होते है-

(A) **अत्यंत स्तरित (Highly stratified) :** इस प्रकार का बेलासंगम किसी तेज प्रवाह वाली नदी के मुहाने पर बनता है। इसमें नदी के जल का प्रवाह समुद्री जारी जल से ऊपर प्रवाहित होता है। अत: नदी का स्वच्छ जल ऊपर एक स्तर बनाता है जो अलवणीय होता है। उदाहरण मिस्सिसिपी का मुहाना।

(B) **साधारण स्तरित बेलासंगम (Simple Stratified) :** इस प्रकार का बेलासंगम उन समुद्रीय तटों पर देखा जाता है जहाँ आवर्तिता रूप से ज्वारीय विक्षोभ की क्रियाएँ होती रहती हैं। इस बेलासंगम में नदी का स्वच्छ जल ज्वारीय विक्षोम से टकराकर एक मिश्रणकारी प्रभाव उत्पन्न करता है। यहाँ दोनों ओर का प्रवाह समान होता है। उदाहरण चैसापीक खाडी।

(C) **उदग्र रूप से सांमागी बेलासंगम (Vertically homogenous) :** इस प्रकार के बेलासंगम में समुद्री लवणीय जल की मात्रा अधिक होती है क्योंकि जल का प्रवाह मुहाने पर ऊपर से नीचे की ओर होता है।

(III) **ऊर्जिकी के आधार पर (On the basis of energetcs)**

ओडम (Odum - 1971) ने ऊर्जिकी के आधार पर बेलासंगमों को पाँच प्रकारों मे बाँटा है।

(A) **भौतिक रूप से प्रतिबंधित बेलासंगम :** यह बेलासंगम प्रतिकूल वातावरण वाले होते हैं। यहाँ उच्च ज्वारीय धाराये, तापक्रम उच्चावचन, लवणता प्रधात, रात्रि में ऑक्सीजन की कमी से प्रभावित होते हैं, उदाहरण - अन्तर ज्वारीय चट्टानें, रेतीले टीले, अवसादी डेल्टा इत्यादि।

(B) **प्राकृतिक आर्कटिक बेलासंगम :** यह हिमाच्छादित पर्वतों के तटीय किनारों पर बनते है। उदाहरण नदीय फिर्याड, आर्कटिक तट।

(C) **प्राकृतिक शीतोष्ण तटीय बेलासंगम :** यह बेलासंगम मौसमी तन्त्र से प्रभावित रहता है। जिसके कारण प्राथमिक उत्पादकता, जनन, व्यवहार, भोजन विधियाँ सभी बदलती रहती है। उदाहरण ज्वारीय कुण्ड, लवणीय कच्छ, दलदली आवास।

(D) **अत्यधिक विभिन्नता वाले प्राकृतिक शीतोष्ण बेलासंगम :** यह ऐसे बेलासंगम हैं जहाँ प्राणियों की बहु लता व विविधता पाई जाती है। क्योंकि इन बेलासंगमो पर तापक्रम, लवणता, ज्वार का विरोधाभास कम होता है और ऊर्जा का उपयोग पोषण व वृद्धि में किया जाता है। उदाहरण जलमग्न उष्ण कटिबंधीय शादल अवस्था।

(E) **मानव सहयोगी बेलासंगम :** इस प्रकार के बेलासंगम मनुष्य द्वारा निर्मित अपशिष्टों के प्रदूषण को कम करने के लिए अनुकूलित हो जाते है। यह बेलासंगम इन पदार्थों का विघटन करके मनुष्य की प्रदूषण सम्बन्धित समस्या का हल करते हैं। विघटन करने की क्षमता इनके आकार प्रतिरूप एवं जलवायु पर निर्भर करती है।

बेलासंगमो के प्राणीजात (Estuarine Fauna)

बेलासंगम चूंकि दो आवासों का मिलन क्षेत्र है अत: इस क्षेत्र में कुछ जीवजात यहाँ के स्थाई. आवासी होते हैं। कुछ स्थानान्तरण करने वाले तथा कुछ जन्तु यही अनुकूलित होने वाले पाये जाते हैं। इस आधार पर इन प्राणियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

(1) **स्थाई आवासीय जन्तु (True Estuarine Biota) :** यह वह जन्तु है जो बेलासंगम की पारिस्थितिकी के अनुसार ही होते हैं। इन जन्तुओं को किसी भी भौतिक, रासायनिक व आकारिकी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है। अत: यह यही के स्थायी आवासीय जन्तु होते हैं।

उदाहरण : नेरीस (Nereis), एरेनिकोला (Arenicola), बेलेनस (Balanus), पेलीमोन (Palaemon), सोलन (Solen), क्रोकोडिलस (Crocodilus) आदि।

(2) **प्रवासी जन्तु (Migratory Forms) :** यह वह जन्तु होते हैं जो नदियों के साथ बहाकर लाये जाते हैं। अत: इनमें से कुछ जन्तु अपनी व्यस्क प्रावस्था को तो कुछ जन्तु अपनी लार्वा अवस्था को यही व्यतीत करते हैं। यह पूर्णत: लवणीय वातावरण में नहीं रह पाते हैं। अत: अपने प्रजनन काल में यह स्थानान्तरण करते हैं।

उदाहरण : साल्मन मछली (Salmon) व ईल मछली (Eel Fish)। यह नदियों में रहने वाली मछलियाँ है, किन्तु प्रजनन काल में समुद्रों मे आ जाती हैं। इस प्रकार पेट्रोमाइजोन जैसे जन्तु भी प्रजनन काल के समय नदियों की ओर चले जाते हैं।

(3) अनुकूलित प्राणि : मुख्यत: यह जन्तु अलवण जल में रहने वाले होते हैं किन्तु इनमें लवणीय जल में रहने की क्षमता पाई जाती है। अत: यह बेलासंगम के अजैविक कारकों से प्रतिक्रिया करके अपने आप को अनुकूलित कर लेते हैं। यह अस्थाई व उभयचर प्रकृति के जन्तु होते हैं।

उदाहरण : कार्सिनस (Carcinus), गेमेरस (Gammarus) आदि।

बेलासंगम प्राणियो के अनुकूलन (Adaptation of Estuarine Fauna)

बेलासंगम आवास का पर्यावरण स्थिर नहीं होता है अत: यहाँ रहने वाले जीव विशिष्ट प्रकार के अनुकूलन रखते हैं जैसे:

(1) परासरण नियमन (Osmoregulation) : यह जन्तु अधिक सान्द्र व अधिक तनु लवणीय जल में रहने के लिए परासरण नियमन की क्रिया करते हैं। अत: इनमें विशिष्ट अंगों व ऊटकों का पाया जाना अहम् है। जैसे प्लेछेल्मिन्थीज़ के सदस्यों में पेरेनकाइमा (Parenchyma) नामक ऊतक विकसित हो जाता है। कृस्टेशिया (Crustacea) के सदस्यो में हरित ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। जिनसे अतिरिक्त जल, मूत्र के रूप में विसर्जित हो जाता है। कुछ मछलियों के गिल्स में क्लोराइड कोशिकाएँ पाई जाती हैं।

(2) बिलकारी स्वभाव : बेलासंगम जन्तु अपने को तेज प्रवाह से बचाने के लिए बिल बना कर रहते हैं। साथ ही जल स्तर के घटने पर प्रतिकूल वातावरण से भी रक्षा कर पाते हैं। मनुष्य द्वारा बाधित कि जाने वाली क्रियाओं से भी अपनी रक्षा करते है।

(3) मुख में अण्डो को रखना (Retention of Eggs in the Mouth) : कुछ जन्तुओं में जल की तेज धारा से अण्डों को बचाने के लिए मुख में रखा जाता है जैसे 'केट फिश' (Cat Fish)।

(4) विशिष्ट श्वसनांग (Specific Respiratory Organ) : यह जन्तु जल में, जल से बाहर व कीचड़ में आसानी से श्वसन कर सकने के लिए विशिष्ट प्रकार के श्वसनांग रखते है।

(5) कीचडीय आवास (Muddy Habitat) : कुछ जन्तु और इनके लार्वा जल के तेज प्रवाह से बचने के लिए स्थायी रूप से कीचड़ में जींवन व्यतीत करते है। जैसे ट्रोकोफोर लार्वा।

(6) मृतोपभोजी : यह जन्तु कार्बनिक गाद, अपरद व मृत जीवों को मुख्यत: अपना भोजन बनाते हैं।

(7) उच्च तापक्रम परास : यहाँ का तापमान बहुत अधिक विभिन्नता प्रदर्शित करता है। यही के जन्तु तापमान के एक बड़े परास को सहन करने के लिए सक्षम होते है। इन्हे यूरीथर्मल (eurythermal) जन्तु कहा जाता है।

(8) निमेषक पटल : बेलासंगमी मछलियों में आँखो को शुष्कन से बचाने के लिए निमेषक पटल पाया जाता है।

(9) उच्च श्वसन दर : कुछ जन्तुओ जैसे हाइड्रोबिया (Hydrobia) तथा कोरोफिएम (Corophiam) में उच्च श्वसन दर पायी जाती है।

10.3 बोध प्रश्न

1. लवणीय जल का अध्ययन कहलाता है -
   (a) लिम्नोलोजी (b) ओसिनोग्राफी (c) पिडोलोजी (d) हाइड्रोबायलोजी
2. समुद्रीय आवास की औसत लवणता प्रतिशत होती है -
   (a) 4.5% (b) 7.8% (c)3.5% (d) 1.5%
3. जल का तापमान बढ़ने से ऑक्सीजन की विलेयता -
   (a) कम होती है (b) बढ़ती है (c) स्थिर रहती है (d) निम्न में से कोई नहीं
4. समुद्री धाराएँ चलने का मुख्य कारण है -
   (a) लहरों का प्रभाव (b) ज्वार भाटा (c) ध्रुवों पर तापमान विभिन्नता (d) यह सभी
5. समुद्रीय क्षेत्रीकरण दिया गया -
   (a) हेड्गेपाथ द्वारा (b) आडेम द्वारा (c) टेन्सले द्वारा (d) हेकल द्वारा
6. नेरिटीक क्षेत्र समुद्र का कौन सा क्षेत्र है -
   (a) पैंदा क्षेत्र (b) खुला सागरीय क्षेत्र (c) तटीय क्षेत्र (d) अंधकारमय क्षेत्र
7. समुद्रीय आवास की औसत लवणता प्रतिशत होती है -
   (a) बैक्यिक जाने (b) पैलैजिक जाने (c) हाडल जोन (d) महाद्वीपीय विस्थापन
8. सुप्रकाशित क्षेत्र को कहा जाता है -
   (a) विघटनकारी क्षेत्र (b) उत्पादक क्षेत्र (c) ज्वारीय क्षेत्र (d) निम्न में से कोई नहीं
9. समुद्र का फर्श कहा जाता है -
   (a) पैलेजिक क्षेत्र (b) नेरेटीक क्षेत्र (c) गहरा समुद्रीय क्षेत्र (d) कैथीक क्षेत्र
10. लिटोरल जोन कही स्थित होता है -
    (a) पैलेजिक के नीचे (b) हाडल क्षेत्र में
    (c) महासागरीय क्षेत्र में (d) नेरेटिक क्षेत्र के नीचे
11. दलदली तटीय प्राणियों के मुख्य अनुकूलन हैं -
    (a) श्लेष्मा स्त्रवण (b) हासित संवेदी अंग
    (c) रंजकता (d) उपर्युक्त सभी।
12. अंतर ज्वारीय रेतीले तटों के मुख्य अनुकूलन हैं -
    (a) बिलधारी प्रवृति (b) चपटा कवच (c) लंबा साइफन (d) उपर्युक्त सभी।
13. समुद्री आवास पृथ्वी के कितने भाग पर उपस्थित होता है -
    (a) 70% (b) 60% (c) 80% (d) 40%
14. गहरे समुद्री प्राणी होते हैं
    (a) चपटे, कैल्सीभूत कंकाल युक्त (b) बेलनाकार व कोमल
    (c) चपटे व कोमल (d) बेलनाकार व कैल्सीभूत
15. समुद्री सतह से गहरे आवास की ओर निरंतर तापमान होता है -
    (a) कम (b) अधिक (c) एक समान (d) उतार / चढाव युक्त

16. जैवसंदीप्ती का गुण पाया जाता है -

(a) खुले सागरीय क्षेत्र में (b) नेरेटीक क्षेत्र में

(c) गहरे समुद्री आवास में (d) बैथायल क्षेत्र में।

17. बेलासंगम क्षेत्र को कहा जाता है -

(a) समुद्र का मुहाना (b) नदी का मुख

(c) ज्वारीय डेल्टा (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

18. दो भिन्न आवासों के मिलने से बनता है

(a) समुदाय (b) निकेत (c) तनाव क्षेत्र (d) मिश्रित क्षेत्र

19. फियार्ड प्रकार के बेलासंगम की आकृति होती है -

(a) U (b) S (c) V (d) O

20. जल परिसंचरण के आधार पर बेलासंगम का मुख्य प्रकार है -

(a) अत्यंत स्तरित (b) साधारण स्तरित (c) उदग्र स्तरित (d) उपर्युक्त सभी

10.4 सारांश (Summary)

- समुद्री जीवों का उनके वातावरण में अध्ययन महासागरीय विज्ञान (Ocenography) कहलाता है।
- समुद्र पृथ्वी के 70% भाग पर फैले हुये है।
- यह सबसे बड़ा आवासीय स्थान है।
- समुद्रीय आवास के, कुछ भौतिक रासायनिक लक्षण है जैसे तापक्रम, लवणता, प्रकाश, दाब, धाराएँ, लहरें, जार आदि।
- यह सभी वातावणीय कारक यहाँ पाये जाने वाले जन्तु का वितरण क्षेत्र निर्धारित करते हैं।
- समुद्रों में तापमान अपेक्षाकृत स्थिर (-3 C to 35 C) बना रहता है।
- यह सौर ऊर्जा के सबसे बडे भंडार होते हैं।
- समुद्रीय आवास की औसत लवणता 3.5% होती है।
- समुद्रों में धाराएँ, ध्रुवों एवं विषुवत रेखा के मध्य तापमान भिन्नता के कारण चलती हैं।
- सूर्य व चंद्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण समुद्रों में ज्वार भाटा आते हैं।
- हेडगेपाथ ने समुद्रीय आवास को बेलापवर्ती व नितलस्थ क्षेत्र में वर्गीकृत किया है।
- बेलापवर्ति 1000 मीटर की गहराई तक का ऊपरी सतह क्षेत्र है।
- नितलरथ क्षेत्र वेलापवर्ति के नीचे समुद्र के फर्श तक स्थित होता है।
- वेलापवर्ति क्षेत्र को नेरिटीक क्षेत्र व महासागरीय क्षेत्र में विभाजित करते हैं।
- नेरिटीक क्षेत्र तटीय क्षेत्र होता है जबकि महासागरीय क्षेत्र मध्य का खुला समुद्र होता है।
- महासागरीय क्षेत्र को प्रकाश भेदने के आधार पर पुन: प्रकाशित क्षेत्र व अप्रकाशित क्षेत्र में बाँटा गया है।
- प्रकाशित क्षेत्र में प्रकाश संश्लेषण के कारण यह उत्पादक क्षेत्र कहलाता है।
- नितलस्थ क्षेत्र को भी वेलापवर्ति क्षेत्र की ही भाँति वेलांचल क्षेत्र व गहरा समुद्रीय क्षेत्र में बाँटा गया है।

- वेलांचल (Littoral) क्षेत्र नेरिटीक के ठीक नीचे पाया जाता है जबकि गहरा समुद्रीय क्षेत्र महासागरीय क्षेत्र के नीचे स्थित होता है।
- जहाँ पर जीव जन्तुओं की विविधता और बहु लता पायी जाती है क्योंकि यह क्षेत्र अपेक्षाकृत बाधित होते हैं।
- वेलांचली क्षेत्र को सुबेलाचली क्षेत्र व उपबेलांचली क्षेत्र में विभाजित किया गया है।
- गहरे समुद्री क्षेत्र को बैथायल, ऐबायसल व हाडल में विभाजित किया गया है।
- गहरे समुद्रीय आवास के जन्तुओं का शरीर छोटा व चपटा होता है। कंकाल अकेल्सीभूत व मुलायम होता है।
- जैव संदीप्ती पायी जाती है। संवेदी अंग विकसित होते हैं।
- बेलासंगम आवास स्वच्छ जलीय आवास समुद्रीय आवास का मिश्रण होता है।
- यह तटवर्ती क्षेत्र होता है यहाँ की भौतिक रासायनिक परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती हैं।
- तापमान, लवणता, जल के स्तर में उच्चावचन होते रहते हैं।
- बेलासंगमों को भूआकृति, जल परिसंचरण व उर्विकी के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।
- यहाँ का जीवजात विशिष्ट प्रकार का अनुकूलन रखता है।

10.5 शब्दावली (Glossary)

1.	महासागरीय विज्ञान	-	Oceanography
2.	लवणता	-	Salinity
3.	ज्वार	-	Tides
4.	महाद्वीपीय शेल्फ	-	Continental Shelf
5.	महाद्वीपीय विस्थापन	-	Continental Slope
6.	प्लवक	-	Plankton
7.	प्रकाशित क्षेत्र	-	Euphotic Zone
8.	वात पुटिकाएँ	-	Pneumatophores
9.	अनुकूलन	-	Adaptations
10.	जैवसंदीप्ती	-	Biolumniescence
11.	तनाव क्षेत्र	-	Ecotone
12.	बेलासंगम	-	Estuary
13.	अविलता	-	Turbulence
14.	जीवजात	-	Fauna
15.	परासरण नियमन	-	Osmoregulation

10.6 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. **पारिस्थितिकी विज्ञान :** डा. ए.एल. भाटिया एवं कोहली, रमेश बुक डिपो, जयपुर।
2. **पर्यावरण जैविकी :** पी. डी.शर्मा, रेस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
3. **पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी :** के. सी सोनी, कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर।

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

Q.1 (2)	Q.2 (3)	Q.3 (1)	Q.4 (3)
Q.5 (1)	Q.6 (4)	Q.7 (4)	Q.8 (2)
Q.9 (4)	Q.10 (4)	Q.11 (4)	Q.12 (4)
Q.13 (1)	Q.14 (2)	Q.15 (1)	Q.16 (3)
Q.17 (2)	Q.18 (3)	Q.19 (1)	Q.20 (4)

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. समुद्री आवास के भौतिक रासायनिक लक्षणों का वर्णन करो। समुद्री आवास का वर्गीकरण कीजिये एवं पिलेजिक क्षेत्र के प्राणीजात को उल्लेखित करो।
2. बेलांचली क्षेत्र की विशेषताएँ व प्राणीजात को समझाइए।
3. समुद्री क्षेत्रीकरण पर निबंध लिखिए।
4. गहरे समुद्री क्षेत्र की पर्यावरणीय दशाओं व जन्तुओ के अनुकूलनों को समझाइए।
5. बेलासंगम आवास की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इन आवास के वर्गीकरण व अनुकूलन भी बताइये।

इकाई 11
स्थलीय आवास
(Terrestrial Habital)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आवास के आधार पर स्थलीय समुदायों का वर्गीकरण

11.2.1 वन क्षेत्र / मरूस्थल की विशेषताएं

11.2.2 स्थलीय आवास के प्रमुख लक्षण

11.2.3 स्थलीय आवास का वर्गीकरण

1. अजैविक कारक

2. जैविक कारक

11.3 विश्व के प्रमुख जीवोम (बायोम)

11.3.1 परिचय एवम् परिभाषा

11.3.2 जीवोम के प्रकार

11.4 मरूस्थल (रेगिस्तान में रहने वाले प्राणियों के अनुकूलन)

11.5 घास के मैदान

11.5.1 परिचय

11.5.2 मैदानों के प्रकार

11.5.3 मैदानों में पाए जाने वाले प्राणियों में अनुकूलन

11.6 बोध प्रश्न

11.7 शब्दावली

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य (Objective)

यह इकाई स्थलीय आवास के परिचय के अन्तर्गत यहां की जलवायु, प्राणिजात, वनस्पतिजात आदि का परिचय कराती है। स्थलीय आवास जीवोम का विस्तृत अध्ययन, रेगिस्तान से संबंधित अध्ययन व विभिन्न प्रकार के मैदानों के वर्तमान स्वरूप से भी परिचय कराती है।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

स्थल पर रहने वाले जीवों तथा उनके आवास का अध्ययन स्थलीय आवास के अन्तर्गत किया जाता है। इस आवास में विभिन्न प्रकार के पारिरिथतिक तंत्रों का समावेश होता है। प्रत्येक तंत्रों की अपनी

महत्ता होती है। प्रस्तुत इकाई स्थलीय आवास के वर्तमान स्वरूप, विश्व के प्रमुख जीवोम तथा मरूथल में रहने वाले जंतुओं के अनुकूलन व घास के मैदानों- का परिचय देती है।

11.2 आवास के आधार पर स्थलीय समुदायों का वर्गीकरण

भूमण्डल का लगभग 30% भाग स्थल है। इस स्थलीय भाग पर विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों का समावेश रहता है। विभिन्न प्रकार की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण स्थलीय आवासों में भिन्नता दिखाई देती है। स्थलीय क्षेत्र जैसे वन क्षेत्र व मरूस्थल दोनों के आवासों में भिन्नताएं होती है। इन दोनों आवासों में पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से पूर्णत: विभेदनता की जा सकती है।

11.2.1 वन क्षेत्र / मरूस्थल की विशेषताएँ

क्र.	वन क्षेत्र की विशेशेषताएँ	मरूस्थल की विशेषताएँ
1.	जल उपस्थित	जल का अभाव
2.	अधिक वनस्पती पायी जाती है।	बहु त कम वनस्पति पायी जाती है।
3.	तापमान सामान्यत(स्थिर) एक समान :	तापमान में अत्यधिक उतार चढ़ाव
4.	आर्द्रता अधिक	आर्द्रता अनुपस्थित
5.	प्रकाश की उपलब्धता कम सामान्)य(	प्रकाश की उपलब्धता अधिक
6.	मृदा नम	नमी अनुपस्थित
7.	वायु का वेग कम	वायु का वेग अधिक

11.2.2 स्थलीय आवास के प्रमुख लक्षण

स्थलीय आवास एक वृहत्त आवास होता हैं। इसे विभिन्न कारक प्रभावित करते है। स्थलीय आवास पर स्थलाकृति, जलवायु व वातावरण का प्रभाव पड़ता है। जलीय आवास की तुलना में यहाँ रहने वाले जीवों को जल की कमी का सामना करना पड़ता है। यही होने वाले अवरोध जंतुओं के स्वतंत्र विचरण को प्रभावित करते है।

11.2.3 स्थलीय आवास का वर्गीकरण

स्थलीय आवास को दो भागों में विभाजित किया गया है।

1. अजैविक कारक (Abiotic Factor)
2. जैविक कारक (Biotic Factor)

1. अजैविक कारक

अजैविक कारक को जलवायु संबंधी कारक भी कहा जाता है। क्योंकि जलवायु के आधार पर ही जीव विभिन्न कारकों के प्रति सक्रियता दर्शाते है।

A. प्रकाश (Light)

B. तापमान (Temperature)

C. प्रकाश (Light)

D. तापमान (Temperature)

E. जल (Water)
F. ऑक्सीजन (Oxygen)
G. प्रदीपन (Illumination)
H. मृदा (Soil)
I. अवरोध

A. प्रकाश (Light)

प्रकाश प्रत्येक आवास के लिए ऊर्जा का एक स्त्रोत है। यह विकिरण ऊर्जा का एक प्रकार है। पादपों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में होती है। समस्त जीव जन्तु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकाश पर निर्भर रहते है तथा उससे प्रभावित भी होते है। जलीय आवास की तुलना में स्थलीय आवास में प्रकाश अधिक मात्रा में उपलब्ध रहता है इसके निम्न लाभ है।

1. इसके द्वारा जन्तु देख सकता है
2. इसकी उपस्थिति में विटामिन 'D' का संश्लेषण होता है।
3. यह कैल्शियम व फॉस्फोरस की मात्रा को नियंत्रित कर वृद्धि को नियंत्रित करता है।
4. जन्तुओं के प्रजनन को प्रभावित करता है।
5. खाद्य शृंखला के माध्यम से प्रभाविता प्रदर्शित करता है।

B. तापमान (Temperature)

ऊष्मा का मापन तापक्रम द्वारा किया जाता है। यह महत्वपूर्ण कारक होता है। विभिन्न स्थलीय आवासों में तापक्रम में विभिन्नता पायी जाती है। प्राय: स्थल पर तापक्रम - 68°C से 60°C तक होता है। स्थलीय आवास पर जीवों को अपनी उपापचयी क्रियाएं बनाए रखने हेतु तापक्रम का उच्च स्तर बनाए रखना होता है। अत: ऐसे जन्तु जो तापक्रम नियंत्रित रख सकते है नियततापी या समतापी (homeo thermal) कहलाते है। जबकि वे जन्तु जो वातावरणीय तापक्रम के आधार पर ताप स्थाई हैं वे असमतापी या अनियततामी (Poikilothermal) कहलाते है। तापक्रम जन्तु के आकार व व्यवहार दोनो को प्रभावित करता है।

C. जल (Water)

स्थलीय आवासों में सीमित होता है। किन्तु इसकी बहु त महत्ता होती है। यह जीवन का आधार है। यह समस्त जैविक क्रियाओं हेतु आवश्यक है। जलीय जीवों के लिए जल पर्याप्त मात्रा में होता है किन्तु स्थलीय जीवों को सदैव जल की कमी का सामना करना पड़ता है। इसका सीधा प्रभाव छोटे जन्तुओं पर पड़ता है। बड़े जन्तु पानी की कमी को सहन कर लेते है। ये अपने शरीर में पानी को एकत्र कर लेते है व आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग कर लेते है। जैसे:- ऊँट

D. ऑक्सीजन (Oxygen)

वायुमण्डल में ऑक्सीजन का अनुपात लगभग 21% होता है। अत: स्थलीय आवास वाले जीव जन्तुओं को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध रहती है। जलीय आवास वाले जीव जल में

घुलित ऑक्सीजन का उपयोग करते है। किन्तु यह कई कारकों द्वारा प्रभावित होती है। यह जलीय आवास वालों के लिए सीमाकारी कारक होती है।

E. प्रदीपन (Illumination)

दीप्ति कालिता का पौधे व जंतु दोनों पर प्रभाव पड़ता है। जन्तुओं की अधिकांश दैनिक गतिविधियाँ प्रदीपन पर निर्भर करती है। यह जन्तुओं को पहचानने, छिपने, स्वयं की रक्षा अर्थात् बचाव करने में भी सहायक होती है।

F. मृदा (Soil)

स्थलीय आवासों के लिए मृदा आधार प्रदान करती है। इसकी भौतिक एवम् रसायनिक संरचना का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जन्तुओं व पादपों की क्रियाओं पर पड़ता है। इसमें पोषक तत्व, कार्बनिक लवण पाए जाते है। अत: भिन्न भिन्न प्रकार की मृदा में भिन्न भिन्न वनरयतियां पाई जाती है।

G. अवरोध

भौगोलिक अवरोधों के कारण स्थलीय प्राणियों का आवागमन तथा वितरण प्रभावित होता है।

2. जैविक कारक

स्थलीय आवास में रहने वाले जंतु विभिन्न प्रकार से पोषण करते है पोषण के स्वभाव अनुसार इन्हें वर्गीकृत किया गया है। परजीवियों, परपोषियों, परभक्षियों आदि के मध्य रहने वाले संतुलन पर भी जंतु समुदाय की रचना निर्भर करती है।

जैविक कारकों का वर्गीकरण

इन्हें क्रमश: तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है:

A. स्वयंपोषी (Autotroph)

B. विषमपोषी (Heterotroph)

(i) शाकाहारी (ii) माँसाहारी

C. अपमार्जक (Scaverngers)

A. स्वयंपोषी (Autotroph)

स्थलीय आवास पर पाए जाने वाले समस्त हरे पादप प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन बनाते है। ये स्वयंपोषी अर्थात् प्राथमिक उत्पादक कहलाते है। प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा ये ऑक्सीजन के पुर्नभरण में भी सहयोग करते है। ये मृदा क्षरण रोकने का भी कार्य करते है।

B. विषमपोषी (Heterotroph)

ऐसे प्राणी जो पोषण के लिए दूसरे जीवों पर आधारित रहते है विषमपोषी कहलाते है। इन्हें दो- भागों में वर्गीकृत किया गया है।

(i) शाकाहारी (Herbivores)

स्थलीय आवास पर इनकी संख्या सर्वाधिक होती है। ये पोषण के लिए पादपों पर निर्भर रहते है। इस वर्ग में कीट के लार्वा से लेकर बड़े जन्तु (हाथी) समावेशित है। शाकाहारी पोषण के लिए जंतुओं की आहार नाल से संबंधित संरचनाओं में विभिन्न अनुकूलन पाए जाते है। जैसे विशिष्ट दन्तविन्यास, आहार नाल की लम्बाई, सेलुलोज पाचन हेतु एन्जाइम आदि। पक्षियों

में दांतों के अभाव में शरीर के भीतर बीजों को पीसने की विशिष्ट रचना गिजर्ड(Gizzard) का विकास होता है।

(ii) मांसाहारी (Carnivores)

ऐसे जन्तु जो दूसरे जन्तुओं को भोजन के रूप में प्रयोग करते है मांसाहारी जन्तु कहलाते है। मांसाहारी जन्तुओं के शरीर में भोजन की प्रकृति के अनुसार अनुकूलताएं उत्पन्न हो जाती है। इनके दाँत मांस को चीरने फाड़ने के लिए रूपान्तरित हो जाते है।

C. अपमार्जक (Scaverngers)

ऐसे जन्तु जो मृत पादप या मृत जन्तुओं पर अपने पोषण के लिए निर्भर रहते है अपमार्जक कहलाते है। कुछ जन्तु आंशिक रूप से अपमार्जक होते है वहीं कुछ जन्तु पूर्ण रूप से अपमार्जक होते है। अपमार्जक की क्रिया के फलस्वरूप स्थलीय आवास में स्वच्छता बनी रहती है।

11.3 विश्व के प्रमुख जीवोम (बायोम)

'एक पारिस्थितिक क्षेत्र की विशिष्ट वनस्पति एवम जन्तुओं का जटिल समूह जो दूसरे स्थलीय सामुदायिक आवासों से स्पष्टत: भिन्नता प्रदर्शित करता हो। उस क्षेत्र का जीवोम कहलाता है। पारिस्थितिक विभिन्नता के आधार पर समस्त पृथ्वी को निम्न स्थलीय बायोम में वर्गीकृत किया गया है।

11.3.1 परिचय एवं परिभाषा

जीवोम (Biome)के वर्गीकरण कोपेन (Koppen) ने किया है। उन्होने जलवायु के अनुसार जीवोम को समझाने का प्रयास किया। जीवोम अर्थात् 'विशाल आवास' की सीमाएं परिवर्तित होती रहती है क्योंकि इन पर जलवायु व अन्य अवरोधो का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। किंतु जैव भौगोलिक क्षेत्रों की सीमाएँ नियत रहती है।

ऐसे स्थलीय आवास जो अपने क्षेत्र विशेष की मृदा वातावरण तथा अन्य अजैविक कारकों से परस्पर अनुक्रिया के फलस्वरूप अपना विशिष्ट क्षेत्रीय आवास का निर्माण कर लेते है, बायोम कहलाते हैं।

जीवोम (बायोम के प्रकार)

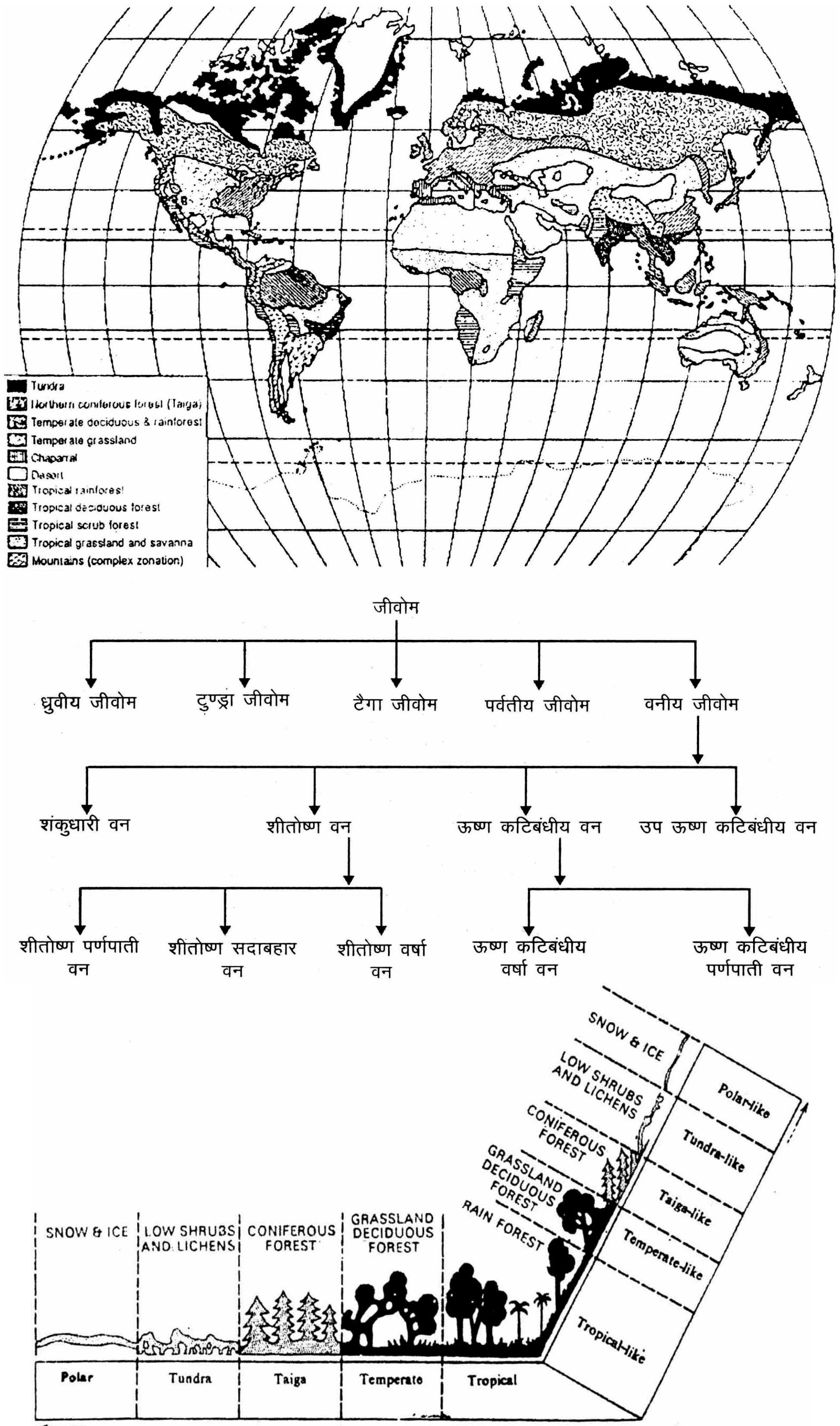

चित्र 11.2 बायोम जीवोम के प्रकार

पर्वत क्षेत्रीयकरण

समुद्र तल से पर्वत की चोटी तक पाए जाने वाले विभिन्न जीवोम ध्रुव और भूमध्यरेखा के मध्य पाए जाने वाले जीवोम के समान होते है

1. ध्रुवीय बायोम (Arctic Biome)

पृथ्वी का उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र सदैव हिम आच्छादित रहते है। यहां तापमान काफी कम होता है। ठण्डी जलवायु के कारण यहां वनस्पति नही उग पाती है। अत: यहाँ जीवन लगभग शून्य होता है।

2. टुण्ड्रा बायोम (Tundra Biome)

उत्तर कटिबन्ध का दक्षिणी या नीचे का भाग टुण्ड्रा क्षेत्र कहलाता है। यही वृक्षों का अभाव होता है। यह यूरोप, साइबेरिया व उत्तरी अमेरिका के मध्य भाग फैला हुआ है। यह क्षेत्र 50 लाख एकड़ में फैला हुआ है।

जलवायु (Climate) : यहाँ पायी जाने वाली बर्फ की मोटी परत कुछ समय के लिए ही पिघलती है। ग्रीष्म ऋतु में यहाँ 24 घंटे के दिन व शीत ऋतु में 24 घंटे की रातें होती है। औसतन वार्षिक वर्षा 4cm तक होती है। यहाँ तापक्रम बहुत कम रहता है।

प्राणिजात (Fauna) : विषम परिस्थितियों के कारण प्राणियों की संख्या कम होती है व इनमें विविधता नहीं होती है। यहाँ पाए जाने वाले प्रमुख जंतु रेनडियर, बर्फानी खरहे (Snowhares) कस्तूरी बरघे (Musk oxen) ध्रुवीय भेडिये, तथा लोमडियां, कैरीबू (Caribou) आदि है। ग्रीष्म काल में मक्खियां कीट, मच्छर आदि इस क्षेत्र में पाए जाते है। कुछ प्रवासी पक्षी पेग्विन, गूज, क्रेन आदि पाए जाते है। यहां रहने वाले मनुष्य बर्फ का घर 'इग्लू' बना कर रहते है तथा ये मनुष्य एस्किमों कहलाते है।

वनस्पति जात (Flora) : बर्फ के कारण यहां वनस्पतियों का अभाव होता है। यहां रशेज (Rushes) माँस (Mosses), पुष्पशाक (flowering herbs) हविशिष्ट घासें (Grass), लाइकेन (Lichen), रेनडियर मॉस (Reindeer moss) आदि प्रजातियां पायी जाती है। यहाँ रहने वाले जन्तुओं में विभिन्न अनुकूलन पाए जाते है जैसे ताप रोधक स्तर, शीत निष्क्रियता, वर्णको का अभाव, सामूहिक विश्राम, प्रवासन आदि।

3. टैगा बायोम (Taiga biome)

टैगा अर्थात वन कोण धारी या शंकुधारी वन टैगा कहलाते है। टुण्ड्रा बायोम के दक्षिणी भाग में यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका तक फेला हुआ क्षेत्र टैगा बायोम कहलाता है। इसमें स्वीडन, फिनलैण्ड, नार्वे, साइबेरिया, मध्य व उत्तरी रूस तथा कनाडा का उत्तरी भाग अलास्का आता है।

जलवायु : ऊँचाई पर स्थित होने के कारण जलवायु नम व ठंडी होती है। यहाँ शीत ऋतु लम्बी व ग्रीष्म ऋतु अल्पकाल के लिए होती है।

प्राणिजात : यहां मिंक (Mink), वनविडाल (Lynx) मूज (Moose) भूरे भालू (Grizzly bear), भेडिये, मार्टिन (Martin), सेही (Porcupine), आदि स्तनी, राना, हाइला आदि उभयचर, व कीट जैसे वाक्र बीटल, मॉथ आदि पाए जाते है।

वनस्पति जात : शंकुधारी वन, फर्न, पाइन, स्प्रूस आदि हरे रहने वाले पादप पाए जाते है। ये सघन होते है। यह क्षेत्र शंकुधारी तनों का क्षेत्र कहलाता है। यह टिम्बर का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इसके अतिरिक्त कुछ झाड़ी पादप ऑक्रिड्स, लाइकेन आदि पाए जाते है।

4. पर्वतीय बायोम (Mountian)

पर्वतों की ऊँचाई भिन्न भिन्न होने के कारण भिन्न प्रकार के जैविक क्षेत्र पाए जाते है। सबसे ऊँचे पर्वतीय शिखर बर्फ से ढका रहता है। अत: यहाँ वृक्ष नहीं पाए जाते है। यह एल्पाइन क्षेत्र (Alpine zone) कहलाता है। इससे कम ऊँचाई पर शंकुधारी वन पाए जाते है। शंकुधारी वनों से नीचे पर्वतों पर पर्णपाती वन (Deciduous forest) पाए जाते है। सबसे कम ऊँचाई वाले क्षेत्र में ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा प्रचुर वन (Tropical rain forest) पाए जाते है। परिस्थितिक परिस्थितियों के अनुसार जीवजात पाए जाते है।

5. वनीय बायोम (Forest biome)

आवास तथा आबादी विहीन भूमि वन कहलाती है। वनस्पति की विविधता तथा भिन्न भिन्न जलवायु के कारण इन्हें निम्न क्षेत्रों में बांटा गया है।

A. शंकुधारी वन (Conifer forest)

B. शीतोष्ण वन (Temperate forest)

B.1 शीतोष्ण पर्णपाती वन

B.2 शीतोष्ण सदाबहार वन

B.3 शीतोष्ण वर्षा वन

C. ऊष्ण कटिबंधीय वन (Tropical Forest)

C-1 उशण कटिबंधीय वर्षा वन

C.2 उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन

C.3 उप ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वन (Subtropical rain forest)

A. शंकुधारी वन (Conifers forest)

ये हरे रहने वाले घने वन होते है। ये ठंडे प्रदेशों तथा उत्तरी गोलार्द्ध में पाए जाते है। यहाँ शंकुधारी पादप पाए जाते है।

जलवायु : इन वनों में प्राय: हिमपात होता है। यही अत्यधिक वर्षा तथा नमी पायी जाती है शीत ऋतु लम्बी व ग्रीष्म ऋतु छोटी होती है। अत्यधिक वर्षा के कारण मृदा में खनिज लवण अल्प रह जाते है व मिट्टी अम्लीय हो जाती है।

प्राणिजात : यही उभयचरों में हाइला व राना, चिडियों में बडी चिडियाएं तथा क्रॉसबिल्स, कठफोडवा, वीवर आदि? स्तनधारियों में चूहे, भूरे भालू कैरीबू सेही भेडिया तथा लोमडी तथा कीटों में : मॉथ, बाक्रबीटल आदि पाये जाते है।

वनस्पतिजात : शंकुधारी पादप जैसे स्प्रूस, चिड़, लाक्र बालसम आदि पेड़ पाए जाते है। नमी होने के कारण लाइकेन (Lychen) तथा मॉस प्रचुर मात्रा में पाए जाते है।

B. शीतोष्ण वन (Temperate forest)

इन वनों में चौड़ी पत्तियों वाले वृक्ष पाए जाते है। वर्षा, जलवायु व वानस्पतिक विभिन्नता के आधार पर इन्हें 3 भागों में विभाजित किया गया है।

B-1 शीतोष्ण पर्णपाती वन (Temperate deciduous forest)

इस प्रकार के वनों में सर्दिया अत्यधिक ठंडी, गर्मियां गर्म तकि वर्षा की बहुतायत होती है। इन वनों में पतझड़ में पत्तियां झड जाती है व बसन्त में नई पत्तियां आती है। यहां प्रतिवर्ष 20 से 60 इंच वर्षा होती है। शीतकाल में तापमान -12°C तक हो जाता है जबकि ग्रीष्म काल में 10°C से 20°C तक रहता है।

चित्र 11.3 पर्णपाती वनों का पादप पारिस्थितिकीय तंत्रा

प्राणिजात : यहां अकशेरूकियों में केचुए, मिलीपीड कीट तथा घोघे पाए जाते है जबकि कशेरूकियों में मेढ़क, सेलामेण्डर, कठफोडवा, सूअर, जंगली सूअर, हिरन, एन्टीलोप, शृंगीय उल्लू, भेडिए तथा ओपोसम जैसे जन्तु पाए जाते है।

वनस्पति जात : यहाँ पतली व चौड़ी पत्तियों वाले लम्बे वृक्ष पाए जाते है। इनमें प्रमुख देवदार, (cedar), चीड़ (Pine), ओक (Oak), मेपल (Maple), कॉटनवुड (Cotton wood), हिंकारी (Hickory) आदि है।

B.2 शीतोष्ण सदावहार वन (Temperate ever green forest)

इन वनों में लगभग 3-4 मीटर ऊँचे शाकीय पौधे पाए जाते है यही शीतऋतु मे जलवायु नमी तथा ग्रीष्म ऋतु में जलवायु शुष्क होती है। यहाँ पौधों की पत्तियां कठोर सुई के समान तथा चौड़ी होती है इन वनस्पतियों में पुनरूद्भवन की क्षमता पायी जाती है। आग लगने से क्षतिग्र हुए पादपों में पुनरूद्भवन हो जाता है।

प्राणियों में खरगोश, हिरण, खच्चर तथा छिपकलियाँ पाई जाती है। खुरचारी तथा कूदने वा प्राणी भी पाए जाते है।

B.3 शीतोष्ण वर्षा वन (Temperate rain forest)

यहाँ सदैव वर्षा होती है अतः जलवायु ठण्डी होती है। मौसमी परिवर्तनों के कारण तापक्रम तथा वर्षा की स्थिति में बदलाव आता रहता है यहां वृक्ष 100 मीटर तक ऊँचे होते है। जल का आधिक्य के कारण प्राणी तथा वनस्पति जगत में कम विविधता होती है।

C. ऊष्ण कटिबंधीय वन (Tropical Forest)

ऊष्ण कटिबंधीय वन दो तरह के होते है।

C.1 ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वन (Tropical rain forest)

ये वन मध्य अमेरिका, दक्षिणी एशिया तथा भूमध्य रेखीय अफ्रीका मलाया, बोर्निया व न्यूगिनी में पाए जाते है। घनी व हरी वनस्पतियाँ, पेड पौधे इन वनों के मुख्य लक्षण है। यही वर्षा बहुतायत में होती है।

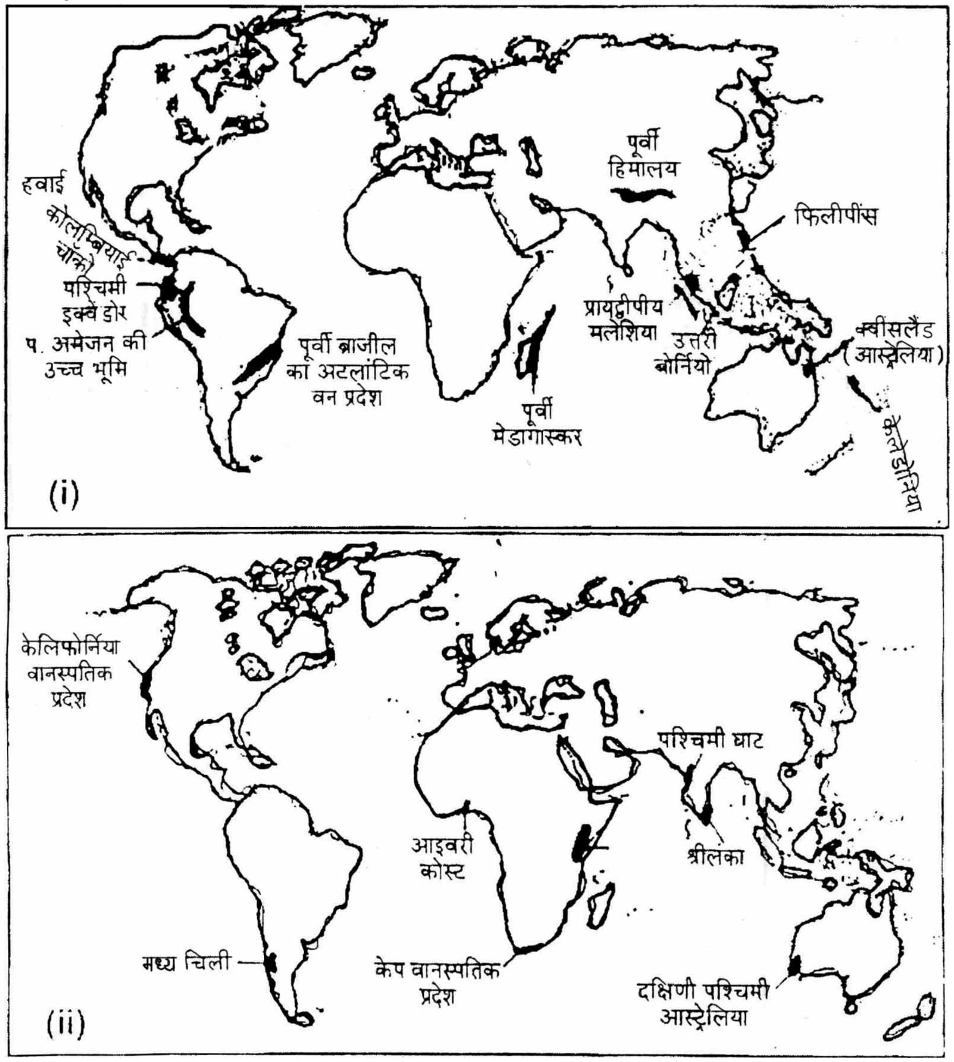

चित्र 11.4 : जैव विविधता के ऊष्ण स्थल-ये क्षेत्र उच्च स्थानीयता एवं सन्निकट विलोपन वाले ऊष्ण स्थल (i) बारह ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों के ऊष्णस्थल, (ii) आठ अन्य पारिस्थितिक तन्त्रों के ऊष्णस्थल

जलवायु : यहाँ तापमान सामान्य से कुछ अधिक होता है, जल का वाष्पीकरण होता रहता है अत: वर्ष पर्यन्त वर्षा होती है।

प्राणिजात : यहाँ अकशेरूकी जंतु : जैसे कृमि, जोंक, कानखजूरा, गिजाई, मकडियॉ, चींटी, भृंग, मधुमक्खियॉ, घोघे आदि पाए जाते है। कशेरूकियों में टोड, मेढक, गिरगिट, सर्प तथा विभिन्न प्रजातियों की चिडियाएं जैसे कठफोड़वा, हॉर्नबिल, तोते; स्तनियों में जंगली बिल्ली, सियार, शेर चीता, हिरण, हाथी, जंगली भैसे, जंगली सूअर, बंदर, लंगूर गोरिल्ला आदि पाए जाते है।

चित्र 11.5 : प्राणिजात

वनस्पति जात : यहाँ विभिन्न प्रजातियों के पेड़ पौधे पाए जाते है। सघन वृक्षों के कारण बडे वृक्षों को पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश, हवा मिलती है किंतु छोटे वृक्षों को धूप व हवा पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती है। प्राय: यही पॉम, मॉस, फर्न आदि पाए जाते है।

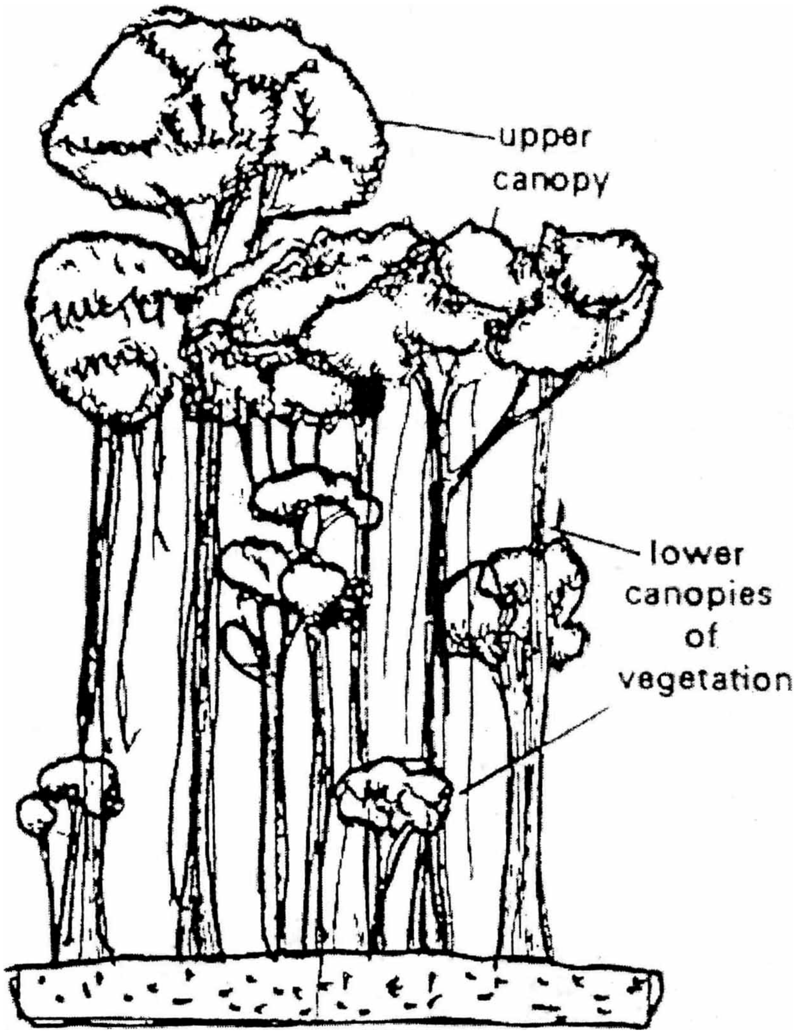

Fig. 11.6 A tropical rain forest, showing the upper and lower canopies of vegetation that effectively reduce the amount of light reaching the forest floor

C.2 ऊष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन (Tropical deciduous forest)

इन वनों में ऋतुएं बदलती रहती है। उन्हीं के अनुसार वर्षा होती है। यहां तापक्रम अधिक होता है। वर्षा मानसून के अनुसार होती है अत: इन्हें मानसूनी वन कहते है। यही घने लम्बे चौड़ी पत्तियों वाले पेड़ होते है। इनकी चौड़ी घनी पत्तियां एक छतरी (कैनोपी) के समान होती है। यहां बांस, टीक, देवदार आदि वृक्ष पाए जाते है। जन्तुओं में मेढक सर्प, चिडियाएं, शेर, हिरंण, सांभर, चीतल, दरयाई घोड़े लंगूर गोरिल्ला आदि पाए जाते है।

D. उपऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वन (sub-tropical rain forest)

ये वन फ्लोरिडा में पाए जाते है। वर्ष पर्यन्त वर्षा होने के कारण ऋतुओं में अंतर नहीं होता है। यहा सदाबहार पेड़ (वनस्पतियां) जैसे पॉम, फर्न, ओक, इमली, अंजीर आदि पाए जाते है यही पाए जाने वाले जन्तु वृक्षों में निवास करते है।

11.4 रेगिस्तान में रहने वाले प्राणियों के अनुकूलन

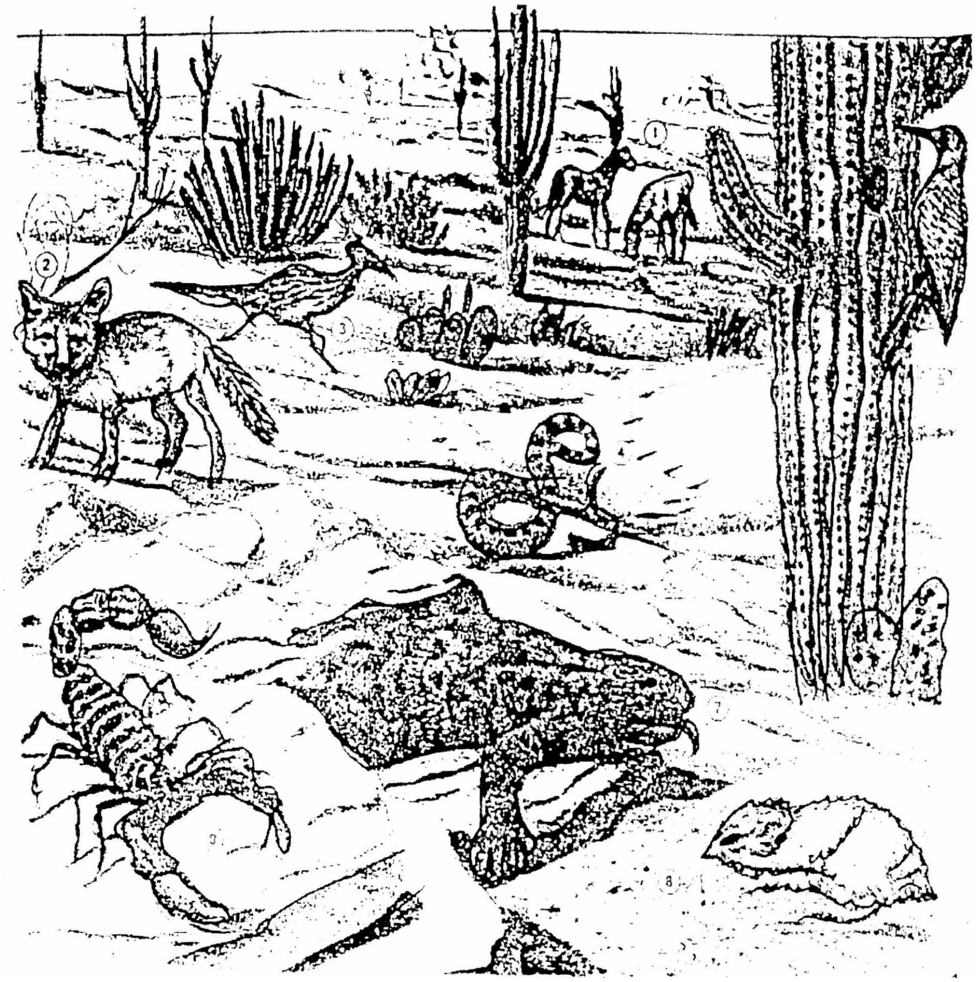

चित्र 11.7 मरूस्थलीय परिस्थितिक तंत्रा

11.3.1 जल की कमी (Scarcity of water)

वर्षा की कमी तथा प्राकृतिक जल स्त्रोतों की कमी के कारण यहाँ रहने वालों को जल की कमी का सामना करना पडता है।

11.3.2 वनस्पतियों की कमी (Low vegetation)

पानी की कमी के कारण वनस्पतियां भी बहुत कम होती है किंतु ये जलसंरक्षण का कार्य करती है।

11.3.3 तापक्रम में उच्चावचन (Fluctuation in temperature)

मरूस्थल में दिन में तापमान अधिक व रात्रि में कम होता है अर्थात् दिन अत्यधिक गर्म तथा राते अत्यधिक ठंडी होती है यहां तापक्रम में उच्चावचन पाया जाता है।

11.3.4 रेतीली आंधियाँ (Sandy Storms)

मरूस्थल में रेत होने के कारण तीव्र वायु वेग से रेतीली आंधिया चलती है इन धूलभरी आंधियों से रेत के टीले उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते है।

11.3.5 अधिक वाष्पन दर (High evaporation rate)

तापक्रम अधिक तथा वायु वेग अधिक होने के कारण वाष्पन दर अधिक हो जाती है।

11.3.6 अल्पनमी (Low Humidity)

पानी की अल्पमात्रा के कारण वातावरण में नमी कम पायी जाती है।

11.3.7 अभेद्य त्वचा (Impervious skin)

शरीर से जल वाष्पन को रोकने के लिए इनकी त्वचा अभेद्य हो जाती है। त्वचा से ऐसे स्त्राव स्त्रावित होते है जो जल वाष्पन रोकने में सहायता करते है। यहाँ जंतुओं की त्वचा पर कांटे, पट्ट, ढाल, शल्क आदि संरचनाएं विकसित हो जाती है।

11.3.8 बिलकारी प्रवृति (Burrowing nature)

गर्मी के समय जंतु बिल में रहते है जिससे वाष्पन कम होता है तथा गर्मी से राहत रहती है।

11.3.9 जल संरक्षण (Water conservation)

वातावरण की शुष्कता के कारण जीवों के शरीर में जल वाष्पन की कमी हो जाती है। यही पाये जाने वाले जंतुओं में जल संरक्षण संबंधी अनुकूलन होते है।

11.3.10 कम चयापचयन दर ((Reduced rate of metabolism)

अपने शरीर में चयापचयन दर से कमी करके जल का संरक्षण करना यहाँ के जंतुओं की प्रमुख विशेषता है।

11.3.11 स्वेद ग्रंथियों का अभाव (Absence of sweatgland)

मरूस्थलीय रोडेन्ट (चूहों) में तथा कुछ अन्य जानवरों में स्वेद ग्रंथियों का अभाव होता है। अत: शरीर से पसीना बाहर नहीं निकलता है, तथा अप्रत्यक्ष रूप से शरीर में जल का संरक्षण रहता है।

11.3.12 रात्रिचर स्वभाव (Nocturnal habbit)

दिन में अधिक तापक्रम होने के कारण यहा जीव रात्रिचर होते है। ये भोजन की पूर्ति रात्रिकाल में ही करते है क्योंकि रात्रि में वाष्पन की समस्या नहीं रहती है।

11.3.13 उत्सर्जन (Excretion)

इन जंतुओं में यूरिया का उत्सर्जन न होकर यूरिक अम्ल का उत्सर्जन होता है अत: इस माध्यम से जल संरक्षित किया जाता है।

11.3.14 एस्टीवेशन (Astivation)

कंगारू, चूहे, चुहिया गर्मी से बचाव करने के लिए निश्चेष्ट होकर पडे रहते है। इससे जल संरक्षण में सहायता मिलती है। ये दिन में प्राय: छायादार स्थानों में रहते है।

11.5 घास के मैदान (Grass land biome)

11.5.1 परिचय

पृथ्वी के लगभग 24% भाग घास के मैदान है। विश्व के ऊष्ण कटिबंधीय व शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रो में घास के मैदानों का विशेष स्थान है। यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 10 से 50 इंच रहता है। वर्षा अनियमित होने के कारण मौसमी परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखे जाते है।

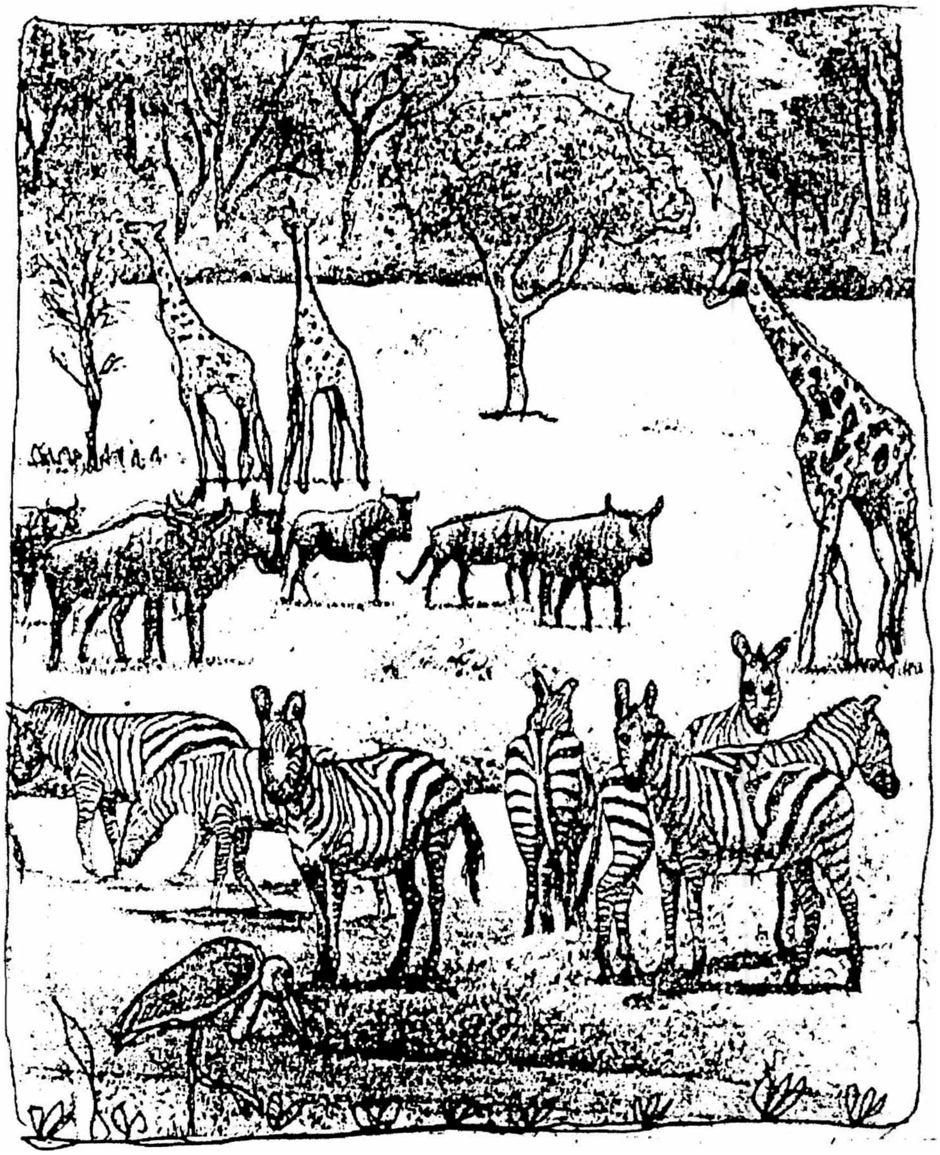

चित्र 11.8 घास के मैदान

11.5.2 मैदानों के प्रकार

क्षेत्रीयता के आधार पर इन्हें निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

1. सवाना घास के मैदान (Savanna Grass land)
2. प्रेरिज घास के मैदान (Prairies Grass land)
3. स्टेपीज घास के मैदान (Steppes Grass land)

1. सवाना घास के मैदान (Savanna Grass land)

लम्बी घास के मैदानों को सवाना कहा जाता है। इन क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी व वर्षा होती है जबकि शीत ऋतु शुष्क व कम ठण्डी होती है। ये दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, एशिया तथा पूर्वी अफ्रीका में पाए जाते है। यही वृक्षों की ऊँचाई कम होती है व घास लगभग 2 मीटर तक लम्बी होती है।

2. प्रेरिज घास के मैदान (Prairies Grass land)

ये 30° और 45° अक्षाशों में मध्य में महाद्वीपों के भीतरी भागों में साइबेरिया, उत्तर पश्चिमी अमेरिका, पूर्वी यूरोप आदि में पाए जाते है। यहां तापक्रम में विभिन्नता पायी जाती है। वर्षा कम व अनियमित होती है। यही प्राय: वृक्षों का अभाव होता है किंतु छोटी व लम्बी घासें पायी जाती है।

3. स्टेपीज घास के मैदान (Steppes Grass land)

स्टेपीज घास के मैदान अरबसागर, काला सागर एवम् कैस्पियन सागर के आस पास मिलते है ये स्टेपीज कहलाते है। ये मैदान शुष्क होते है व इनमें छोटे पेड़ पाए जाते है। यह मवेशियों के चराई के लिए उपयुक्त होते है। इनमें जानवरों को छुपने का स्थान नहीं मिलता है।

प्राणिजात : इन मैदानों में घास चरने वाले शाकाहारी जंतु तथा तेज दौड़ने वाले जंतु पाए जाते है। जैसे घोड़े, गधे, जेबरा, एन्टीलोप, लोमड़ी, भेड़िया, जंगली सूअर, प्रेरी चिकन, उल्लू, बाज, सर्प, कछुए, छिपकली, टोड मेढक, तथा कुछ कीट जैसे दीमक, झीगुर, लोकस्ट, ततैया, चीटियां तथा मधुमक्खियां।

11.5.3 मैदानों में पाए जाने वाले प्राणियों में अनुकूलन

1. यूथचारिता

यहाँ पाए जाने वाले जंतु यूथचारिता के प्रति अनुकूलन प्रदर्शित करते है। घास के मैदानों में शाकाहारी प्राणी प्राय: झुण्डों में विचरण करते है। इस प्रकार ये स्वयं को सुरक्षित महसूस करते है, उदाहरण - हिरन।

2. धावी

खुले में आवास होने के कारण स्वयं की रक्षा हेतु धावी स्वभाव का विकास हो जाता है। भोजन, सुरक्षा तथा स्थान परिवर्तन आदि का दौडने से प्रत्यक्ष संबंध होता है।

3. बिलकारी

खुले आवास में असुरक्षा से बचने के लिए ये जंतु मिल में रहने के प्रति अनुकूलित हो जाते है। यहाँ ये सुरक्षित महसूस करते है। कुछ जन्तु स्वयं बिल बनाते है जबकि कुछ दूसरे के बनाए हुए बिल में रहते है। उदाहरण सर्प, खरहा आदि।

11.6 बोध प्रश्न

1. स्थलीय आवास को परिभाषित कीजिए।

 ....

2. स्थलीय आवास के अजैविक कारकों के नाम लिखिए।

 ....

3. जैविक कारकों से आप क्या समझते है स्थलीय आवास के जैविक कारक कौन-कौन से है।

 ....

4. स्थलीय आवासों में किस प्रकार का तापक्रम रहता है।

 ....

5. अपमार्जक किन्हें कहते है समझाइये।

 ....

6. जीवोम किन्हें कहते है? इनके वर्गीकरण का श्रेय किन्हे जाता है।

 ....

7. ध्रुवीय बायोम कहो पाए जाते है यहा किस प्रकार का तापक्रम रहता है।

 ....

8. एल्पाइन क्षेत्र (Alpine zone) से आप क्या समझते है?

 ....

9. शंकुधारी वनों की जलवायु किस प्रकार की होती है।

 ....

10. शीतोष्ण सदाबहारी वनों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

 ....

11. उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन कहो पाए जाते है।

 ....

12. रेगिस्तान में रहने वाले जंतु जल की कमी को किस प्रकार पूरा करते है?

 ....

13. रेगिस्तान में रहने वाले जंतु रात्रिचर होते है क्यों?

 ....

14. एस्टीवेशन किसे कहते है?

 ....

11.7 शब्दावली (Glossary)

1. अजैविक -)Abiotic (

2.	जैविक	-	)Biotic (
3.	स्वयंपोषी	-	)Autotroph(
4.	विषमपोषी	-	)Heterotroph(
5.	अपमार्जक	-	)Scaverngers (
6.	ब्लादीमीर कोपेन	-	)Wladimir Koppen (
7.	बरघे	-	)Muskoxen(
8.	लाइकेन	-	)Lichen (
9.	रेनडियर भॉस	-	)Reindeer Moss (
10.	एल्पाइन क्षेत्रा	-	)Alpine Zone(
11.	कॉटनवुड	-	)Cotton wood (
12.	रेतीली आंधियाँ	-	)Sandy Storms (
13.	रात्रिचर स्वभाव	-	)Nocturnal Habbit(
14.	एस्टीवेशन	-	)Astivation (

11.8 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. **कशेरूकी प्राणी विज्ञान :** कोटपाल रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ

2. **कॉर्डेटा :** आशा शर्मा, राजेन्द्र कौशिक, रमेश बुक डिपो, जयपुर

3. **कॉडेटा :** एस. के. शर्मा, पी.के. गोयल, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर

4. **कशेरुकी प्राणी शास्त्रा :** बैजल सैनी, अरूण प्रकाशन, आगरा।

इकाई 12

पारिस्थितिकी एवं मानव भविष्य

(Ecology and Human Future)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जनसंख्या वृद्धि

12.3 भारत परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या वृद्धि की विवेचना

12.4 परिवार नियोजन

12.5 जनसंख्या वृद्धि रोकने में व्यावहारिक उपाय

12.6 पर्यावरण पर मानव प्रभाव

12.7 पारिस्थितिकी के रूपान्तरण में मानव की भूमिका

12.8 सम्भावित जलवायुवीय परिवर्तन

12.9 मानव भविष्य

12.10 जन स्वास्थ्य एवं कल्याण

12.11 बोध प्रश्न

12.12 सारांश

12.13 शब्दावली

12.14 संदर्भ ग्रन्थ

12.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य (Objective)

1. जनसंख्या वृद्धि एवं जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं का ज्ञान।
2. भारत में जनसंख्या वृद्धि दर तथा उससे उत्पन्न समस्याऐं।
3. परिवार को नियोजित रखना देश की उन्नति के लिए हितकारी हैं।
4. परिवार को सीमित रखने के व्यावहारिक उपाय।
5. जनसंख्या वृद्धि के कारण मानव परकशित पर कुप्रभाव।
6. जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण को हो रही क्षति के कारण जलवायु परिवर्तन।
7. मानव भविष्य एवं जन स्वास्थ्य एवं कल्याण की जानकारी।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

विश्व को प्रगति के लिए जनसंख्या वृद्धि एक संकट बन गई हैं। विकासशील राष्ट्र एवं अविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर तेजी से बढ़ रही हैं। परिणामस्वरूप पृथ्वी पर अतिरिक्त भार पड़ रहा हैं। सीमित संसाधनों के कारण बढ़ती मांगों की पूर्ति हो पाना संभव नहीं हैं। तीव्रता से होती जनसंख्या वृद्धि के

कारण विकासशील राष्ट्रों को प्रत्येक नागरिक तक दैनिक जरूरतों का सामान पहुँचा पाना एक कठिन कार्य बन गया हैं।

भारत में पिछले 100 वर्षा में जनसंख्या लगभग 77 करोड़ बढ़ गई हैं। संसाधन तो सीमित हैं। सरकार के लिए बढ़ती माँग की पूर्ति कर पाना सम्भव नहीं होता हैं। आर्थिक एवं सामाजिक संकट भी राष्ट्र को घेर लेते है। युवाओं को भी इन्हीं कारणों के चलते बेरोजगारी एवं संघर्षपूर्ण जीवन से जूझना पड़ रहा हैं। नेहरू ने 1957 को बढती जनसंख्या को रोकने तथा इस समस्या को अहमियत देते हुए परिवार नियोजन कार्यक्रम की शुरूआत भारत में की थी। इस पर कार्य जारी हैं।

पृथ्वी के जलवायु में प्राकृतिक रूप से निरन्तर बदलाव आते रहते हैं। परन्तु औद्योगिक विकास के कारण मानव पृथ्वी के वातावरण के साथ निरन्तर छेड़छाड़ कर रहा हैं। इसका असर प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखा जा सकता हैं। पृथ्वी की जलवायु में औद्योगिक विकास के चलते विषैले तत्व आ गये हैं जो पृथ्वी की जलवायु को दूषित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप धरती का तापमान निरन्तर बढ़ रहा हैं।

12.2 जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

ऑकड़े बताते हैं कि 1960 में विश्व की जनसंख्या 1.6 बिलियन थी, 1987 में यह बढ़ कर 3 बिलियन हो गई। इस समय विश्व में जनसंख्या वृद्धि 80 मिलियन प्रतिवर्ष की दर से हो रही हैं। यदि इसी दर से जनसंख्या में वृद्धि होती चली गई तो सन् 2050 तक विश्व की जनसंख्या 7.8 बिलियन का ऑकड़ा पार कर जाएगी। जनसंख्या में वृद्धि तब तक होती रहती हैं जब तक जन्म लेने वालों की संख्या, मृत्यु को प्राप्त होने वालों की संख्या के समकक्ष नहीं आ जाती।

भारत की जनसंख्या 11 मई 2000 को 1 बिलियन का आँकड़ा पार कर गई। अगर इसी दर से जनसंख्या वृद्धि होती चली गई तो सन् 2050 तक भारत विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा। आँकडों के अनुसार आज दुनिया का हर सातवाँ व्यक्ति भारतीय हैं। भारत हर वर्ष एक नवीन आस्ट्रेलिया को उत्पन्न कर रहा हैं।

जनसंख्या वृद्धि के कई कारणों में से एक कारण विकासशील देशों में चल रहे जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आई "हरित क्रान्ति" को माना जा रहा हैं। इन सभी के कारण आज मानव दीर्घ आयु हो स्वस्थ्य जीवन जी रहा हैं। जनसंख्या में निरन्तर होती वृद्धि के कारण प्रकृति मनुष्यों की मांग को पूर्ण करने में असमर्थ होती दिखाई पड़ रही हैं। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे भोज्य पदार्थ, शुद्ध पेयजल, रहने योग्य स्थल एवं शुद्ध वायु की आवश्यकताओं को पूर्ण करना प्रकृतिक के लिए अब आसान नहीं रह गया हैं। सीमित मात्रा में उपलब्ध इन सभी आधारभूत चीजों की बढ़ती मांग के कारण पर्यावरण में साम्यावस्था बिगड़ गई हैं। जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न हो रही विभिन्न समस्याओं का मुख्य कारण पृथ्वी पर जनसंख्या का असमान वितरण हैं।

संसार में जनसंख्या का असमान वितरण (Unequal distribution of population in the world)

मानव पृथ्वी पर असमान रूप से फैले हुए हैं। जैसे: 90 प्रतिशत आबादी उत्तरीय गोलार्द्ध (Northern Hemisphere) में पाई जाती हैं। कुल जनसंख्या की 75 प्रतिशत आबादी दक्षिण-पूर्वी एशिया, यूरोप तथा दक्षिणी-पूर्वी उत्तरी अमेरिका में पाई जाती हैं।

1. जनसंख्या वृद्धि के कारण अफ्रीकी देश तथा एशियाई देशों में भारत सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाला देश होगा। यहाँ जंगल, आबादी असन्तुलन की रेखा को पार करने की सम्भावना हैं।
2. प्रदूषण से रोगों व विकारों की आनुपातिक दर यूरोपीय देशों में 30.3 प्रतिशत जबकि एशिया में 12 प्रतिशत तथा भारत में 20 प्रतिशत से ऊपर जो पिछले हर वर्ष से बढ़ती नजर आती हैं।

12.3 भारत के परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या वृद्धि की विवेचना

जनसंख्या वृद्धि भारत के लिए एक विकट समस्या हैं। भारत के पास विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत भू-भाग हैं जो विश्व की लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या को संभाले हुए हैं। भारत जनसंख्या के हिसाब से विश्व में दूसरे स्थान पर हैं परन्तु जिस तेज गति से जनसंख्या बढ़ रही हैं। जल्द ही भारत विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त कर लेगा। बढ़ती जनसंख्या देश की अर्थव्यवस्था, प्राथमिक आवश्यकताओं, वातावरण एवं नीतियों को प्रभावित करती हैं। जनसंख्या वृद्धि दर 1.38 प्रतिशत हैं। ये 1901 से 2001 तक बढ़ती रही हैं। (सारणी -)

विभिन्न वर्षो में भारत की जनसंख्या

वर्ष	**जनसंख्या (करोड़ों मे)**
1901	23.93
1911	25.20
1921	25.13
1931	27.89
1941	31.86
1951	36.10
1961	43.92
1971	54.74
1981	74.86
1991	84.50
2001	100.5

जनसंख्या वृद्धि ने भारत में प्रगति कार्य को असफल करा हैं। प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, शुद्ध पेय जल, बिजली, यातायात सुविधा उपलब्ध करना आदि शामिल हैं। किसानों को बिजली खेती के लिए पानी, गरीब तबके के लोगों की आवश्यकताओं को देखते हुए भोजन, रहने योग्य स्थान, शिक्षा, निशुल्क चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करना सरकार की जिम्मेदारी हैं। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नीतियाँ बनाई जाती है जैसे सरकारी स्कूल, दवाखानें, परिवार कल्याण केन्द्र आदि, परन्तु बढ़ती जनसंख्या के आगे ये नीतियाँ विफल होती नजर आती हैं।

बढते प्रदूषण, बेरोजगारी और शिक्षा के अभाव के कारण समाज में अपराध बढ़ते जा रहे हैं। युवा वर्ग का जीवन संघर्ष पूर्ण हो गया हैं। भावी पीढ़ी को शुद्ध वायु, पेयजल एंव भरपूर भोजन देना अत्यन्त कठिन होगा। परिवार सीमित हो तो उसकी आर्थिक एंव सामाजिक स्थिति मजबूत होगी। बच्चों का स्वस्थ्य एवं शिक्षित संभव होगी।

12.4 परिवार नियोजन (Family Planning)

परिवार नियोजन का अर्थ हैं सीमित परिवार जिससे प्रत्येक व्यक्ति की जरूरतों को पूरा करना सम्भव होता हैं।

चरम सीमा पर पहुँच रही जनसंख्या एक स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक सिद्ध हो रही हैं। जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम के लिए जन्मदर को नियन्त्रित करना आवश्यक हैं। इसके लिये सभी वर्गो को जागरूक करने की आवश्यकता हैं।

भारत की पूर्ण जनसंख्या का 15 प्रतिशत भाग 1-5 वर्ष तक के बच्चो का हैं। स्वस्थ्य वातावरण एवं भरण पोषण के अभाव में इनमें से अधिकतर बच्चे कुपोषण एवं बिमारियों का शिकार हो जाते हैं। यह देश की उन्नति में बाधक है। एक सीमित परिवार ही बच्चों के लालन पालन पर पूरी तरह ध्यान दे सकता है। वह उस परिवार के स्वास्थ्य एंव कल्याण की दृष्टि से भी आवश्यक है।

परिवार नियोजन हेतु जानकारी परिवार कल्याण केन्द्र एवं परामर्श केन्द्र द्वारा निशुल्क दी जा रही हैं। विज्ञापनों द्वारा भी परिवार नियोजन एवं शिशु स्वास्थ्य के लिए जागरूकता बढाने के प्रयास है।

12.5 जनसंख्या वृद्धि रोकने के व्यवहारिक उपाय

जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए एवं स्वस्थ्य समाज का निर्माण करने के लिए माता-पिता को गर्भाशय में शिशु के निर्माण एवं विकास की पूर्ण जानकारी देना जरूरी है। इससे चाहे शिशु जन्म को रोकने भी संभव होगा। शिशु का निर्माण तब होता हैं जब नर-युग्मक (male gamete) तथा मादा-युग्मक (female gamete) मिलकर युग्मनज (zygote) बनाते हैं। यह युग्मनज ही गर्भाशय में विकसित हो कर शिशु का निर्माण करता हैं। मनुष्य अण्ड निषेचन के पश्चात शिशु का वर्धन माता के गर्भाशय में होता हैं।

जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिए नर-शुक्राणुओं का गर्भाशय में मादा के अण्ड से सम्पर्क न हो सके तथा इसको रोकने के लिए अनको प्रकार के प्राकृतिक, रासायनिक तथा शल्यात्मक साधन उपलब्ध हैं। जैसे :-

1. **रासायनिक औषधियाँ:-** जन्मदर को कम करने के लिए आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक तथा एलोपैथिक औषधियों का सेवन करने से गर्भाशय में निषेचन की क्रिया नहीं होती। परिणामस्वरूप सन्तान पैदा नहीं होती।

   जन्मदर को कम करने के लिए स्त्रियों तथा पुरूषों के लिए अनेकों यांत्रिक विधियाँ उपलब्ध हैं जिनमें निरोध (Condom), डायफ्राम (Diaphragm Dutch cup), वाल्ट कैप (vault cap), सरवाइकल कैप (cervical cap) इत्यादि प्रमुख हैं।

2. **शल्य क्रिया विधि (Operation method):-** पुरूष तथा स्त्रियों में इस विधि द्वारा स्थायी रूप से जन्मदर को नियन्त्रित करते हैं। इस उपाय को बच्चीकरण (sterilization) कहते हैं। बन्ध्यीकरण की सुविधा पुरूष तथा स्त्री के लिए हर परिवार कल्याण केन्द्र पर उपलब्ध हैं। पुरूषों में बन्ध्यीकरण की इस क्रिया को वेसेक्टोमी (vasectomy) तथा स्त्री में ट्यूबैक्टोमी (tubectomy) कहते हैं।

(i) **नसबन्दी या वेसेक्टोमी (vasectomy):-** वृषण में शुक्राणुओं का निर्माण होता हैं। शुक्राणु शुक्रनली द्वारा ऊपर की तरफ बढ़ते हैं। इस क्रिया में शुक्रवाहिनी (vas deferens) को काटकर बॉध दिया जाता हैं, जिससे वृषण में बने शुक्राणु (sperms) बाहर नहीं आ पाते। अत: प्रजनन क्रिया में शुक्राणुओं के अभाव में निषेचन नहीं होगा। परिणामस्वरूप सन्तान उत्पन्न नहीं होगी। नसबन्दी के ऑपरेशन में केवल 5 मिनट लगते हैं। इसका पुरूष के स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता हैं।

(ii) **नसबन्दी ट्यूबैक्टौमी (tubectomy):-** महिलाओं में अण्ड (ovum) का निर्माण अण्डाशय में होता हैं। अण्डाशय में बना अण्डा अण्डवाहिनी (Fallopian tube) द्वारा निषेचन के लिए खिसकता हैं। इस ऑपरेशन में अण्डवाहिनी को काटकर बॉध दिया जाता हैं, जिससे अण्ड आगे न बढ़े तथा निषेचन की क्रिया न होने से सन्तान पैदा न हो सके। इस विधि में स्त्रियों को कम समय में अस्पताल से छुट्टी मिल जाती हैं। इसलिये यह विधि अब अधिक लोकप्रिय हैं।

3. **गर्भ को नष्ट करना(गर्भपात) :-** ऑपरेशन अथवा दवाओं द्वारा प्रारम्भिक अवस्था में गर्भ को निकाल देते हैं। परन्तु इसका स्त्री के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं। यह विधि विशेष परिस्थितियों में ही प्रयोग में लायी जाती हैं।

परिवार नियोजन की असफलता :

इसके मुख्य कारण हैं -

1. **रूढ़िवादी विश्वास :** आज भी भारत में शिशु जन्म को ईश्वर का आर्शीवाद माना जाता हैं। पुत्र की चाहत में अनेक बच्चे पैदा किये जाते हैं।

2. **आर्थिक कारण :** निर्धन परिवार यह मानते हैं कि जितने हाथ उतने कमाने वाले।

3. **शिक्षा का अभाव :** अशिक्षित परिवार परिवार नियोजन का महत्व नहीं समझते। भारत में अनेक समुदाय आज भी स्त्रियों की शिक्षा को उचित नहीं मानते हैं जबकि जागरूक एंव स्वस्थ्य समाज के निर्माण में शिक्षित महिलाएं महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

12.6 पर्यावरण पर मानव प्रभाव (Effects of Man on Environment)

पर्यावरण सामाजिक और आर्थिक जीवन के लिये अति महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरण मनुष्य की निम्न जरूरतों को पूर्ण करता है:-

✓ खाद्य आपूर्ति
✓ ऊर्जा
✓ औषधियों
✓ औद्योगिक उत्पाद

आदिकाल से लेकर वर्तमान तक मानव (मानव सभ्यता) प्रकृति के बदलते सम्बन्धों को निम्नलिखित 4 चरणों में विभाजित किया जा सकता हैं।

1. आखेट तथा भोजन संग्रह काल (Period of hunting and food gathering)
2. पशुपालन तथा पशुचारण काल (Period of animal domestication and pastoralism)

3. पौध पालन तथा कृषि काल (Period of plant domestication and agriculture)

4. विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगिक काल (Period of Science, technology and industrialization)

1. आखेट तथा भोजन संग्रह काल (Period of hunting and food gathering)

मानव प्राकृतिक पर्यावरण (natural environment) का ही एक घटक रहा है। पर्यावरण आदिमानव की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता था। भोजन तथा विश्राम के लिए वह जंगली जानवरों का शिकार तथा फलफूल का संग्रह एवं गुफाओं का सहारा लेता था।

2. पशुपालन तथा पशुचारण काल (Period of animal domestication and pastoralism)

कई गुफाओं में आदि मानव द्वारा उकेरे गये चित्रों ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि आदिमानव भी पशुपालन करते थे। पशुओं का पालन निम्न उद्देश्यों से प्रारम्भ किया गया होगा -

(i) मांस के लिए

(ii) दूध के लिए

3. पौध पालन तथा कृषि काल (Period of plant domestication and agriculture)

जल संसाधन के पास उग आए पौधों से फल प्राप्त कर एवं उनके बीजों से उग आए पौधो के देखभाल कर मानव कृषि करना सीख गया। इसी कारण उसने अपने आवास स्थल नदियों के किनारे बनाने शुरू कर किए। नदी घाटी सभ्यता का विकास हुआ। उस समय कम आबादी के चलते प्रकृति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं हुआ।

4. विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगिक काल (Period of Science, technology and industrialization)

औद्योगिकीकरण की शुरूआत के साथ ही नये अनुसंधानों एवं तकनीकों का विकास हुआ। धीरे-धीरे मानव भौतिक से औद्योगिक मानव बन गया। जनसंख्या वृद्वि के साथ ही उत्पादन की क्षमता भी बढ़ती चली गई। इसका सीधा असर प्रकृति पर देखा जा सकता हैं। आज मानव प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता हैं।

12.7 पारिस्थितिकी के, रूपान्तरण में मानव की भूमिका (Role of Man in Modifying Natural Communities)

मानव द्वारा प्रकृति पर किये जा रहे प्रयोगों ने प्रकृति पर दुष्प्रभाव डाला हैं। मानव पहले प्रकृति के विभिन्न तत्वों एवं शक्तियों के साथ सांमजस्य बिठा लेता था किन्तु आज यह सन्तुलन बिगड गया हैं। प्राकृतिक वातावरण के विभिन्न घटकों में से यदि किसी एक भी घटक में परिवर्तन आता हैं तो पारिस्थितिकी तन्त्र की विभिन्न श्रृंखलाओं में परिवर्तन आ जाता हैं। इससे अनेक समस्याओं का जन्म होता हैं।

पर्यावरण पर मानव की गतिविधियों (activities) के प्रभावों को दो भागों में बाँटा जा सकता हैं:-

(i) प्रत्यक्ष या उद्देश्यपूर्ण प्रभाव (Direct or interntional impacts).

(ii) अप्रत्यक्ष या निरूद्देश्यपूर्ण प्रभाव (Indirect or Unintentional impacts).

(i) प्रत्यक्ष या उद्देश्यपूर्ण प्रभाव (Direct or intentional impacts)

मानव अपने आर्थिक एवं भौतिक विकास के लिए पर्यावरण को रूपान्तरित करता हैं। इन परिवर्तनों में मुख्य हैं-

(अ) कृषि कार्य (Agricultural Work) - अधिक उत्पादन की माँग के रहते कृषि जगत में रसायनिक खाद, कीटनाशकों का उपयोग एवं कृषि का मशीनीकरण बढ गया हैं। इन सभी कारणों से वातावरण का प्रदूषण बढ़ रहा है।

(ब) भूमि के उपयोग में परिवर्तन (Modifications in Land) :- पर्यावरण सन्तुलन के लिए एक-तिहाई भूमि का जंगल होना आवश्यक हैं। मानव ने अपने उपयोग के लिए कृषि में विस्तार तथा फसलों के उत्पादन के लिए वनों की कटाई प्रारम्भ कर दी तथा घास क्षेत्रों को जलाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार व्यापारिक उद्देश्य से भी वनों की कटाई प्रारम्भ कर दी। इन सभी परिवर्तनों का बहुत ही विनाशकारी प्रभाव हुआ है।

(स) मौसम रूपान्तरण (Modification in Weather):- वर्षा को प्रेरित करने के लिए मेघ बीजन (cloud seeding to induce precipitation), बादलों एवं कोहरों को उनके स्थान से हटाना, ओलावृष्टि (hailstorm) को रोकना आदि मौसम के रूपान्तरण में मानव द्वारा की गई गतिविधियाँ है।

प्रत्यक्ष या सुनियोजित प्रभाव उत्क्रमणीय (reversible) अथवा परिवर्तनीय होते हैं। इनके द्वारा पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी होने पर उन्हें कुछ सीमा तक कम भी किया जा सकता है।

निर्माण कार्यो (जैसे बाँधों तथा जल भण्डारों का निर्माण) के द्वारा सतह के नीचे स्थित शैलों के सन्तुलन में अव्यवस्था हो जाती हैं। इसके कारण भूकम्पीय घटनाओं प्रारम्भ हो जाती हैं। जैसे :- महाराष्ट्र में सतारा जिले में कोयना बाँध के साथ निर्मित कोयना जल भण्डार के जलीय भार के कारण 11 दिसम्बर, 1967 का प्रलयंकारी भूकम्प।

मानव अपनी प्राथमिक एवं द्वितीयक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर हैं। वह प्रकृति में मौजूद सभी संसाधनों का उपयोग करना चाहता हैं। फलत: उनको परिवर्तित कर देता हैं।

(ii) अप्रत्यक्ष प्रभाव (Indirect Impact) :- बढते कारखानों और उनसे निकलते विषैले पदार्थो से प्रकृति को हो रहे नुकसान की ओर मानव को अपना ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता हैं। जल, थल व वायु को मानव ने दूषित कर दिया हैं। कल-कारखानों से होते रिसाव का प्रभाव तो हम भोपाल गैस त्रास्दी में देख ही चुके हैं। D.D.T. जैसा एक विषैला पदार्थ आज अप्रत्यक्ष रूप से भोजन श्रृंखला में अपना स्थान बना चुका है। यह शरीर में पहुँच कर विकार उत्पन्न करता हैं। युद्ध के दौरान हुए समुद्रो मे तेल रिसाव से कई समुद्रीय प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं।

इसी प्रकार पौधो के वंशागत गुणों में सुधार के नाम पर पौधों के वास्तविक गुणों को नष्ट किया जा रहा हैं। जिससे पौधों की अनेक जातियों के विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया हैं। स्थानान्तरण कृषि (Jhuming or shifting cultivation) से वनों का सर्वाधिक विनाश हुआ हैं।

12.8 सम्भावित जलवायुवीय परिवर्तन (Possible Climate Change)

मानव द्वारा प्रेरित पृथ्वी की जलवायु में परिवर्तन हो रहे हैं जो पर्यावरण, समाज एवं अर्थव्यवस्था के लिए खतरा साबित हो रहे हैं।

जलवायु में परिवर्तन के कारण

(1) सूर्य की किरणों का तिरछापन,

(2) सौर धब्बे,

(3) वायुमण्डल की पारदर्शिता,

(4) प्रदूषण की मात्रा आदि प्रमुख हैं।

सूर्य की किरणे जितनी सीधी पड़ेगी उतनी ही अधिक ऊष्मा प्राप्त होगी, पर सौर-ऊर्जा की पृथ्वी पर पड़ने वाली मात्रा को वायुमण्डल की पारदर्शिता भी नियन्त्रित कर सकती हैं। अस्थायी तौर पर ज्वालामुखी विस्फोट भी वायुमण्डल की पारदर्शिता को प्रभावित कर सकते हैं। जैसे : टम्बोरो (सुमात्रा) के 1815 के भंयकर ज्वालामुखी विस्फोट ने अगले पूरे वर्ष का मौसम बदल दिया था 1816 में उत्तरी न्यूयॉर्क तथा न्यू इंग्लैण्ड में हर महीने धुंध तथा कोहरा छाया रहा, जिससे भारी क्षति हुई।

प्रदूषण के कारण कार्बन डाइऑक्साइड और धूल कणों की मात्रा में वृद्धि हो रही हैं। इससे वायुमण्डल का तापमान बढ रहा हैं। "हरितगृह प्रभाव" (Green House Effect) उत्पन्न करने वाली गैंसो को यदि नियन्त्रित नहीं किया गया तो पृथ्वी की सतह का तापमान अगली सदी तक 6.4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा यह स्थिति खतरनाक होगी।

धूल कण वायुमण्डल की पारदर्शिता को कम करते हैं। इससे पृथ्वी की सतह पर ऊर्जा कम पहुँच पाती हैं। इससे तापमान गिरने लगता हैं। अभी तक कार्बन डाइ ऑक्साइड और धूल कणों की मात्रा में वृद्धि के परस्पर विरोधी प्रभाव एक-दूसरे को सन्तुलन में रखे हुए थे परन्तु अब यह सन्तुलन बिगड़ता जा रहा हैं।

पृथ्वी पर आ रहे जलवायु परिवर्तन विशेष रूप से तापमान को 2020 तक 2 डिग्री सेल्सियस तक कम करने के लिये प्रयास प्रारम्भ किये गये हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में भी अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा हो गई हैं जैसे वर्षा के समय में परिवर्तन इसमें हर वर्ष बदलाव आ रहे हैं। जो क्षेत्र कभी मरूस्थल हुआ करते थे उसमें समान्य वर्षा होने लगी हैं। इन सबका असर कृषि पर अधिक पाया गया हैं। सन् 2007 में जलवायु परिवर्तन के खतरनाक परिणामों से बचने के लिये "डब्ल्यू डब्ल्यू एफ अन्तर्राष्ट्रीय" ने "ग्लोबल क्लाइमेंट चेन्ज प्रोग्राम" चालू किया हैं।

पृथ्वी का तापमान बढ़ने से कई विपरीत प्रभाव दिखने लगे हैं। जैसे: (1) हिमखडों का पिघलना, (2)ठण्डे इलाकों में घास का उग जाना, (3) ऋतुओं के समय में फेरबदल होना आदि। मच्छर जनित रोग अब ठंडे रहने वाले देशों में भी हो रहें है। इसका कारण वहां के तापमान में वृद्धि होना हैं। कई इलाकों में हिमखंडों के पिघल जाने से जलस्तर बढ़ गया है, जिसके कारण निचले इलाकों में बाढ़ का खतरा पैदा हो गया है। साथ ही समुद्र का जलस्तर भी बढ़ रहा है। यह एक खतरनाक स्थिति है।

12.9 मानव भविष्य (Human Future)

जीव संख्या या समष्टि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से जुड़ा भविष्य- सन् 1981 में हमारे देश की जनसंख्या 74 करोड़ थी जबकि 2001 में यह बढ़कर 100 करोड़ हो गई लेकिन जो भूमि हमारे पास उपलब्ध हैं इस पर जनसंख्या को देखते हुए खाद्यान्न की आवश्यकता के लिये सभी को नये सिरे से विचार करना होगा।

जैव प्रौद्योगिकी (बायोटेक्मोलोजी) का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। फसलों के सुधार एवं गुण स्थिरता को कायम रखने के लिये संरक्षण के महत्व पर जोर दिया जाना चाहिये। पहले चावलों की लगभग 30 हजार किस्मों का उत्पादन करते थे जो कि घटकर 210 तक ही रह गई हैं। इसका कारण बढ़ती जनसंख्या, वनों का विनाश, ओजोन परत का क्षरण, तेजाबी वर्षा और पृथ्वी का निरन्तर गरम होना हैं। चिकित्सा एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में पादपों और सूक्ष्म जीवों का बढ़ता हुआ उपयोग भी जीवों की प्रजातियों के विलुप्त होते जाने का मुख्य कारण हैं।

मानव जीव संख्या व खाद्य समस्या संरक्षणवेताओं के अन्तर्गत आती हैं। मानव जीव संख्या का प्राकृतिक नियन्त्रण बीमारियॉ, भोजन की कमी एवं युद्ध हैं। भूख या असन्तुलित आहार के कारण जीव संख्या पहले से ही परिमितता तक पहुँच चुकी हैं।

जीवन स्तर को ऊँचा रखने के लिये तथा मानव जीव संरक्षण के लिये हमें सभी प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग करना चाहिए। जिसमें हमारे जंगल, मश्दा, जल, खनिज और वन्य जन्तु शामिल हैं। हमें मश्दा, कोयला, लोहा तथा अन्य सीमित खनिज आदि प्राकृतिक साधनों का संरक्षण करना चाहिए। जन्मदर नियंत्रण (birth rate control) का होना अति आवश्यक हैं। कृषि उत्पादन के बढ़ने से संसार की जनसंख्या को स्थाई रखने में सहायता मिल सकती हैं। किन्तु अन्त में जीव समूह के नियन्त्रण के लिये प्रयास करना आवश्यक हैं।

12.10 जन-स्वास्थ्य एवं कल्याण (Public Wealth and Welfare)

समाज को स्वस्थ्य एवं निरोगी बनाने के लिये आज मानव प्रयासरत हैं। बीमारियों के रोकथाम के लिये अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्वि के कारण स्वस्थ्य वातावरण उपलब्ध नहीं होता। बड़ी संख्या में लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं। झुग्गी झोपड़ी में बसे ये लोग कचरे के ढेरों के पास अपना आवास स्थल बना लेते हैं। इस प्रकार के रहन सहन के चलते मलेरिया, डेंगू पीलिया, प्लेग, चिकनगुनिया आदि बीमारियाँ बढ़ती जा रही है। मानव शरीर में इन बीमारियों को पहुँचाने में मच्छर, जूँ, चूहे आदि मध्यस्थ पोषक (intermediate host) की भूमिका अदा करते हैं। इन बीमारियों से बचने के लिये बीमारी वाहकों की रोकथाम के प्रति लोगों को जागरूक करना अति आवश्यक हो गया हैं।

जन्तुओं द्वारा फैलायी गई बीमारियों की रोकथाम के लिए परजीवी (Parasite) व पोषकों (Host) के जीवन चक्र एवं पारस्परिक सम्बन्धों की जानकारी होना आवश्यक हैं। कुछ रोग वाहक (disease carries) एवं नाशी जीवों (pests) की जीव संख्या पारिस्थितिकी की कुछ आवश्यक बातें मालूम होनी चाहिए। इन सब के अलावा इन जीवों की जीवसंख्या घटाने के लिए कुछ दूसरे रोकथाम के उपचार भी प्रयोग में लाने चाहिए। उदाहरण के लिए चूहों की जीवसंख्या। यह देखा गया हैं कि जहरीले पदार्थो,

भक्षकों तथा अन्य साधनों से पकड़ने (trapping) से चूहों की जीवसंख्या को कम करना असफल रहा हैं, किन्तु स्वच्छता (sanitation) के द्वारा सफलता प्राप्त हुई हैं।

जन्तुओं की कई बीमारियाँ जो मानव के लिए संचरणशील होती हैं, उनका नियन्त्रण करने के लिए उन्हें पारिस्थितिकीय ढंग से समझना आवश्यक होता हैं। जैसे मलेरिया की रोकथाम में सफलता मच्छरों की जीवसंख्या को कम करने से प्राप्त हुई न कि परजीवी के मानव शरीर में नियन्त्रण करने से।

उसी प्रकार स्क्रू वर्म मक्खिया (screw worm files) जो कि रोग वाहक होती हैं। x-किरणों (X-Ray) द्वारा बन्ध्यित (sterilized) नरों को छोड़ने से पूर्ण रूप से नष्ट हो गई।

रोग वाहकों की रोकथाम के लिए इस प्रकार की तकनिक से विभिन्न कीटनाशी दवाइयाँ महत्ता कम हो जाएगी क्योंकि ये तरीके कभी-कभी लाभप्रद होने के बजाय हानिकारक सिद्ध होते हैं।

रोग प्रसारक प्राणियों का नियन्त्रण

1. एड्स (एक्वायर्ड ईम्मीयूनो डेफिशिएन्सी सिंड्रोम) : एड्स एच.आई.वी. नामक वायरस के माध्यम से फैलता हैं। एच.आई.वी. लिम्फोसाइट में टी लिम्फोसाइट के साथ सॉकेट की तरह का स्थायी सम्बन्ध बना लेता हैं। ये कोशिका में होने वाली क्रियाओं को प्रभावित करता हैं। यह मानव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को धीरे-धीरे समाप्त करता हैं।
2. विकसित एवं विकासशील देशों के युवाओं में यह रोग तेजी से जगह बना रहा हैं। इसका कोई स्थायी इलाज नहीं हैं।
3. मलेरिया, काला आजार, फाइलेरिया, डेंगू चिकनगुनिया आदि रोगों के विस्तार को रोकने के लिए जनजागरूकता की आवश्यकता हैं।
4. सार्वजनिक स्वास्थ्य के उपायों में सुधार लाने की प्रक्रिया को सुदृढ़ करना आवश्यक हैं।
5. जैव प्रोद्योगिकी द्वारा पैदा किये गये उत्पादों को बाजार में लाने के बारे में कड़े नियम लागू करने की आवश्यकता हैं।
6. मानव जाति की स्वास्थ्य समस्या में अक्सर कीट जैसे: जूँ (louse), मक्खियाँ, फ्ली(Flea), मच्छर एवं टिक्स (ticks) का प्रमुख योगदान हैं ये कीट बूबोनिक प्लेग (Bubonic Plague), म्यूराइन टोफस (Murine Tophus), रेबिस (Rabes) आदि। व्याधीकारको के वाहक हैं। रोग और उनसे सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी पारिस्थितिकी के विभिन्न आयामों की सहायता से ही सम्भव हो सकी है। इसी सन्दर्भ में उनकी रोकथाम के प्रयास किये जा रहे हैं। मानव समाज का कल्याण पारिस्थितिकी विज्ञान के व्यावहारिक उपयोग से ही सम्भव हैं।

12.11 बोध प्रश्न

1. विश्व की 90 प्रतिशत आबादी .... में पाई जाती हैं।
2. मानव की मुलभूत आवश्यकताएँ हैं ....।
3. सन् 2007 के हिसाब से भारत की जनसंख्या वृद्धि दर .... हैं।
4. भारत के पास विश्व का .... प्रतिशत भू-भाग हैं।
   (अ) 3% (ब) 2.4% (स)12% (द) 5%
5. भारत की जनसंख्या का .... प्रतिशत भाग 1-5 वर्ष तक के बच्चों का हैं।

6. जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए मुख्य रूप से .... को नियन्त्रित करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

7. शल्य क्रिया द्वारा स्थायी रूप से जन्मदर को नियन्त्रित करने के उपाय को .... कहते हैं।

8. .... ही गर्भाशय में विकसित होकर शिशु का निर्माण करता हैं।

9. .... एवं .... के लिये मानव ने पशुओं को पालना शुरू किया था।

10. आदिमानव भोजन की पूर्ति के लिये निम्न कार्य करता था ....।

11. .... एवं .... का कृषि कार्य में प्रयोग प्रदूषण का कारण बन रहा हैं।

12. वनों के विनाश का मुख्य कारण है?
(अ) प्रदूषण (ब) डी.डी.टी. (स) स्थानान्तरण कृषि (द) रासायनिक खाद

13. प्रदूषण के कारण वातावरण में .... और .... कणो की मात्रा में वृद्धि हो रही है।

14. पृथ्वी की जलवायु निम्न में से किस कारण पर निर्भर करती है?
(अ) प्रदूषण की मात्रा (ब) सूर्य की किरणो का तिरछापन
(स) वायुमण्डल की पारदर्शिता (द) उपरोक्त सभी पर

15. पहले किसान चावलों की कितनी किस्मों का उत्पादन करते थे?
(अ) 10 हजार (ब) 20 हजार (स) 30 हजार (द) 40 हजार

16. सन् 2001 में भारत की जनसंख्या .... करोड़ हो गई।

17. मच्छर, जूँ चूहे आदि .... का कार्य करते हैं।

18. एड्स .... वायरस के कारण फैलना हैं।

12.12 सारांश (Summary)

1. जनसंख्या के असमान वितरण एवं तेजी से होती वृद्धि के कारण अनेक प्रकार की समस्याएं, उत्पन्न हो गई हैं जिनमें प्रमुख हैं भोज्य पदार्थ, शुद्ध जल, वायु एवं रहने योग्य स्थान की कमी।

2. भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर भारत को विकसित देशों को शामिल होने से रोक रही हैं। सन् 2000 में प्राप्त ऑकड़ों के अनुसार भारत की जनसंख्या 100 करोड़ से अधिक हो गई हैं।

3. छोटा परिवार सुखी परिवार - सीमित परिवार में बच्चों का भरण-पोषण, स्वास्थ्य एवं शिक्षा की ओर ध्यान दिया जा सकता हैं जो स्वास्थ्य समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

4. हमारी सरकार द्वारा जनसंख्या वृद्धि रोकने के कई उपाय किये जा रहे हैं जिनमें मुख्य रूप से निषेचन क्रिया को रोकने के लिये उपायों के बारे में लोगों को जागरूक करना हैं। सरकार ने अनेक स्थानों पर परिवार नियोजन परामर्श केन्द्र खोले है।

5. आदि काल से मानव अपनी आवश्यकताओं के लिये प्रकृति पर निर्भर रहा हैं समय-समय पर वह आखेट, पशु पालन आदि कार्य करता था परन्तु प्रकृति उसे सन्तुलित कर देती थी। जैसे-जैसे मानव विकसित होता गया वह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष से प्रकृति को क्षति पहुँचाता गया। इसी कारण प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ गया हैं।

6. औद्योगिक विकास के फलस्वरूप वातावरण में विषैली गैसे अपना कुप्रभाव दिखाने लगी हैं जिसके चलते पृथ्वी का तापमान बढ़ने लगा हैं, मौसम अनियन्त्रित हो गये हैं। यदि जल्द ही इस ओर प्रयास नहीं किये गये तो एक प्रलंययकारी स्थिति पैदा हो जाएगी।

7. हमारे प्राकृतिक साधन सीमित हैं, इसलिये जितना हो सके इन प्राकृतिक साधनों का संरक्षण करना चाहिये नहीं तो हम अपनी इस प्राकृतिक सम्पदा को आगे आने वाली पीढ़ी को नहीं सौंप पाएँगे। जनसंख्या वृद्धि के कारण इन सम्पदा का बिना सोचे समझे प्रयोग हमारे लिये ही हितकारी नहीं होगा।

8. जन स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए जीवसंख्या भी जिम्मेदार हैं रोग वाहक (Disease Carries) एवं नाशी जीवों (Pests) की बढ़ती जीव संख्या के कारण रोग भी बढ रहे हैं। रोग प्रसारक के नियन्त्रण के लिए अनेक उपाय किये जा रहे हैं।

12.13 शब्दावली (Glossary)

1.	मेघ बीजन	-	Cloud Seeding
2.	ओला वृष्टि	-	Hailstorm
3.	उत्क्रमणीय	-	reversible
4.	कीटनाशक	-	Pesticides
5.	मध्यस्थ पोषक	-	Intermediate host
6.	संचरणशील	-	Transmissible
7.	उत्तरीय गोलार्द्ध	-	Northern hemisphere
8.	रोग वाहक	-	Disease carries
9.	स्थानान्तरण कृषि	-	Jhuming our Shifting Cultivation
10.	हरितगृह प्रभाव	-	Green House Effect

12.14 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. K.C. Agrawal Fundamental of Enviromental -Nidhi Publication
2. Cunningham & Saigo Environment Sciences

12.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तरीय गोलार्द्ध
2. भोजन, शुद्ध पेयजल, रहने योग्य स्थल

3. 1.%38

4. (ब (2.4%

5. %15

6. जन्मदर

7. बन्ध्यीकरण

8. युग्मनज

9. मांस एवं दूध

10. (i) जंगली जानवरों का शिकार (ii) फलफूल का संग्रह

11. रसायनिक खाद एवं कीटनाशकों

12. (स) स्थानान्तरण कृषि

13. CO2, धूल

14. (द) उपरोक्त सभी पर

15. (स) 30 हजार

16. 100 करोड़

17. मध्यस्थ पोषक

18. एच. आई. वी.

12.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "जनसंख्या वृद्धि का परिस्थितिकी व मानव भविष्य पर संभावित प्रभाव" इस पर लेख लिखिए।
2. परिस्थितिकी रूपान्तरण में मानव की भूमिका को समझाईयें।
3. भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
4. क्या मानव की गतिविधियाँ भविष्य में मौसम को भी प्रभावित कर सकती हैं? चर्चा करिए।
5. परिवार नियोजन पर लेख लिखिये।
6. जन-स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए बिमारियों को रोकथाम किस प्रकार की जा सकती है, बताऐ।
7. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए।
   (i) पर्यावरण एवं मानव
   (ii) जनसंख्या वृद्धि
   (iii) धरती का तापमान
   (iv) एड्स

इकाई 13
वन्य जीवन संरक्षण
(Wild Life Conservation)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 विलुप्त होते वन्य प्राणी तथा पौधे
13.3 संकटग्रस्त जीव-जन्तु
13.4 अरण्य विनाश से हानियाँ
13.4.1 अरण्य के महत्व
13.4.2 अरण्य विनाश के कारण
13.4.3 अरण्य विनाश से होती हानियाँ
13.5 वन्य प्राणी संरक्षण तथा प्रबन्ध
13.6 वन्य प्राणी के प्रबन्धीकरण के प्रयास
13.7 प्रकृति के लिए विश्वव्यापि कोष
13.8 संरक्षण कानून व सरकारी प्रयास
13.9 राष्ट्रीय पशु बाघ
13.10 वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु परियोजनाऐ
13.11 अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण संस्थाऐं
13.12 सारांश
13.13 शब्दावली
13.14 संदर्भ ग्रंथ
13.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.16 अभ्यासार्थ प्रश्न.

13.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई में निम्न बिन्दुओं पर जानकारी उपलब्ध कराई गई है

1. वन्य प्राणियों के महत्व
2. अरण्य का महत्व और उनके विनाश से होती हानियों,
3. संकटग्रस्त जीव जन्तु एवं उनका संरक्षण और प्रबन्धन,
4. प्रकृति के लिए बने विश्वव्यापी कोष एवं जीव जन्तुओं के संरक्षण के कानून
5. राष्ट्रीय पशु बाघ एवं अन्य वन्यजीवों के संरक्षण की परियोजनाऐं
6. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण संस्थाऐं

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी की जैव विविधता मानव जीवन और समाज का समर्थन करती है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य प्राणियों पर निर्भर रहते है। जैसे दवाईयों, रसायनों, खाद्य सामग्री, कपडे व अन्य जरूरतों वन एवं वन्य जीवों पूरा करते है। प्राचीन काल से वन एवं वन्य जीव मानव के लिए हितकारी रहे है।

घने वनों में, वनों में उपलब्ध औषधिय वनस्पतियों का ज्ञान प्राचीन समय से है। इससे वनों के महत्व और उनके संरक्षण की ओर मानव सदैव अग्रसर रहा है। भारत में वन्यत्नीवन की रक्षा में अभिरूचि एक प्राचीन परम्परा रही है।

वन्यजीवों का संरक्षण हमारी संस्कृति का विशिष्ट अंग रहा है। हमारे ग्रन्थ भी वन्य जीवन और उनके साथ मानव सम्बन्धों को चित्रित करते है।

करीब 2500 वर्ष पूर्व अशोक के युग में वन्यजीवों की हत्या दण्डनीय अपराध माना जाता था। भारतीय महिलाओं द्वारा वन संरक्षण के प्रयासों की गाथा इतिहास में मौजूद है। 1731 ईस्वी में खेजडिली गांव में (जोधपुर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित) में मारवाड़ के महाराजा ने महल निर्माण हेतु गाँव के पेड काट लाने का आदेश दिया था। विश्नोई समाज (जो प्रकृति की पूजा करते है) की एक महिला अर्मता देवी ने सिपाहियों को पेड काटने से मना कर दिया और पेड से चिपक कर खड़ी हो गई। उनका कहना था की "एक रनर की कीमत पर यदि हम एक पेड़ भी बचा सकते है तो यह बहुत सस्ता सौदा होगा॥" अर्मता देवी उनके पति और तीन पुत्रियों समेत गाँव के करीब 36 लोगो ने पेड़ों को बचाने के प्रयास में पेड़ों से चिपक कर अपनी जान गवाई तथा अमर हो गए।

सन् 1972 में चिपको आन्दोलन एक बार फिर चर्चा में आया। इस बार प्रयास उत्तरप्रदेश की पहाडियों में बचनी देवी द्वारा किया गया। उनका नारा था -

"क्या है जंगल के उपचार? मिट्टी, पानी और बयार
मिट्टी पानी और बयार, जिन्दा रहने के उपचार।"

इस आन्दोलन को विस्तार दिया श्री सुन्दरलाल बहुगुणा और श्री चाँदी प्रसाद भट्ट ने। आज भी ये लोग वनों के संरक्षण के लिए कार्य कर रहे है।

13.2 विलुप्त होते वन्य प्राणी तथा पौधे (Vanishing and Threatened Wild Animals and Plant)

वन्य प्राणियों के अनियंत्रित शिकार और तेज गति से हो रहे वनों के विनाश के कारण अनेक पादप एवं जन्तु प्रजातियाँ विलुप्त होने की अवस्था की ओर अग्रसर है। कई नियम एवं कानून बन जाने के बावजूद आज भी जन्तुओं के शिकार और वनों के विनाश पर रोक नही लग पाई है। वनों के महत्व के प्रति और अधिक जागरूकता तथा संवेदनशीलता की आवश्यकता है।

निम्न कारणों से वन्य प्रजातियाँ विलुप्त होने की ओर अग्रसर है :-

1. **शिकार :** कानून द्वारा आखेट को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। परन्तु कुछ लोग आज भी षेरों, भालुओं, हाथियों, हिरणों आदि का शिकार उनकी खाल व सींगों के लिये करते है। इससे इन प्रजातियों की संख्या कम होती जा रही है।

2. **वनों के विनाश :** वनों के विनाश के कारण प्राणियों के आवास व खाद्य सामग्री नष्ट होती जा रही है। इससे वन्य प्राणी व पौधे विलुप्त होने लगे है।

3. **प्रदूषण :** वातावरण में होने वाले परिवर्तन जैसे अम्ल वर्षा, ग्लोबल वार्मिग, अकाल एवं बाढ़ आदि से वन्य प्रजातियाँ लुप्त होने की कगार पर है।

4. **विदेशज प्राणी (Exotic Species) :** विदेशज प्राणी वे प्राणी होते है जो किसी कारणवश अपनी खाद्य श्रंखला छोड़कर किसी दूसरी खाद्य श्रंखला में प्रवेश कर उसमें असंतुलन पैदा कर देते है। इससे कई वन्य प्रजातियाँ प्रभावित होती है।

5. **अन्य कारण :** वन्य प्रजातियों के विलुप्त होने के अन्य कारण है :

   (1) कीट नाशक दवाईयों का प्रयोग तथा

   (2) वैज्ञानिकों द्वारा पादप व पशुओं को एकत्रित करना तथा उन पर शोध के लिए प्रयोग करना।

बर्टेन्ड के अनुसार "विश्व के कुल कशेरूकी प्राणी जात (Vertebrate fauna) का 10 प्रतिशत भाग आज विलुप्ती की ओर अग्रसर है। विलुप्ती की दर में पिछले 100 वर्षो में तीव्रता से वृद्धि हुई है। प्रत्येक वर्ष अधिकाधिक वन्य प्रजातियाँ विलुप्त होने वाले प्राणियों की सूची में जुडती जा रही है।ये पुरातिया विलुप्त हो सकती है।

"रेड डाटा किताब" (Red Data Book), प्रकृति तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources) के जीविता सेवा आयोग (Survival Service Commission) के द्वारा प्रकाशित की जाती है। इस किताब में विलुप्ति का खतरा झेल रहे जन्तु तथा पक्षियों की प्रजातियों के नाम दिये गये है। इनमें कई प्रजातियाँ शामिल है जिनके सदस्यों की संख्या 100 भी नही है तथा कुछ तो मात्र 10 ही रह गये है। वन्य जीव संरक्षण के कार्यक्रम इन प्रजातियों के संरक्षण पर बक्षित है।

"ग्रीन बुक" (Green Book) उन दुर्लभ पौधो (rare plant) की जानकारी रखती है जिन्हे संरक्षित स्थानो (protected area) जैसे वनस्पति उद्यानों (Botanical Gardens) में लगाया जाता है। यू.एन.ई.पी. (UNEP) की पुस्तक में विश्व में संकट ग्रस्त प्रजातियों की जानकारी होती है। इसे "नीली किताब" (Blue Book) के नाम से जानी जाती है।

भारत में भी कई जन्तु तथा पक्षी प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी है एवं अन्य प्रजातियाँ विनाश के करीब पहुंच चुकी है।

विलुप्त होने के कगार पर निम्न प्रजातियाँ है : चिंकारा (Chinkara), नीलगाय, भारतीय कुरंग, बारहा सिंगा (Antelope), कृष्ण सार (Black Buck), भेडिया (Wolf), अनूप मृग (Swamp Dear), बाघ (Tiger), गैंडा (Rhinoceros), गिर सिंह (Gir Lion) मगर (Crocodile), हंसावर (Flamingo), हवासिल (Pelican), सारंग (Bustard), घूसर बगुला (Grey heron), पर्वतीय बटेर (Mountain Quail)।

विलुप्त हो रहे प्राणियों की गिनती में आ रहे विश्व के अन्य प्राणी है जैसे अफ्रीकी शेर (African Lion), गोरिल्ला, अफ्रीकी चीता (Cheeta), श्याम गैंडा (Black Rhino), साइबेरिया का सारस (Crane) आदि।

13.3 संकट ग्रस्त जीव जन्तु

रेड डाटा बुक के अनुसार भारत में निम्न कई वन्य प्रजातियों खतरे में है। (सारणी-1)

सारणी-1

अन्तराष्ट्रीय प्रकृति संघ की रेड डाटा बुक की खतरे में पड़ी प्रजातियों की सूची में शामिल किये गये भारतीय पशुओं और पक्षियों की सूची

क्र.सं.	**सामान्य नाम**	**वैज्ञानिक नाम**	**देश का क्षेत्र जहां वे पाये जाते है**
कस्तनपायी -			
1.	सिंहपुच्छी बंदर	मकाका साइलेनस	पश्चिमी घाटों में सदाबहार वन,
2.	सुनहरा लंगूर	प्रेसबाइटिस गोई	असम, भुटान के साथ हिमालय की तराई
3.	दृढ़ लोमी खरगोश	केपोलेगस हिसपिडस	हिमालय की तराई, असम
4.	भारतीय डालफिन	प्लेटेनिस्टा इंडी	गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ
5.	मालाबार बड़ा धारीदार मुश्कबिलाव	विवेरा मंगास्पिला	केरल का तटवर्ती क्षेत्र
6.	एशियाई सिंह	पैंथरा लिओं	गिर राष्ट्रीय उद्‍यान
7.	तेंदुआ	पैंथरा पार्डस	सम्पूर्ण भारत में
8.	बाघ	पैंथरा टाइग्रिस	सम्पूर्ण भारत में
9.	हिम तेंदुआ	पैंथरा अंसिया	लद्दाख से सिक्किम तक उच्च हिमालय में
10.	भारतीय हाथी	एलिफास मेक्सिमस	उत्तर प्रदेश से मेघालय तक हिमालय की तराई, बिहार, उड़ीसा और दक्षिण के चार राज्य
11.	भारतीय जंगली गधा	इक्वस हैमियोनस	कच्छ का रन
12.	पिगमी सूअर	सस सल्वानियस	मानव बाघ रिजर्व तथा उसके आसपास का क्षेत्र
13.	हंगुल	सरक्स एलेक्स	कश्मीर घाटी का उत्तरी भाग
14.	जंगली एशियाई जल भैंसा	बुबालस बुबालिस	असम, अरुणाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र, पश्चिमी उड़ीसा के तराई क्षेत्र
खपक्षी-			
1.	सफेद पंखों वाला जंगली बत्तख	कैरिना स्कुट्रलाटा	असम के पूर्वी जिले और अरुणाचल प्रदेश
2.	चीर फीजेन्ट	केट्रेयस बलिची	कश्मीर हिमाचल प्रदेश, गढवाल और कुमाऊँ

3.	वेस्टन ट्रेगोपान	ट्रेगोपान मेलानोसेफलेस	कश्मीर हिमाचल प्रदेश, गढवाल और कुमाऊँ
4.	भारतीय सोन चिड़िया	अर्डेओटिस नाईग्रिसेप्स	राजस्थान के मरु क्षेत्र
5.	जोर्डन कर्सर	कर्सेरियस बिटोक्वेटस	आन्ध्र प्रदेश
गसरीसूप-			
1.	एस्च्यूरियन घड़ियाल	कोकोडायलस पोरोसस	भारत का पूर्वी समुद्र तट और अण्डमान व निकोबार
2.	घड़ियाल	गेवीयेलिस गंजेटिकस	गंगा, महानदी और ब्रह्मापुत्र
3.	रिवर टेरापिन	बटागुर बास्का	दक्षिण -पश्चिमी बंगाल

इसके अतिरिक्त, शीत ऋतु के दौरान भारत में आने वाले प्रवासी पक्षियों की प्रजातियों को भी खतरे में पड़ी प्रजाति के रूप में माना गया है जैसे साइबेरियन क्रेन (मूल ल्यीसो-जेरानस) और ब्लैक-नेक्ड़ क्रेन (ग्रुस नागरी कोलिस)। इसमे से पहली प्रजाति, शीत ऋतु में केवलादेवी घना राष्ट्रीय उद्यान, भरतपुर में आती है, और दूसरी प्रजाति लद्दाख और अरूणाचल प्रदेश के कुछ भागों में आती है।

डोडो पक्षी विलुप्त हो गया है। अब संपूर्ण विश्व में विलुप्त होते पेड़-पौधों और जीव जन्तुओं को बचाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

पौधे : रेड डाटा बुक में विलुप्त प्राय: होते पौधों के नामों की सूची भी दी गई है। इस सूची के अनुसार भारत में वनस्पतियों की 19 प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी है एवं 1236 संकटग्रस्ट है। पादप प्रजातियाँ जो खतरे में है उनमें से प्रमुख प्रजातियाँ है - ऐकेशिया कोआ (Acacia koa), सिप्रिपीडियम कैलकोलस (Cypripedium calcoelus), मैस्कारीना रिवेन्जिलिनी (Mascarena revanglinil), ऑकिड्स (Orchids), डाइआस्कोरिया (Dioscorea) इत्यादि।

पृथ्वी पर मौजूद लगभग एक सौ लाख के करीब जातियों में से अब तक 15 लाख जातियों का ब्यौरा ही उपलब्ध है। अगर समय रहते हमने ध्यान नही दिया तो इनमें से कई जातियां हमारे जानने से पहले ही विलुप्त हो जायेगी। नई जातियों और प्रजातियों की खोज निरन्तर हो रही है।

कोई भी प्रजाति अगर विलुप्त होती है तो वह हमें उस जीन रूपी खजाने से वंचित कर देती है जिसकी जानकारी से उसका सद्दउपयोग पर्यावरण के कल्याण एवं मानव कल्याण में किया जा सकता है।

जूलोजिकल, सर्वे ऑफ इण्डिया और बॉटनीकल सर्वे ऑफ इंडिया ने विलोप की कगार पर खडे जीव जन्तुओं और वनस्पतियों की सूची तैयार कर ली है। इसके अनुसार देश में पक्षियों की दो प्रजातियों और स्तनधारी प्राणियों की 15 जातियाँ विलुप्त होने की कगार पर पहुंच चुकी है। इनमें से लाल सिर वाली बतख (Pink Head duck) और पहाड़ी बटेर (Mountain Quail) को सन् 1945 के बाद नही देखा गया। वनस्पतियों में मांसाहारी पौधा “नेपेथीस खासियाना” भी विलुप्त होने की कगार पर है।

13.4 अरण्य विनाश से हानियाँ (Harmufull Effects of Deforestation)

विश्व की 25 अरब हेक्टेयर जमीन घने वनों से ढकी हुई है। इसके अन्दर अथाह वन सम्पदा है। भारत की कुल जमीन का मात्र 18 प्रतिशत भाग ही वनों से ढका हुआ है। इसमें से भी 1.5 अरब हेक्टेयर वन हर वर्ष नष्ट हो रहे है। अगले 20 वर्षो तक यदि ऐसा ही चलता रहा तो भारत अपनी वन सम्पदा खो देगा।

मानव के लिए वन बहुत महत्व रखते है। मानव प्रारम्भ से ही अपने आहार, ईधन, खाद आदि के लिए वनों पर निर्भर रहा है। वन प्रकृति में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) तथा ऑक्सीजन के बीच संतुलन स्थापित कर पर्यावरण की श्ज्ञफद्धि करते है, मिट्टी की उत्पादकता बढ़ाते है, भूस्खलन, बाढ आदि को रोकने में सहायक होते है।

13.4.1 अरण्य का महत्व (Importance of Forest)

वन हमारे लिये निम्न कार्य करते है :-

1. सूर्य की किरणों के कुप्रभाव से बचाते है।
2. पृथ्वी के तापमान को बढ़ने से रोकने में सहायक होते है।
3. मिट्टी की पानी सोखने की क्षमता को बढ़ाते है।
4. वनों की मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है क्योंकि इसमें पोषक तत्वों की मात्रा भरपूर होती है।
5. पर्यावरण में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को ऑक्सीजन में परिवर्तित कर पृथ्वी पर कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा के बढ़ने से रोकते है।
6. वन्यजीवन को ठंडी गरम तेज हवाओं से बचाते है।
7. अब तक बहुत से औषधीय वनस्पतियों को सम्भाल कर रखा है।
8. जीवों के जीन को बचाकर रखते है।
9. भूस्खलन, मृदा अपरदन, बाढ़ इत्यादि को रोकने में सहायक होते है।
10. इनका अध्यात्मिक एवं एतिहासिक महत्व भी है।

अन्धाधुंद वनों की कटाई से कम होते जंगलों ने पर्यावरण में असन्तुलन की अवस्था पैदा कर दी है।

13.4.2 अरण्य विनाश के कारण (Causes of Deforestation)

वनों के विनाश के कई कारण रहे है। इनमें लकड़ी की बढ़ती मांग महत्वपूर्ण है। इनके विनाश के अन्य कारण
है :

(i) दावाग्नि)Forest Fire(
(ii) झूम कृषि)Jhum Cultivation(
(iii) अम्ल वर्षा)Acid Rain(
(iv) दीमक व अन्य बीमारियों के कारण पेडों का मरना
(v) शहरीकरण
(vi) शहरों का विस्तार होना एवं औद्योगिक विकास (Industrilization) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ये सभी कारण मानव से संबंधित है।

13.4.3 अरण्य विनाश से होती हानियाँ (Harmful effect of Deforestation)

यदि वनों की क्षति होती है वो मानव समाज को भी व्यवहारिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक हानि होती है। वनों के विनाश का दुष्प्रभाव पर्यावरण पर भी आसानी से देखा जा सकता है।

मृदा : मिट्टी की एक इन्च परत बनने में 1000 वर्ष का समय लग जाता है। वनों के विनाश के कारण मृदा का अपरदन हो रहा है। लगभग 12000 अरब टन मृदा विश्व से प्रतिवर्ष नष्ट हो रही है। मृदा अपरदन से उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो जाती है। इस कारण से लगभग 300 से 500 लाख टन अनाज का नुकसान प्रतिवर्ष हो रहा है।

मौसम : मौसम में आ रहे असामान्य परिवर्तन का कारण वनों का तीव्रता से होता विनाश है। गोहाटी, शिलोंग तथा असम के अधिकांश क्षेत्रों में 20 प्रतिशत कम वषष्टि हो रही है। वषष्टि के तुरन्त बाद भूमि के सूख जाने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि धरती के नीचे जलस्तर घट रहा है। घटते जलस्तर ने पानी की आवश्यकता को और बढ़ा दिया है। इससे सूखा और बाढ़ की स्थिति गम्भीर होती जा रही है।

दक्षिण में नीलगिरी का नामकरण इनके गहन हरितिमा युक्त उष्ण कटिबंधीय वनों के कारण हुआ था। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा औद्योगिक विकास के युग में वक्षों की कटाई ने उनकी छत्रछाया समाप्त कर दी है। आज अनेक पर्वतीय चोटियाँ अपनी छटा खोती जा रही है।

विश्व के विकसित देश जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, सोवियत रूस, जर्मनी, फ्रांस आदि भी इस बात से सहमत है कि भूमि का एक तिहाई भाग संतुलित तथा अच्छे प्रयोग के लिये वन के रूप में होना चाहिए। राष्ट्रीय वन नीति (National Forest Policy) 1952 में नाई गई।

ईधन व औधोगिक लकडी : जनसंख्या वृद्धि के कारण ईधन एवं औधोगिक लकडी की मांग में तेजी आई है। पर्यावरण नियोजन समिति ने अधिक से अधिक क्षेत्रों पर वन लगाने की अनुशंसा की है। वन क्षेत्रो को बढ़ाकर 100 करोड़ हैक्टेयर करने की सलाह दी।

प्रदूषण : अरण्य के विनाश से न केवल वन्य जीवों का विनाश हो जावेगा अपितु पर्यावरण में असामान्य असंतुलन उत्पन्न हो जावेगा। (यूनेस्को-रपट-1968)

वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा तीव्र गति से बढ़ रही है। कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य विषैली गैसें पर्यावरण को दूषित कर रही हैं। वन हमारे वातावरण से दूषित वायु को कम करने का कार्य प्राकृतिक रूप से करते है। वन जिस क्षमता से दूषित वायु का नाश करते हैं। वन संरक्षण न करने से पृथ्वी वासियों को शुद्ध वायु के अभाव में जीवन जीना पडेगा।

13.5 वन्य प्राणी संरक्षण तथा प्रबन्ध (Wild life conservation and magagement)

पादप एवं जन्तुओं की प्रजातियों के संरक्षण के प्रयास सम्पूर्ण विश्व के लिए किये जा रहे है। इसी संदर्भ में पेड-पौधो के व्यापार पर कई प्रकार के नियम लागू किए गये हैं। जानवरों के शिकार पर पाबंदी के साथ ही उन्हे उनके आवास स्थल से दूर रखने पर वन्य जीवों को अवैध रूप से पिंजरों में रखने पर भी रोक लगा दी गई है। जानवरो की अन्तर्राष्ट्रीय खरीद फरोख्त को भी कठिन कानूनी तरीको से गुजरना पड़ता है। जानवरों की खाल, दाँत, सींग, नाखून व अन्य अंगो को बेचना और खरीदना गैर-कानूनी घोषित

कर दिया गया है। तमाम प्रयासों के बावजूद भी लोग जानवरों और उनके अंगो की तसकरी करते है। इसी से कारण हजारों पशु प्रतिवर्ष समय से पहले ही काल कलवित हो जाते है।

राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवन संरक्षण के प्रयासों में तेजी आ रही है। वन्य जीवन संरक्षण हेतु राष्ट्रीय पार्क, वन्य प्राणी अभयारण्य एवं बायोस्फीयर रिजर्व स्थापित किये गए है। उपर्युक्त स्थानो पर पक्षी अभयारण्य भी स्थापित किये गये है। जन्तुओं और पक्षियों को उनके प्राकृतिक आवास में संरक्षण प्रदान करने का यह एक अच्छा प्रयास साबित हुआ है।

1. **राष्ट्रीय उद्यान (National Park) :** राष्ट्रीय उद्यान केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित किये जाते है। इनका उद्देश्य मुख्य रूप से प्राकृतिक सौन्दर्य में समस्त मिली जुली वन्य जीवों का संरक्षण करना है। यहां पर्यटन को अनुमति होती है परन्तु षोध कार्य, व वैज्ञानिक प्रबन्धीकरण नही किया जाता है।

2. **अभ्यारण्य (Sanctuary) :** अभ्यारण्य राज्य सरकार द्वारा संचालित किये जाते है। यह बहुधा विशिष्ट प्रकृति के संरक्षण के लिए निर्धारित होते है। इसका क्षेत्र राष्ट्रीय उद्यान की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। यहां भी राष्ट्रीय उद्यानों की तरह पर्यटन की अनुमति होती है, परन्तु षोध व वैज्ञानिक प्रबन्धीकरण नही होता।

   राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों में प्राणियों के जीन पूल संरक्षण पर ध्यान नही दिया जाता है।

3. **जैव मण्डल आरक्षित प्रदेश (Biosphere Reserves) :** जैव मण्डल आरक्षित प्रदेश विश्व व्यापक होते है। इस क्षेत्र में सम्पूर्ण परितन्त्र (ecosystem) समाहित होता है। जैव मण्डल आरक्षण (biosphere reserves) मानवों द्वारा कम से कम रूपान्तरित व अवतरान्तित (degraded)भूमि वाले क्षेत्र है। प्रबन्धीकरण के दृष्टिकोण से यह क्षेत्र निम्न भागों में विभाजित किया गया है :-

   1. **कोर क्षेत्र (core Zone) :** जैव मण्डल आरक्षण का वह आन्तरिक भाग जो पूर्णत्य प्राकृतिक व सबसे कम व्यवधान वाला क्षेत्र है कोर क्षेत्र कहलाता है।
   2. **मैनीपुलेशन वानिकी क्षेत्र (manipulation forestry zone) :** कोर क्षेत्र को घेरे रखने वाला यह क्षेत्र मानव निर्मित वनों वाला क्षेत्र होता है।
   3. **मैनीपुलेशन (पर्यटन) क्षेत्र (manipulation tourism zone) :** यह क्षेत्र मुख्यत: पर्यटन, शिक्षा व प्रशिक्षण के लिए सुरक्षित रखा जाता है।
   4. **पुर्नकरण क्षेत्र (restroation zone) :** यह जैवमण्डल आरक्षण के वह क्षेत्र होते है जिसका पूर्व में मानव द्वारा विनाश कर दिया गया है और अब उसे पुर्नसुरक्षित करने की आवश्यकता है। (चित्र 13.1 देखें)

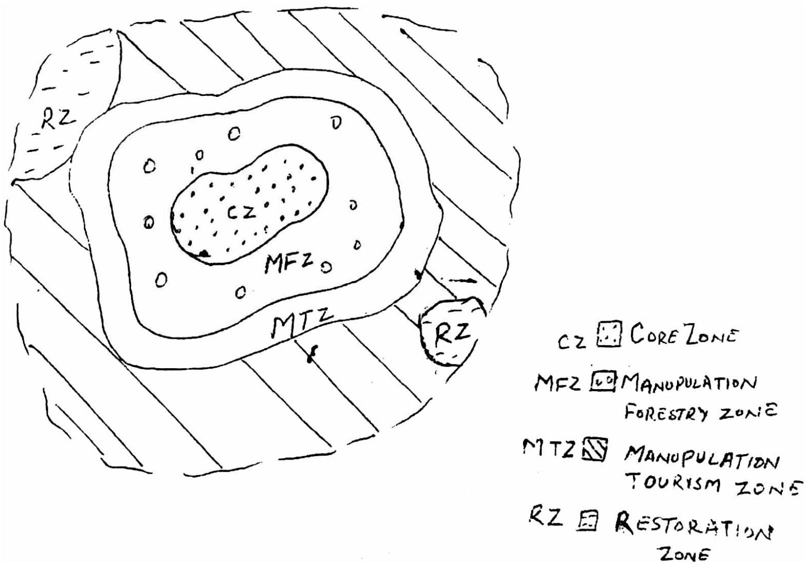

चित्र 13.1 : जैव मण्डल आरक्षित प्रदेश

जीव संरक्षण के लिए हिसार में प्राणी अनुवंशिक संपदा के संरक्षण को राष्ट्रीय ब्यूरों बनाया गया है। मछलियों की अनुवंशिक सम्पदा का अनुवंशिक ब्यूरों इलाहाबाद में बनाया गया है। वनस्पतियों की आनुवंशिक सम्पदा के संरक्षण का ब्यूरों नई दिल्ली में पूसा इन्स्टीटयूट के कैम्पास में स्थित है। 42 देशों में बागवानी और खेती वाली फसलों के लगभग 43 हजार नमूने यहां संरक्षित रखे गये है। इन नमूनों को यहां परखनली में उगाया जाता है फिर उनका 'डी.एन.ए.' अलग कर संरक्षित कर लिया जाता है। इस प्रकिया की सफलता के कारण ही देश और विदेशों में जीन बैंक का चलन बढ गया है।

वन्य प्राणियों की वांछित समष्टि उत्पन्न करने की कला वन्य प्राणी प्रबन्ध (wild life conservation and management) कहलाती है। वन्य प्राणी प्रबन्ध के उद्देश्य निम्न है :-

1. आखेट प्रजातियों का उत्पादन करना।
2. आखेटीय प्रजातियों का अनुरक्षण करना।
3. फसलों, चरागाहों, पशुधन, वनों या मानव जीवन को वन्य प्राणियों द्वारा होने वाली क्षति का नियंत्रण।

13.6 वन्य प्राणी के प्रबन्धीकरण के प्रयास (Wild Life Management Efforts)

वन्य जीवों की निरन्तर लुप्त होती दुर्लभ प्रजातियाँ राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय संगठनों के लिए चिन्ता का विषय बन गई है। भारत में केन्द्रिय एवं राज्य सरकार वन्य जीवों को विभिन्न तरीको से सुरक्षा प्रदान करने में जुटी हुई है।

प्रतिवर्ष भारत में वन्य जीव सप्ताह (1 अक्टूबर से 7 अक्टूबर) के रूप में मनाया जाता है। इसमें वन्य जीव के प्रति न केवल जनरूचि विकसित होती है। इसके लिए निम्न प्रयास किये गये हैं।

1. वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम।
2. वन्य प्राणियों से सम्बन्धित शोध को प्रोत्साहन देना।

3. वन्य प्राणियों तथा उनके आवासों को संरक्षण देने के उद्देश्य से देश भर में जून 1992.तक लगभग 416 अभयारण्य (Sanctuaries) तथा 73 नेशनल पार्क स्थापित किये गये है।

वन्य प्राणियों के संरक्षण के उद्देश्य से चालू किये गये विभिन्न परियोजनाओं के सफल परिणाम सामने आ रहे है। परन्तु शिकार के चलते अभी और प्रयास करने की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय आधार पर वन्यप्राणी संरक्षण के कार्यकम देश भर में चल रहे है। सन् 1985 तक 65 राष्ट्रों ने लगभग 243 से अधिक बायोस्फियर बनाये गये है। इनमें से 13 भारत में स्थित हे। इनके नाम है - नन्दादेवी, तमिलनाडु की मन्नार खाडी, अरूणाचल प्रदेश में नमदफा, उत्तर प्रदेश में तुंगनाथ - रूद्रनाथ के पास फूलों की घाटी, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु की मिली जुली सीमा पर स्थित नीलगिरी, अण्डमान-निकाबार द्वीप समूहों में से कुछ द्वीप और मेघालय में तुर्रा अभ्यारण।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयासों में विश्व वन्य प्राणी कोष सबसे अग्रणी संगठन है।

13.7 प्रकृति के लिए विश्वव्यापी कोष (World Wide fund for nature WWF)

प्रकृति के लिए विश्वव्यापी कोष एक अन्तराष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठन है। यह संगठन प्रकृति संरक्षण के लिए कार्य करता है इसके अन्तर्गत 130 देशों में 4000 से अधिक वन्य जीव संरक्षण परियोजनाऐं चल रही है।

इसके मुख्य उद्देश्य है :

(i) प्राकृतिक परिस्थितिक तंत्रों की सुरक्षा।

(ii) पुर्नस्थापन में सहयोग करना।

(iii) प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमता पूर्ण उपयोग सुनिश्चित करना।

(iv) प्रकृति के सामंजस्य से होने वाली विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन में मदद

(v) स्थानीय, क्षेत्रीय या राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में जागरूकता पैदा करना है।

13.8 संरक्षण कानून व सरकारी प्रयास

जंगली जानवरों और पक्षियों के संरक्षण हेतु सर्वप्रथम (Wildlife Protection Act.)सन् 1972 में बनाया गया। यह नियम जम्मु कश्मीर राज्य को छोडकर सभी राज्यों में समान रूप से लागू किया गया है। जम्मू कश्मीर राज्य में इस प्रकार के दूसरे नियम लागू किये गए। इस नियम का आधार वन्य जीवन के संरक्षण और प्रबन्धन को सुनिश्चित करता है। इसके द्वारा पक्षी, सरीसृप, उभयचर, कीट आदि वन्य प्राणियों, विशेषकर संकटग्रस्त दुर्लभ जातियों को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है। वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम में समय - समय पर आवश्यकतानुसर संशोधन किया जाता रहा है। इस की धारा 9 के अनुसार उन सभी वन्य प्राणियों का शिकार वर्जित है जिनका अधिनियम की सूची 1, 2, 3 और 4 में उल्लेख किया गया है। वन्य जीवों के अवैध शिकार करने पर वन्य जीवों से 'बने उत्पादों की खरीद फरोखत करने पर अथवा वन्य जीवों को बंदी बना कर रखने पर कठोर दण्ड देने

के कड़े प्रावधान है। सन् 1986 में की गई गणना अनुसार दुर्लभ प्रजातियों की संख्या 124 है जिसमें 61-70 स्तनधारी, 16 सरीसष्प व 38 पक्षी षामिल है।

13.9 राष्ट्रीय पशु - बाघ (National Animal Tiger-Panthera tigris)

राष्ट्रीय पशु बाघ स्तनधारी (Mammalia) कक्षा का मांसाहारी पशु है। यह घने वनों में विचरण करता है। आकार में एक बडी बिल्ली के समान दिखने वाले इस जन्तु का औसत वजन 200 किलोग्राम तक होता है। काले, सफेद अनुप्रस्थ धारियों और गहरे पीले रंग का यह एशियाई प्राणी 270 सी.मी. की लम्बाई का होता है। भारत में यह पशु प्राय: आसाम, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के घने वनों में पाया जाता है। हिमालय में पाये जाने वाले बाघ प्राय अन्य बाघों से बड़े दिखाई देते है। बाघ की औसत आयु 20 वर्ष होती है।चीन में बाघ के अंगो का प्रयोग विभिन्न प्रकार की दवाईयां बनाने में किया जाता रहा है। भारत में राजा महाराजा अपने आखेट का शौक बाघ को मार कर व उनकी खाल व अन्य अंगों को महलों सजाकर ही पूर्ण किया करते थे।

भारत में बाघों की संख्या :

इस गणना के अनुसार देश में बाघों की संख्या घटकर मात्र 1, 300 रह गई है।

भारत सरकार ने बाघो के संरक्षण हेतु एक परियोजना 1973 में बनाई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य भारत में बाघ की आबादी को सुनिश्चित करना है।

राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और छत्तीसगढ में बाघ परियोजना के अधिकारियों के अनुसार बाघो की संख्या तेजी से घटती जा रही है। कुछ विशेषज्ञ इस गणना को चुनौति भी दे रहे है। उनका मानना है कि देश में बचे बाघों की सही संख्या जानने के लिए नई तकनीकों को काम में लिया जाना चाहिए।

13.10 वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु परियोजनाऐं (Conservation Project for wildlife)

वन्य जीवों की घटती संख्या को ध्यान में रखते हुये उन्हे संरक्षण प्रदान करने हेतु कई परियोजनायें बनाई गई। इनमें से कई परियोजनायें आशातीत परिणाम दे रही है।

1. **बाघ संरक्षण परियोजना (Conservation of Tiger) :** भारत में बाघों की घटती संख्या को देखते हुये 1973 में आई.यूसी.एन. तथा वर्ल्ड वाइल्ड फंड फॉर नेचर ने भारत सरकार के साथ मिलकर बाघ परियोजना आरंभ की जिसके निम्न उद्देश्य है :-

(क) वैज्ञानिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सांस्कृतिक एवं परिस्थितिक मूल्यों के लिए भारत में बागों की जीवनतम आबादी के संरक्षण को सुनिश्चित करना।

(ख) मनुष्य के लाभ, शिक्षा तथा आनन्द के लिए जैविक महत्व के क्षेत्रों को, एक राष्ट्रीय विरासत के रूप में सदैव के लिए सुरक्षित रखना।

2. **मगर प्रजनन परियोजना :** घडियाल (गेवियेलिस गेंजेटिक्स), मगर (क्रोकोडाइलस पेलुस्ट्रिस) तथा खारे पानी का मगरमच्छ (क्रोकोडाइलस पोरोसस) - भारत में पायी जाने वाली मगरमच्छ की यह तीन जातियाँ 1970 के दशक में अत्यन्त दुर्लभ हो गयी थी। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की सहायता से 1975 में उड़ीसा में मगर प्रजनन तथा प्रबन्ध की परियोजना आरम्भ की। परिणामस्वरूप उनकी आबादी बढ़ गई।

3. **हाथी परियोजना :** हाथियों की संख्या में आई कमी को दृष्टिगत रखते हुये भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1991-92 में हाथी परियोजना का श्ज्ञफभारम्म किया। हाथी दाँत के लिए प्रति वर्ष भारी संख्या में मारे जाने के कारण हाथियों की संख्या एक समय घटकर केवल 1500 रह गयी थी।

4. **मणिपुर थामिन (ब्रो ऐन्टलर हिरण) परियोजना :** एक और सर्वाधिक संकटग्रस्त मष्ग प्रजाति, जिसके गिने-चुने सदस्य ही बच गये थे, थामिन मष्ग या ब्रो ऐन्टलर हिरण (सेरवस एल्डाइ एल्डाई) है। इसी जाति के लिए संरक्षण उपाय आरम्भ किये गये।

अन्य परियोजनायें है। गिर सिंह अभ्यारण्य योजना, हिमालयी कस्तूरी मृग परियोजना, गैंडा संरक्षण परियोजना आदि।

13.11 अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण संस्थाएँ

वन्य जीवन संरक्षण हेतु अनेक अन्तराष्ट्रीय संरक्षण संस्थाये सामने आई है एवं सतत् रूप से कार्य रही है। इनमें प्रमुख संस्थाएँ निम्न है :

1. **आई.यू.सी.एन. (International Union for the Conservation of Nature and Natural Resources)**

दुर्लभ वन्य जीवों के संरक्षण की दिशा में कार्यरत इस अंतराष्ट्रीय संस्था ने 1969 में एक रेड डाटा लिस्ट जारी की जिसमें दुर्लभ, संकटग्रस्त और विलुप्तप्राय जीवों का विवरण दिया गया है।

2. **ट्रैफिक (TRAFFIC or Trade Record Analysis of Flora and Fauna in Commerce)**

पशुओं और उनकी हड्डी, दाँत, खाल आदि के व्यापार को रोकने के लिए 'ट्रैफिक' नामक यह संस्था वन्य जीव व्यापार के अन्तराष्ट्रीय केन्द्रों (ब्रिटेन, अमेरिका) पर नजर रखती है।

विश्व प्रकृति निधि (WWF or World Wide Fund for nature)

इस संस्था का पूर्व का नाम 'वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड' यानी 'विश्व वन्य जीव कोष' था, जिसे कुछ वर्ष पहले बदलकर 'विश्व प्रकृति निधि' यानी 'वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर' कर दिया गया। यह संगठन अंतराष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवों की देखभाल पर नजर रखता है। इसकी एक षाखा भारत में भी है, जो नई दिल्ली के लोदी स्टेंट में स्थित है।

3. **साइट्स (CITES)** पर 1973 में वाशिंगटन में सहमति हुई। इस अन्तराष्ट्रीय संधि पर 80 देशों द्वारा हस्ताक्षर करने के बाद यह 1975 में अस्तित्व में आया। आज 123 देश उसके सदस्य है। यह विश्व का सबसे बड़ा संरक्षण समझौता है। साइट्स के अनुसार प्रतिवर्ष 5 मिलियन पक्षी, 25 हजार प्राइमेट्स और 9 मिलियन आर्किडस जंगलों से वैध-अवैध तरीके से आकर अंतराष्ट्रीय बाजारों में बेचे जाते है। वन्य जीवों का यह अंतराष्ट्रीय व्यापार फिलहाल 5, 000 मिलियन अमेरिकी डॉलर की है। साइट्स इसे नियंत्रित करने की कोशिश करता है। साइट्स ने भारत में 9 प्राणी प्रजातियों के बारे में बताया है जो व्यापार के चलते विलुप्त होती जा रही हैं, जिनमें हिमालय कस्तूरी मष्ग, फिन व्हेल, समुन्द्री मगर आदि षामिल है।

13.12 बोध प्रश्न

1. रेड डाटा किताब से क्या जानकारी प्राप्त होती है?

   ....

2. आई.यू.सी.एन. (IUCN) का पूरा नाम .... है?

3. विलुप्त होने का खतरा झेल रही दो पादप प्रजातियों के नाम बताइये?

   ....

4. .... पक्षी विलुप्त हो गया है।

5. अरण्य विनाश से वातावरण को क्या खतरा पैदा हो गया है?

   ....

6. यह क्षेत्र मुख्य रूप से समस्त मिली - जुली वन्य जीवों के संरक्षण के लिए जाना जाता है?

   ....

7. अभ्यारण्य क्या कार्य करते है?

   (अ) जन्तुओं को पालतु बनाने के लिए

   ....

   (ब) जन्तुओं कि संख्या बढा उनका शिकार करने के लिए

   ....

   (स) जन्तुओं को पकडने के लिए

   ....

   (द) जन्तुओं कि रक्षा के लिए

   ....

8. भारतीय वन्य प्राणी सुरक्षा अधिनियम सन .... में लागू किया गया था।

9. बाघ का ज्यूलोजिक नाम लिखिए?

10. बाघ की औसत आयु .... वर्ष होती है?

11. वन्य जीव व्यापार को नियंत्रित करने वाली दो अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं के नाम बताओ?

    ....

12. विश्व वन्य कोष आज किस नाम से जाना जाता है?

    ....

13.13 सारांश (Summary)

1. वनों के विनाश एवं वन्य प्राणियों की विलुप्ती से प्रकृति का संतुलन बिगड गया है। वनों एवं वन्य जीवों के महत्व को समझाते हुए मानव को उनके संरक्षण के निरन्तर प्रयास की आवश्यकता है। 'चिपको आंदोलन' एवं वन्य जीव संरक्षण अभियान ने संरक्षण कार्य करते रहने की प्रेरणा दी है।

2. निरन्तर शिकार, वनों के विनाश, प्रदूषण आदि कारणों से वन्य जीव विलुप्त होते जा रहे है। साथ ही हम इन पादप एवं पशुओं की सुंदरता खोते जा रहे है। आई.यू.सी.एन., यू.एन.ई.पी., डब्लू.डब्लू.एफ. कुछ ऐसे संगठन है जो इनके संरक्षण की ओर निरन्तर अग्रसर रहते है।
3. रेड डाटा किताब, ग्रीन बुक तथा नीली किताब सकंटग्रस्त पादप एवं जन्तुओं की जानकारी समय समय पर प्रकाशित करती रहती है। ताकि समय रहते उनका संरक्षण किया जा सके।
4. राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य एवं जैव मण्डल आरक्षित प्रदेशों द्वारा वन्य जीवों को उनके आवास स्थलों समेत संरक्षित किया जा रहा है।
5. वन्य प्राणियों के संरक्षण हेतु सम्पूर्ण विश्व में प्रयास किये जा रहे हैं। इनकी खरीद फरोक्त के लिये कठोर नियम बना दिये गये हैं। इनका सख्ती से पालन करना चाहिए।
6. वन्य प्राणियों के प्रबंधीकरण के प्रयास किये जा रहे हैं। इनके लिये अधिनियम एवं षोध कार्य प्रगति पर किया जा रहा है।
7. प्रकृति के संरक्षण हेतु विश्व व्यापी कोष संगठित किया गया है जो वन्यजीवों के हित में कार्य कर रहा है।
8. वन्य प्राणी संरक्षण हेतु सन् 1972 में वन्य जीव रक्षा अधिनियम बनाया गया जिसके अन्तर्गत जीव हत्या एवं वन्य जीवों को बंदी बनाकर रखना अथवा उनके अंगों का व्यापार करना जघन्य अपराध माना गया है।
9. हमारे राष्ट्रीय पशु बाघ की घटती संख्या को देखते हु ये बाघ संरक्षण परियोजना सम्पूर्ण भारत वर्ष में चलाई जा रही है।
10. अन्य परियोजनाएं हैं हाथी परियोजना, नगर प्रजनन परियोजना, हिमालयी कस्तूरी मष्ग परियोजना, गैंड संरक्षण परियोजना आदि।
11. राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षण कार्य कर रही संस्थाएं हैं - साइट्स, आई.यू.सी.एन., ट्रैफिक। विश्वव्यापी कोष।

13.14 शब्दावली (Glossary)

1.	विलुप्त	-	Extinct
2.	दावाग्नि	-	Forest fire
3.	विदेशज प्राणी	-	Exotic Animal
4.	मृदा अपरदन	-	Soil Erosion
5.	जैवमंडल	-	Biosphere
6.	प्रजातियाँ	-	Species
7.	दुर्लभ	-	Rare

13.15 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Cunningham & Saigo Environment Science
2. K.C. Agrawal Fundamental of Environmental Biology, Nidhi Publication

13.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. रेड डाटा किताब हमें विलुप्ति का खतरा झेल रही प्रजातियों के बारे में जानकारी प्रदान करती है।
2. प्रकृति तथा प्राकृति संसाधनों के संरक्षण की अन्तर्राष्ट्रीय संगठन।
3. (अ) एकेशिया कोआ (ब) मैस्करीना रिवेन्जिलिनी
4. डोडो
5. ग्लोबल वॉर्मिग
6. राष्ट्रीय उद्यान
7. (द)
8. 1972
9. Panthera tigris
10. 20 वर्ष
11. साइट्स एवं ट्रैफिक
12. विश्व प्रकृति निधि

13.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कितने देशों के पास साइट्स की सदस्यता है?
2. बचनी देवी ने क्या नारा दिया था?
3. बाघ परियोजना का मुख्य उद्देश्य क्या है?
4. नीली किताब (Blue Book) किसके द्वारा प्रकाशित की जाती है एवं इससे क्या जानकारी प्राप्त होती है?
5. जीव की विलुप्ती अर्थात जीन की विलुप्ती से आप क्या समझते है?
6. वन्य प्राणियों के प्रबन्धीकरण के विभिन्न प्रयासों की व्याख्या करें।
7. अरण्य के महत्व को समझाते हुये उनके संरक्षण पर प्रकाश डालिये।
8. संकटग्रस्त जीव जन्तुओं पर लेख लिखिए।
9. किन्ही दो अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण संस्थाओं के बारे में बताइये।
10. निम्न पर टिप्पणी लिखिए -
    (अ) बाघ परियोजना (ब) रेड डाटा बुक व
    (स) वन्य जीव संरक्षण (द) चिपको आन्दोलन
    (च) विश्व व्यापी कोष
11. जैव मण्डल आरक्षण को चित्र द्वारा समझाइये।

इकाई 14
पर्यावरण एवं प्रदूषण
(Environment and Pollution)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 पर्यावरण व पर्यावरण के लक्षण
14.2.1 पर्यावरण की परिभाषा
14.2.2 पर्यावरण के लक्षण
14.3 भौतिक पर्यावरण
14.3.1 प्रकाश
14.3.2 तापमान
14.3.3 आर्द्रता
14.3.4 वर्षा
14.4 भूमण्डलीय पर्यावरण
14.5 जैव मण्डल
14.6 प्रदूषण
14.6.1 प्रदूषक एवं उनका वर्गीकरण
14.7 जल प्रदूषण
14.7.1 जल प्रदूषण के कारण
14.7.2 जल प्रदूषण के प्रभाव
14.7.3 जल प्रदूषण पर नियंत्रण के उपाय
14.8 वायु प्रदूषण
14.8.1 वायु प्रदूषण के प्रकार
14.8.2 वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव
14.8.3 वायु प्रदूषण के नियंत्रण
14.9 स्मॉग
14.9.1 निर्माण
14.9.2 स्मॉग का वातावरण पर प्रभाव
14.9.3 स्मॉग की रोकथाम के उपाय
14.10 मृदा प्रदूषण
14.10.1 मृदा प्रदूषण के स्त्रोत
14.10.2 मृदा प्रदूषण के प्रभाव

14.10.3 मृदा प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय
14.11 शोर प्रदूषण
14.11.1 शोर प्रदूषण के स्त्रोत
14.11.2 शोर प्रदूषण के प्रभाव
14.11.3 शोर प्रदूषण का नियंत्रण
14.12 कीट नाशक रसायनों द्वारा प्रदूषण
14.13 बोध प्रश्न
14.14 सारांश
14.15 शब्दावली
14.16 संदर्भ ग्रंथ
14.17 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.18 अभ्यासार्थ

14.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई में भूपटल के वृहद पक्षों जैसे पहाड़, जल, मृदा, मरूस्थल आदि के कारण भौतिक पर्यावरण, सम्पूर्ण भूमण्डल का पर्यावरण तथा जैव पर्यावरण किस प्रकार प्रभावित होता हैं, तथा सभी से किस प्रकार मानव हस्तक्षेप द्वारा प्रदूषक उत्पन्न हें का अध्ययन किया जायेगा। विभिन्न प्रकार के प्रदूषण जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीव धारियों व वातावरण को प्रभावित करते हैं तथा उन प्रदूषणों के स्त्रोत, उनसे होने वाले प्रभाव तथा निवारण के उपाय आदि से सम्बंधित अध्ययन करेगें।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रकृति जिससे हम सभी जुड़े हैं यही हमारा पर्यावरण कहलाता हैं। पर्यावरण में वायु, जल, मृदा, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह होते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें पादप, प्राणी, नदी, पहाड, मरूस्थल तथा महासागर आते हैं। प्रत्येक जीव व उसके चारों ओर मिलने वाले पर्यावरण के सम्बंधों का अध्ययन आज अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय हैं क्योंकि ये सभी मिलकर प्रकृति का निर्माण करते हैं।

14.2 पर्यावरण एवं पर्यावरण के लक्षण (Environment, Characters of Environment)

19 वी सदी के मध्य में वैज्ञानिकों ने जीवों तथा पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले विशिष्ठ सम्बन्धों के लिए विभिन्न शब्दावलियों का प्रयोग किया। Ecology शब्द का उद्‌गम ग्रीक भाषा के दो शब्दों Oikos अर्थ है घर अथवा वास स्थान, तथा logos का अर्थ है अध्ययन, से हुआ है। यह जीवों एवं वातावरण के मध्य आपसी सम्बन्ध को दर्शाता है। इसका प्रयोग पारिस्थितिकी हेतु किया था। अर्नेस्ट हैकिल (1969) ने इस शब्द की पूर्ण व्याख्या करते हुए उसे परिभाषित किया था।

14.2.1 पर्यावरण (Environment)

प्रकृति जिससे हम सभी जुड़े हैं हमारा पर्यावरण कहलाता हैं। पर्यावरण भौतिक तथा जैविक उत्पादों का समन्वित आवरण हैं जो सम्पूर्ण जीवमण्डल को घेरे हुए है तथा उससे जीव जंतु, पेड़, पौधे की उत्पत्ति तथा विकास प्रभावित होते हैं।

परिभाषा (Definition) :

पर्यावारण = परि = चारों ओर से, आवरण - घेरे हुए

विश्व शब्द कोश के अनुसार "पर्यावरण उन सभी दशाओं प्रणालियों तथा प्रभावों का योग हैं जो जीव व उनकी प्रजातियों के विकास, जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करता हैं।

टेन्सले (Tansley) के अनुसार प्रभावशाली अवस्थाओं व दशाओं का समस्त योग जिसमें जीव आवास करते हैं पर्यावरण कहलाता हैं।

14.2.2 पर्यावरण के लक्षण (Characters of Environment) :

पर्यावरण के निम्न लक्षण होते हैं-

1. पर्यावरण समस्त सामाजिक, भौतिक, रसायनिक एवं जैविक कारकों का योग होता हैं।
2. यह समस्त जीवमण्डल के चारों ओर आवरण के रूप में फैला होता हैं।
3. यह जीव जन्तुओं व वनस्पतियों को प्रभावित करता हैं।
4. यह जीवों व उनकी प्रजातियों के विकास, जीवन एवं मृत्यु अर्थात विकास चक्र को प्रभावित करता हैं।
5. पर्यावरण में जीवों का परस्पर सहवास एक अनिवार्य लक्षण हैं।
6. पर्यावरण एक खुला तंत्र हैं।

14.3 भौतिक पर्यावरण (Physical Environment)

इसके अन्तर्गत विकिरण (प्रकाश), तापमान(ऊष्मा), आर्द्रता तथा वर्षा आते हैं।

14.3.1 प्रकाश (Light)

प्रकाश का प्राकृतिक स्त्रोत सूर्य हैं। सूर्य की विकिरण ऊर्जा का छोटा सा द्रव्य स्पेक्ट्रम वाला भाग प्रकाश कहलाता हैं। सूर्य से विभिन्न प्रकार की किरणें जिनमे कॉस्मिक किरणें (Cosmicray) विद्युत चुम्बकीय तरंगे (Electro Magnetic Waves), रेडियों तरंगे (Radio Waves) पराबैंगनी तथा इन्फ्रारेड किरणें (Ultra Violet and Inprared Rays) आदि निकलती हैं। पौधे प्रकाश की उपस्थिति में भोजन प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा बनाते हैं। प्राणी भोजन के लिए पौधों पर आश्रित रहते हैं अत: प्रकाश के अभाव में प्राणियों का अस्तित्व नगण्य हैं। इसके अतिरिक्त भी प्रकाश विभिन्न प्रकार से जीवों को प्रभावित करता हैं।

प्रकाश का प्रभाव (Effect of Light)

1. प्रकाश पौधों में प्रकाश संश्लेषण का प्रमुख घटक हैं।
2. प्रकाश श्वसन तथा वाष्पोत्सर्जन के लिए आवश्यक हैं।
3. पर्णरन्ध्रों के खुलने व बंद करने को नियंत्रित करता हैं।

4. पुष्पों के खिलने तथा फलों के बनने की क्रिया को प्रभावित करता हैं।
5. यह पेड़ पौधों के अंकुरण के लिए आवश्यक हैं।
6. जीवो में विटामिन D का प्रमुख स्त्रोत हैं।
7. प्रकाश के अभाव में मानवीय क्रियाएं प्रभावित होती हैं।

14.3.2 तापमान (Temperature)

तापमान वनस्पति तथा पादपों को सबसे अधिक प्रभावित करता हैं। समस्त जैविक क्रिया कलाप ताप से प्रभावित होते हैं। पृथ्वी पर ताप तथा प्रकाश सूर्य के विकिरण द्वारा पहुँचता हैं। प्रत्येक जीव की ताप सहन करने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती हैं।

तापमान का प्रभाव (Effect of Temperature)

1. हरित लवक निर्माण, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन तथा अंकुरण ताप से प्रभावित होते हैं।
2. वनस्पति की प्रकृति का वितरण भी ताप से प्रभावित होता हैं जैसे शीत प्रदेशों में कोणधारी वन, मध्य अक्षांशो में पतझड़ तथा विषवत् रेखीय प्रदेशों में उच्च तापमान एवं अतिवर्षा के कारण सघन वन होते हैं।
3. बीजों के अंकुरण के लिए अनुकुल तापमान आवश्यक हैं।
4. शरीर में होने वाली चपापचयम (Metabolie) क्रियाओं के लिए निश्चित स्तर तक शरीर का ताप आवश्यक हैं। मेंढक, मछली, सर्प आदि के शरीर का तापमान वातावरण में होने वाले ताप परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता रहता हैं।
5. समतापी जीवों में परिवर्तित ताप का प्रभाव नहीं पड़ता हैं।

14.3.3 आर्द्रता (Humidity)

जल वाष्प के रूप में मिलने वाले जल को आर्द्रता कहते हैं। वायुमण्डल में जब गर्म वायु ऊपर उठती है व वायुमण्डल के ऊपरी भाग में पहुँचती हैं। तब वहाँ तापमान कम होने के कारण यह जल वाष्प संघनन प्रक्रिया द्वारा जलकण व हिमकण में परिवर्तित हो जाती हैं। जलकण व हिमकण परस्पर मिलकर बादलों का निर्माण करते हैं व आकाश में तैरते रहते हैं। अधिक भारी होने पर ये वर्षा अथवा हिमपात के रूप में नीचे पृथ्वी पर आ जाते हैं।

आर्द्रता का प्रभाव (Effect of Humidity)

1. यह पौधों के आकार तथा बनावट को प्रभावित करती हैं।
2. कुछ पौधे जैसे मोसेस व आर्किड नमी की पूर्ति के लिए आर्द्रता पर निर्भर रहते हैं।
3. जल का वाष्पोत्सर्जन तथा संघनन भी आर्द्रता पर निर्भर होता हैं।

14.3.4 वर्षा (Rain)

समुद्र व नदियों का जल जब वाष्पोत्सर्जन द्वारा ऊपर उठता हैं व ऊपर वायुमण्डल में संघनन क्रिया के पश्चात वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आता हैं। यह जल मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करता हैं।

वर्षा का प्रभाव (Effect of Rain)

1. वर्षा की कमी पेड़ पौधों को प्रभावित करती हैं।

2. वर्षा की कमी से अकाल पड़ जाता हैं, कृषि नष्ट हो जाती हैं।

3. मानव आवश्यकताँ प्रभावित होती हैं।

14.4 भूमण्डलीय पर्यावरण

भूमण्डल पृथ्वी का मुख्य भाग हैं यह तीन भागों में बँटा होता हैं-

1. **पर्पटी (Crust) :** यह भाग हमें दिखाई देता हैं इस पर समस्त जीव जंतु तथा वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। यह 16 से 50 किमी. तक फैला होता हैं।

2. **प्रवार (Mantle) :** यह लौह तथा मैग्नीशियम चट्टानों का बना होता हैं। यह 2880 किमी. मोटा होता हैं तथा पृथ्वी के वजन का 6% व आयतन का 84% भाग बनाता हैं।

3. **क्रोड (Core) :** यह आंतरिक भाग होता हैं इसका तापमान 8000℃ माना जाता हैं तथा इसमें भारी घनत्व के पदार्थ निकल (Nickel) व लौह (Iron) पाए जाते हैं।

भूमण्डलीय पर्यावरण का प्रभाव

1. भूमण्डलीय पर्यावरण के कारण जलवायु परिवर्तन होता हैं।
2. इसके कारण ग्रीन हाउस प्रभाव होता हैं।
3. भूमण्डलीय पर्यावरण के कारण ओजोन अवक्षय होता हैं।
4. इसके कारण अम्ल वर्षा आदि होते हैं।

14.5 जैवमण्डल (Biosphere)

समस्त जीवित समुदाय पर्यावरण का जैविक घटक बनाता हैं। पृथ्वी का ऐसा भाग जहाँ जीवन सम्भव हैं जैव मण्डल कहलाता हैं। इसमें महाद्वीपों की सतह समुद्र तथा सतह के निकटवर्ती वायुमण्डल तीनों शामिल हैं। वायुमण्डल में यह 10 किमी. तक, समुद्र में 35, 000 फीट तक, मृदा या धरातल में 23, 000 फीट तक फैला हैं। यह परिमण्डल भी कहलाता हैं।

14.6 प्रदूषण (Pollution)

वर्तमान में पर्यावरणीय प्रदूषण एक गंभीर समस्या हैं। विकसित एवं विकासशील देश सभी इस समस्या से ग्रस्त हैं। पर्यावरण प्रदूषण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमे प्रभावित करता हैं।

परिभाषा : पर्यावरण में होने वाला अवांछित परिवर्तन प्रदूषण कहलाता हैं। जिससे हमारे भौतिक, रसायनिक तथा जैविक गुण प्रभावित होते हैं। दूसरे शब्दों में प्राकृतिक साधनों के उपयोग को बाधित करने की प्रक्रिया को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं।

प्रदूषक (Pollutant) : वे कारक एवं पदार्थ जो जल, थल तथा वायुमण्डल में संचारित विभिन्न तंत्रों के प्राकृतिक संतुलन को असंतुलित करते हैं अर्थात् जिनके कारण प्रदूषण होता हैं। प्रदूषक कहलाते हैं। अन्य शब्दों में अवशिष्ट रूप में फेंके गए तत्वों को प्रदूषक कहते हैं।

प्रदूषकों को निम्न आधार पर वर्गीकृत किया गया हैं।

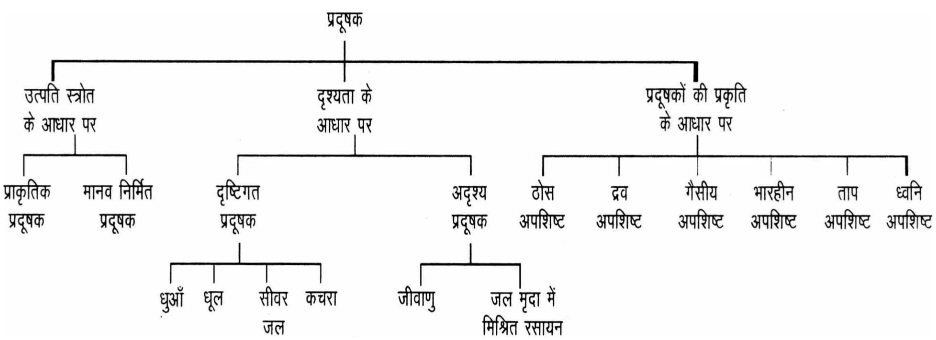

उत्पत्ति स्त्रोत के आधार पर

उत्पत्ति के आधार पर प्रदूषकों को दो वर्गो में वर्गीकृत किया गया हैं।

1. **प्राकृतिक प्रदूबक (natural pollutants) :** ऐसे प्रदूषक जो प्रकृति में विद्‌यमान होते हैं। प्राकृतिक प्रदूषण कहलाते हैं। जैसे बिजली चमकने से, ज्वालामुखी फटने से, पत्तियाँ सड़ने से इत्यादि।

2. **मानव निर्मित प्रदूषक (man made pollutants) :** ऐसे प्रदूषक जो मानव क्रिया कारण अथवा उसके पश्चात वातावरण में उत्पन्न होते हैं। मानव निर्मित प्रदूषक कहलाते हैं।

दृश्यता के आधार पर

दृश्यता के आधार पर प्रदूषकों को दो वर्गो में रखा गया हैं।

1. **दृष्टि प्रदूषक (visible pollutants) :** ऐसे प्रदूषक जो दिखाई पड़ते हैं दृष्टि गत प्रदूषक कहलाते हैं।

2. **अदृश्य प्रदूषक (vonvisible pollutants) :** ऐसे प्रदूषक जो वातावरण में विद्‌यमान हैं किन्तु दिखाई नहीं देते हैं अदृश्य प्रदूषक कहलाते हैं। जैसे विभिन्न प्रकार के जीवाणु, भूमि (मिट्टी) तथा पानी में घुले हुए रसायन आदि।

प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर

प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर इन्हें छः भागों में वर्गीकृत किया गया हैं।

1. **ठोस अपशिष्ट (solid waste) :** ये औद्‌योगिक घरेलू अपशिष्ट होते हैं जिन्हें कूडा करकट कहते हैं। इसमें घरों व उद्‌योगों से प्राप्त खाली डिबे, बोतल, प्लास्टिक, मृत जीव-जंतु, मलबा आदि को सम्मिलित किया जाता हैं।

2. **द्रव अपशिष्ट (liquid waste) :** इसमें घरों से निकले जल, मलमूत्र, इसके साथ बहकर आए मृदा के कण, कारखानों से निकले हानिकारक पदार्थ जैसे पारा, सीसा, केडमियम आदि को सम्मिलित किया गया हैं।

3. **गैसीय अपशिष्ट (gaseous waste) :** इसमें कार्बनडाई ऑक्साइड, सल्फरडाई ऑक्साइड, फ्लोरो कार्बन, अमोनिया, धूल, धुआँ, नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि शामिल होते हैं।

4. **भारहीन अपशिष्ट (weight loss waste) :** इनमें अदृश्य ऊर्जा अपशिष्ट को सम्मिलित किया जाता हैं। जिनमें ताप ध्वनि तथा रेडियो धर्मी अपशिष्ट समाहित हैं।

5. **ताप अपशिष्ट (heat waste) :** विभिन्न तापघरों, कारखानों आदि से निकला गर्म जल, गर्म गैसे आदि को सम्मिलित किया गया हैं।

6. **ध्वनि अपशिष्ट (noise waste) :** अवाँछनीय जो तेज दौडते वाहनों, वायुयानों, रेलों, सामाजिक क्रिया कलापों में बडे ध्वनि विस्तारक यंत्रों से उत्पन्न होती हैं, को सम्मिलित किया जाता हैं।

पारिस्थकीय दृष्टि कोण से ई.पी. ओडम ने प्रदूषण को निम्न दो वर्गो में विभक्त किया हैं।

1. अविघटनीय प्रदूषक (Non degradable pollutants)
2. जैव विघटनीय प्रदूषक (Bio degradable pollutants)

1. **अविघटनीय प्रदूषक (Non degradable Pollutants) :** ये मानव निर्मित ऐसे औद्योगिक प्रदार्थ होते हैं, जो प्राकृतिक रसायनिक व जैव रसायनिक क्रियाओं द्वारा विघटित नहीं होते हैं। जिस कारण पारिस्थितिक तंत्र में इनका पुन: चक्रीकरण नहीं हो पाता हैं। परिणामस्वरूप ये तत्व एकत्र होकर पारिस्थितिक तंत्र पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। इनमें टिन, पारद लवण, एल्यूमिनियम, फिनोलिक यौगिक, प्लास्टिक, कैडमियम, डीडीटी, वीएचसी, एल्ड्रीन प्रमूख हैं।

2. **जैव विघटनीय प्रदूषक (Bio Degradable Pollutants) :** ऐसे प्रदूषक जो विभिन्न सूक्ष्मजीवों की प्राकृतिक प्रक्रियाओं के द्वारा विघटित हो जाते हैं, जैवविघटनीय प्रदूषक कहलाते हैं। जैसे फल, सब्जियों के छिल्के, कूडा, कचरा, मलमूत्र आदि।

प्रदूषण के प्रकार (Types of Pollutants) :

पर्यावरण प्रदूषण को प्रदूषक पदार्थो, प्रदूषण स्त्रोतों तथा प्रदूषण के प्रभावों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता हैं। इस आधार पर प्रदूषण निम्न प्रकार के होते हैं।

1. जल प्रदूषण
2. वायु प्रदूषण
3. भूमि या मृदा प्रदूषण

उदाहणार्थ कीटनाशक रसायन अवघिटनात्मक होने के साथ-साथ जल, वायु व भूमि को भी प्रदूषित करते हैं।

14.7 जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल में किसी कार्बनिक एवं अकार्बनिक योगिकों का इस मात्रा में एकत्रित होना। जिससे जल के भैतिक रसायनिक एवं जैविक गुण प्रभावित होते हैं एवं जल उपयोग के योग्य न रहे, तो इसे जल प्रदूषण कहते हैं। अन्य शब्दों में प्राकृतिक जल में किसी बाह्य अवांछित पदार्थो का प्रयोग जिससे जल की गुणवत्ता में परिवर्तन न हो जाए जल प्रदूषण कहलाता हैं।

14.7.1 जल प्रदूषण के कारण (Causes of Water Pollution) :

1. प्राकृतिक कारण (Natural Causes)
   - 1. ज्वालामुखी उद्‍गार (राख)
   - 2. भूक्षरण (भूस्खलन)
   - 3. जैविक कचरा
   - 4. खानों के अपशिष्ट गैसें
2. मानवीय स्त्रोत (Man induced Source)
   - 1. घरेलू बहिः स्त्राव
   - 2. वाहित मल (Sewage)
   - 3. औद्योगिक बहिः स्त्राव (Industrial Effluents)
   - 4. तेलीय प्रदूषण (Oil Pollution)
   - 5. ताप प्रदूषण (Thermal Pollution)
   - 6. कृषि बहिःस्त्राव (Agriculture Effluents)
   - 7. सामाजिक स्त्रोत (Social Sources)

जल प्रदूषण के प्राकृतिक कारण

ज्वालामुखी के उदगार, भूस्खलन, खानों से बहकर निकले अपशिष्ट गैंसे, जीवांश, सडी गली पत्तियाँ जीव जन्तुओं के मलमूत्र आदि प्राकृतिक कारणों से जल प्रदूषित होता हैं। मनुष्य के क्रियाकलापों के कारण से जलस्त्रोत धीरे-धीरे प्रदूषित हो रहे हैं। प्रदूषित जल में जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती हैं। जो जीवधारियों के स्वास्थय पर प्रतिकुल प्रभाव डालते हैं। जिससे जलीय पारिस्थितिकी प्रभावित होती हैं।

जल प्रदूषण के मानवीय स्त्रो

1. **घरेलू बहि:स्त्राव (Domestic Fffluents) :** सफाई करने, बर्तन व कपड़े धोने आदि से जल प्रदूषित होता है तथा यह जल नालियों में प्रवाहित कर दिया जाता हैं इसमे अन्य प्रदूषक भी मिलते जाते हैं। इसके पश्चात यही जल स्त्रावों में डाल दिया जाता हैं इसका शोधन संभव नहीं होता हैं अत: यह पीने योग्य नहीं रहता हैं।
2. **वाहितमल (Sewage) :** घरेलू सार्वजनिक शौचालयों, खाद्‍य पदार्थ बनाने के पश्चात से निकले हु ए जल को तालाब, नदी, झीलों आदि में विसर्जित कर दिया जाता हैं। इनके रोगकारी जीवाणु व विषाणु जल को प्रदूषित करते हैं। जिससे जल प्रदूषण फैलता हैं। जिससे जलजनित बीमारियाँ फैलती हैं।
3. **औधोगिक बहि:स्त्राव (Industrail Effluents) :** कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट जिनमें कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ, औषधिया, पेंट, अपमार्जक, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक आदि नालों में विसर्जित कर दिए जाते हैं। नालों से ये तालाबों, नदियों झीलों आदि में डाल दिए जाते हैं। इस वाहित जल में ताँबा, सीसा, पारा तथा कैडमियम की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि मछलियाँ मरने लगती हैं। इन स्त्रोतों का पानी पीने योग्य नहीं रहता हैं।
4. **तैलीय प्रदूषण (Oil Pollution) :** जल में विभिन्न स्त्रोतों से तेल या पैट्रोलियम के मिश्रण से होने वाले प्रदूषण को तैलीय प्रदूषण कहते हैं। यह प्रदूषण प्राय: समुद्रों में होता हैं। जहाजों के दुर्घटना ग्रस्त हो जाने पर, तेल परिवहन के समय, समुद्री तट पर कुँओं से रिसाव के कारण तैलीय प्रदूषण होने पर जलीय जीव जंतु तथा वनस्पति को हानि पहुँचती हैं।
5. **ताप प्रदूषण (Thermal Pollution) :** कारखानों में मशीनों को धोने तथा ठंडा करने के लिए प्रयुक्त पानी गर्म हो जाता हैं। यह गर्म पानी उसी अवस्था में जलस्त्रोत में छोड़ दिया जाता हैं। गर्म जल पारिस्थितिकी पर प्रतिकुल प्रभाव डालता हैं।

6. **कृषि बहि:स्त्राव (Agricultural Effluents) :** कृषि कार्यो में प्राय:, कीटनाश्क उर्वरक तथा खरपतवार नाशकों आदि जल में पहुँचकर जल प्रदूषण करते हैं।

7. **सामाजिक स्त्रोत (Social Sources) :** मानव सांस्कृतिक एवं धार्मिक सम्मेलनों के दौरान भारी मात्रा में जल स्त्रोतों को प्रदूषित करता हैं। इसके अतिरिक्त शवों को नदियों में बहा देने से बडे मेलों के दौरान भी जल प्रदूषण होता हैं।

14.7.2 जल के प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Water Pollution) :

प्रदूषित जल पीने से मानव, जीवजंतुओं, पादपों आदि को बहुत हानि पहुँचती हैं तथा अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जल प्रदूषण से होने वाले प्रभाव निम्न हैं-

1. मनुष्यों पर प्रभाव (Effect on Humans)
2. जीव जंतुओं पर प्रभाव (Effect on Animals)
3. वनस्पतियों पर प्रभाव (Effect of Vegetation)
4. कृषि पर प्रभाव (Effect on Agriculture)
5. अन्य प्रभाव (Other Effect)

1. मनुष्यों पर प्रभाव (Effect on Humans)

प्रदूषित जल को उपयोग में लेने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

1. प्रोटोजोआ जनित रोग थोम्बोइसिस, पेट दर्द, अमीबोयासिस आँतों के रोग आदि।
2. बैक्टीरिया तथा वाइरस जनित रोग हेपेटाइटिस, पीलिया, पोलियो आदि।
3. प्रदूषित जल पीने से पेचिश, अतिसार, टायफाइड, हैजा तथा तपेदिक होने का खतरा रहता हैं।
4. फ्लोराइड युक्त पानी से हड्डियों का क्षरण तथा दंतक्षम हो जाता हैं।
5. नाइट्रोजन रक्त में उपस्थित ऑक्सीजन की वहन क्षमता कम करते हैं।
6. प्रदूषित जल में स्नान करने से त्वचा तथा आँखों पर प्रभाव पड़ता हैं।
7. प्रदूषित पेयजल द्वारा परजीवी कृमि मनुष्य की आँतों में प्रवेश कर जाते हैं तथा कई रोगों को जन्म देते हैं जैसे राउण्डबर्म, टेपवर्म, नारू आदि।

2. जीवजंतुओं पर प्रभाव (Effect on Animals)

1. प्रदूषित जल में हानिकारक जीवाणु, प्रोटोजोआ आदि पाए जाते हैं। जो जलीय प्राणिओं के लिए घातक होते हैं।
2. प्रदूषित जल का तापक्रम बढ़ जाता हैं तथा ऑक्सीजन की कमी होती हैं।
3. तापीय प्रदूषण के कारण मछलियां प्रवास करके दूर चली जाती हैं।
4. मल मूत्र, कृषि अपशिष्ट, अपमार्जक पदार्थो, रसायनों के कारण जलीय प्राणियों की शारीरिक एवं कार्यिकी प्रणाली प्रभावित होती हैं।
5. उर्वरक, दवाईयाँ, कीटनाश्क खरपतवार नाशकों के उपयोग के कारण ये पदार्थ खाद्य शृंखला के माध्यम से प्राणियों में एकत्रित होकर उनकी जैविक क्षमता को कम करता हैं।

3. वनस्पतियों पर प्रभाव (Effect on Vegetation)

1. प्रदूषित जल में पोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण शैवाल अत्यधिक विकसित हो जाते हैं। जिसके कारण सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ जाती हैं। इस कारण जल में ऑक्सीजन व पोषक पदार्थो की कमी के कारण जलीय वनस्पतियाँ नष्ट हो जाती हैं।
2. बहित मल के द्वारा हुए जल प्रदूषण से जल की ऊपरी सतह पर विभिन्न रंगों के मल कवक उत्पन्न हो जाते हैं। जिसके कारण सूर्य का प्रकाश अंदरतक नहीं पहुँच पाता हैं व प्रकाश संश्लेषण में बाधा आती हैं।
3. अपशिष्ट पदार्थ निस्यंदित होकर जल के पेंदे में बैठ जाते हैं। जिससे जल में जलकुंभी तेजी से विकसित होने लगती हैं।
4. प्रदूषण के कारण जल के तापमान में वृद्वि हो जाती हैं। जिससे पौधों में रसाकर्षण नहीं होता हैं व पौधे सूख कर मर जाते हैं।

4. कृषि पर प्रभाव (Effect of Agriculture)

1. प्रदूषित जल में हानिकारक तत्व होने के कारण मृदा की उर्वरता कम हो जाती हैं।
2. प्रदूषित जल से सिंचाई करने से फसल नष्ट होने लगती हैं।

5. अन्य प्रभाव (Other Effects)

1. जलीय विविधता घटती हैं अर्थात् जलीय जीवों की जनसंख्या प्रभावित होती हैं।
2. जीवजंतु व वनस्पतियों के नष्ट हो जाने के कारण पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाता हैं।
3. जल में अम्लता बढ़ जाने से धातु के बने पाइप गलने लगते हैं।
4. झीलों में प्रदूषण से पर्यटन उद्योग प्रभावित होता हैं।

जल प्रदूषण पर नियंत्रण के उपाय (Control Measures Water Pollution)

वर्तमान में जल प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या बन चुका हैं। अत: यह आवश्यक है कि इसे रोकने के लिए विभिन्न उपाय अपनाये जाये। जल प्रदूषण नियंत्रण के उपाय निम्न हैं-

1. नदियों, तालाबों, कुँओं आदि में प्रदूषित जल को मिलने से रोकना चाहिए।
2. प्रदूषित जल, वाहित मल, आदि को शोधन के पश्चात ही जलीय स्त्रोतों में विसर्जित करना चाहिए।
3. पालतू एवं जंगली जानवरों को जलीय स्त्रोतों में नहाने से रोकना चाहिएं
4. तालाबों, 'कुँओं आदि की नियमित रूप से सफाई करवानी चाहिए।
5. नगरों व महानगरों में सीवरेज सुविधा होनी चाहिए।
6. नाभिकीय विखण्डनों तथा परमाणु परीक्षणों को समुद्र में नहीं करना चाहिए।
7. जल प्रदूषण फैलाने वाली औधोगिक इकाइयों को दण्डित करना चाहिए।
8. शवों को नदियों में न बहाकर शवदाह ग्रह में जलाना चाहिए।
9. औद्योगिक कारखानों को जलीय स्त्रोतों के समीप स्थापित नहीं करना चाहिए।
10. जल में उपस्थित मछछरों के अण्डों व लार्वा समाप्त करने के लिए मछलियाँ पालनी चाहिए।
11. पैट्रोलियम व तैलीय पदार्थो को समुद्र में नहीं फैलाना चाहिए।

12. सरकारी तौर जल शौधन की विधियों का विकास, जल प्रदूषण के नियमन एवं कानून बनाने चाहिए।

14.8 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायु में उपस्थित हानिकारक पदार्थो की उस मात्रा को जो मानव तथा उसके पर्यावरण के लिए हानिकारक हो को वायु प्रदूषक तथा इस प्रक्रिया को वायु प्रदूषण कहते हैं। अन्य शब्दों में वायु में किसी भी ऐसे रासायनिक भौतिक या जैविक कारक की उपस्थिति जो उसके प्राकृतिक स्वरूप को बदल दे वायु प्रदूषण कहलाता हैं।

14.8.1 वायु प्रदूषण के प्रकार (Types of Air Pollution) :

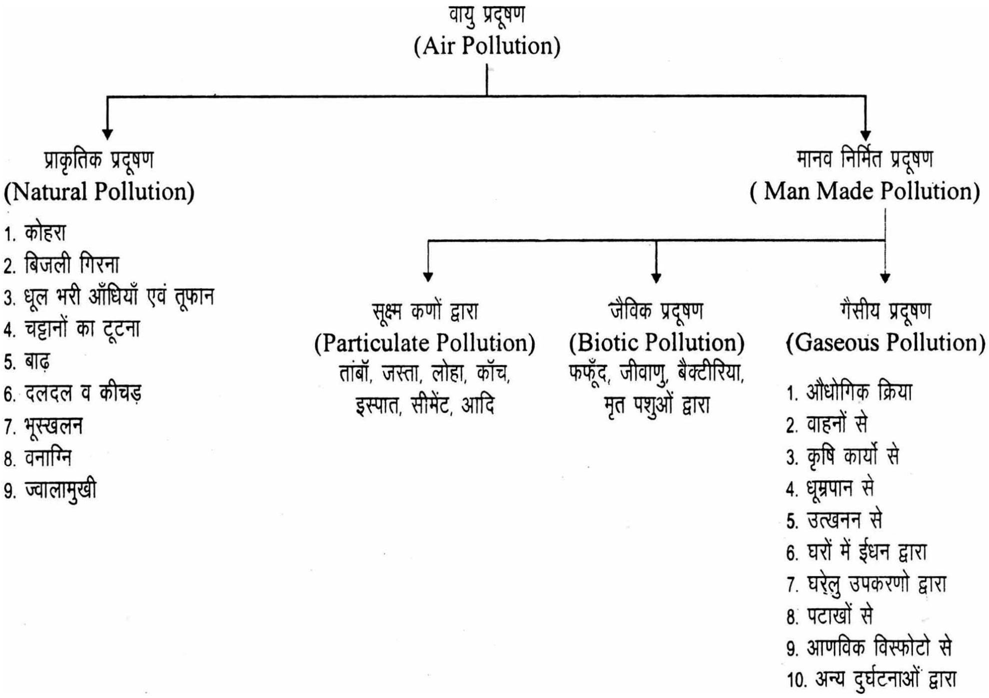

वायु प्रदूषण के कारण (Causes of Air Pollution) :

वायु प्रदूषण प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों कारणो से होता हैं।

1. **प्राकृतिक स्त्रोतों से वायु प्रदूषण :** प्राकृतिक विपदाएँ जैसे धुंध अथवा कोहरे से, वर्षा ऋतु में बिजली कड़क ने से, आँधी व तूफान से धूल उड़ने के कारण चट्टानें आदि टूटने लगती हैं। अत्यधिक वर्षा से बाढ़ आ जाती हैं। जिस कारण कीचड़ व दलदल हो जाता हैं तथा वर्षा के कारण से ही भूस्खलन भी होता हैं। तेज गर्मी में तापमान आधिक्य के कारण वनों में आग लग जाती हैं। पृथ्वी के अंदर विषैली गैसो के कारण ज्वालामुखी विस्फोट होते हैं। इन सभी कारणों से प्राकृतिक प्रदूषण फैलता हैं।

2. **मानव निर्मित प्रदूषण :**

1. **सूक्ष्म कणों द्वारा :** प्रकृति में अनेक प्रकार के छिड़काव, रंग फर्नीचर को चमकाने वाले विलायक आदि में वाष्पशील हाइड्रोकार्बन होने के कारण ये वाष्पित होकर सूक्ष्म कणों एवं वाष्प के रूप

में वायु में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं। ये सूक्ष्म कण प्राय: तांबॉ, जस्ता, लौहा, काँच, इस्पात, सिरेमिक्स आदि के होते हैं।

2. **जैविक प्रदूषण :** जैविक प्रदूषण प्राय: सड़े गले पदार्थो में फफूँद लग जाने के कारण, मृत पशु पक्षियों में जीवाणु बैक्टीरिया उत्पन्न होने के कारण होता हैं। यह वातावरण को प्रभावित करता हैं।

गैसीय प्रदूषण (Gaseous Pollution) :

1. **औद्योगिक क्रियाओं से (industrial pollution) :** औद्योगिक क्रियाओं से हानिकारक गैसें, धुँआ, नाइट्रोजन के ऑक्साइड पोटाश के कण, सिलिकन, सोडियम, एल्यूमिनियम, कैल्सियम आदि के कण वायु में प्रवेश कर वायु को प्रदूषित करते हैं।
2. **वाहनों से (automobile pollution) :** तीव्रगामी परिवहन के साधन जैसे कार, बरन, स्कूटर, ट्रक, रेल तथा वायुयान आदि में डीजल तथा पेट्रोल का उपयोग किया जाता हैं। इन ईधनों के जलने से धुआँ उत्पन्न होता हैं। जिनमें कार्बन कणों के साथ हाइड्रोकार्बन, नाइट्रोजन तथा सल्फर के ऑक्साइड आदि पाए जाते हैं जो वायु को प्रदूषित करते हैं।
3. **कृषि कार्यो से (By agriculture Activites) :** कीटनाशक, पीड़कनाशक, उर्वरक आदि कृषि में काम आने वाले पदार्थ वायु में मिलकर प्रदूषण फैलाते हैं। जिससे श्वसन क्रिया प्रभावित होती हैं।
4. **धुम्रपान से :** तम्बाकू बीड़ी, सिगरेट आदि के धूम्रपान के कारण विषैली गैसें निकलती हैं। जिससे वायु प्रदूषित होती हैं।
5. **उत्खनन से :** खानों से निकलने वाली धातुओं के साथ विभिन्न विषैली गैसें भी निकलती हैं जो खानों के अंदर तथा आस पास की वायु को प्रदूषित करती हैं।
6. **घरों में ईंधन से :** घरों में भोजन पकाने बर्तन धोने, कपडे धोने, पानी गर्म करने आदि में ईंधन प्रयुक्त होता है। कोयला, कैरोसिन तथा एल.पी.जी., लकड़ी, गोबर, कंडे आदि जलाकर ऊर्जा प्राप्त की जाती हैं। जिससे विभिन्न गैसें उत्पत्र होने के कारण वायु प्रदूषण फैलता है।
7. **घरेलू उपकरणों से :** घरेलू उपकरण जैसे रेफ्रीजरेटर, एयर कंडीशनर आदि में प्रशीतकों के रूप में काम आने वाला रसायन क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) वायुमण्डल में मिलकर ओजोन परत को हानि पहुँचाता हैं
8. **पटाखों से :** विवाह समारोह, दीपावली आदि त्योहारों पर उपयोग में लिए जाने वाले पटाखे वायु में कई प्रकार के कण व वाष्प निस्तारित करते हैं। जिससे वायु प्रदूषण फैलता हैं।
9. **आणविक विस्फोटों से :** परमाणु बमों के निर्माण में कई रेडियों सक्रिय समस्थानिक तत्वों का उपयोग होता हैं। परमाणु बमों में विस्फोट के साथ ये पदार्थ वायुमण्डल में दूर-दूर तक फैल जाते हैं। जो मानव जाति व पेड़ पौधों के लिए अत्यन्त विनाशकारी हैं।
10. **अन्य दुर्घटनाओं द्वारा :** कच्ची व टूटी फूटी सड़को पर वाहनों द्वारा धूल उडकर वायुमण्डल में पहुँच जाती हैं इसके अतिरिक्त धूम्रपान के कारण, जन्तुओं में जैविक क्रियाओं के द्वारा बनने वाली गैसे भी वायु प्रदूषण बढ़ाती हैं।

14.8.2 वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव (Hormful Effects of Air Pollutions) :

वायु प्रदूषण वनस्पति, जीवजंतु एवं कीटों, मानव स्वास्थ्य, वायुमण्डल तथा ऐतिहासिक इमारतों को प्रभावित करता हैं। इसके प्रभाव निम्न लिखित हैं।

1. वनस्पति पर प्रभाव
2. जीवजंतु एवं कीटों पर प्रभाव
3. मानव स्वास्थय पर प्रभाव
4. वायुमण्डल एवं जलवायु पर प्रभाव
5. ऐतिहासिक इमारतों पर प्रभाव

1. **वनस्पति पर प्रभाव (Effect On vegetation) :** वायु प्रदूषण के कारण प्रदूषित पदार्थ की पत्तियों पर केन्द्रित होकर पर्णरंध्रों को अवरूद्ध कर देते हैं। जिसके कारण वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया धीमी हो जाती हैं। ओजोन ह्रास के कारण भी तापक्रम बढ़ जाता हैं। अत: वनस्पतियों पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता हैं।

2. **जीवजंतु एवं कीटों पर (Effect On animals and insects) :** मोटर गाडियों से निकलने वाले धुंए के कारण से प्रकाश की पराबैगनी किरणों की मात्रा कम हो जाती हैं। जो जीव जंतुओं को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त पशु चारे पर विभिन्न क्लोराइड योगिको के अपवात (Fallont) के कारण ये पदार्थ पशुओं के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। जिससे पशुओं की हड्डियों व दाँतों में फ्लोरिसिस (Flurosis) हो जाता हैं। जिससे उनका वजन घटने लगता हैं व लँगड़ापन आ जाता हैं।

3. **मानव स्वास्थय पर प्रभाव (Effect On human health) :** वायु प्रदूषण मानव को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोत्तों रूप से प्रभावित करता हैं। इसके कारण दमा, सिरदर्द, जुकाम, खाँसी, निमोनिया, तपेदिक, फेंफड़ो का कैंसर आदि हानिकारक बीमारियाँ हो जाती हैं।

4. **वायुमण्डल एवं जलवायु पर प्रभाव (Effect On almosphev & climate) :** वायु प्रदूषण जलवायु को प्रभावित करता हैं। वायुमण्डल के कारण तापमान में वृद्धि हो जाती हैं। जिससे मौसम बादल, वर्षा प्रभावित होते हैं। इसके कारण ओजान परत पतली होती जा रही हैं। जिससे घातक बीमारियाँ कैंसर, मोतियाबिंद आदि हो रही हैं।

5. **ऐतिहासिक इमारतों पर प्रभाव (Effect On historical building) :** संगमरमर से बनी इमारते तथा लाल पत्थर से बनी इमारतें वायु प्रदूषण से प्रभावित हो रही हैं। वायु के साथ जब ये प्रदूषित पदार्थ उडते हैं तब धूल के कण इन पर चिपक जाते हैं।

14.8.3 वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय (Measures to Control Air Pollution) :

वायुप्रदूषण को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

1. हरे भरे वृक्ष वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने में सक्षम होते हैं अत: जहाँ वायु प्रदूषण की संभावना हैं। वहाँ सघन वृक्षारोपन करना चाहिए।
2. सौर ऊर्जा से चलित, धुँआ रहित चूल्हों का उपयोग करना चाहिए।
3. मोटर कार आदि वाहनों के प्रदूषण की नियमित जाँच की जानी चाहिए।

4. कारखानों की चिमनियों के पास ही फिल्टर बैग लगाने चाहिए।
5. वाहनों की गति औसत रहनी चाहिए तथा क्षमता से अधिक वजन नहीं लादा जाना चाहिए।
6. स्वचलित वाहनों से निकलने वाले कार्बन कणों को एग्जास्ट पाइप में फिल्टर लगाकर कम किया जा सकता हैं।
7. औद्योगिक प्रदेशों के चारों ओर हरित पट्टी का विकास किया जानो चाहिए।
8. जन चेतना के माध्यम से आम जनता को प्रदूषण के प्रभावों से अकात कराना चाहिए।

14.9 स्मॉग (Smog)

स्मॉग कोहरे, धुएँ तथा ह्रूमस का मिश्रण होता हैं। औद्योगिक इकाइयों के आस पास प्राय: स्मॉग दिखाई देता हैं। स्मॉग दो शब्दों क्रमश: (Smoke + Fog) धुँआ तथा कोहरा से मिलकर बनता हैं। सन 1905 में एच.ए.वोक्स ने इसे प्रतिपादित किया।

14.9.1 निर्माण

नाइट्रोजन के ऑक्साइड सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में स्मॉग बनते हैं। दो प्रदूषक नाइट्रिक ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बरन सूर्य की रोशनी में परस्पर क्रिया करके परॉक्सी एसीटाइल नाइट्रेट (PAN) बनाते हैं। PAN तथा O3 नाइट्रिक ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन से ज्यादा खतरनॉक होते हैं। इस प्रकार का स्मॉग 1944 में अमरिका के लॉसएंजिल्स में देखा गया। उसके पश्चात 1952 में लन्दन में भी सल्फर यौगिकों के कारण स्मॉग देखा गया। जिससे लन्दन स्मॉग नाम दिया गया।

14.9.2 स्मॉग का वातावरण पर प्रभाव (Effect of smog On environment) :

1. इसके कारण वातावरण में धुँधलापन आ जाता हैं।
2. स्मॉग संशारक (Corrosive) की तरह कार्य करता हैं।
3. इसके कारण श्वसन तंत्र संबंधी बीमारियाँ जैसे फाइब्रोसिस, इम-फाइसीया आदि हो जाती हैं।
4. अन्य बीमारियाँ जैसे दिल की धड़कन तेज होना, आँखों में खुजली, सिरदर्द जैसी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।

14.9.3 स्मॉग रोकथाम के उपाय

हाइड्रोकार्बनों को बढ़ने से रोकना चाहिए। इनसाइडेशन एजजोरप्शन अवशोषण तथा संवहन आदि तकनीके हाइड्रोकार्बन को बढ़ने से रोकने में मददगार साबित हो सकती हैं।

14.10 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

भूमि के भैतिक, . जैविक अथवा रसायनिक गुणों में कोई भी ऐसा अवांछित परिवर्तन या बदलाव जिसका असर पादपों, जीवजन्तुओं तथा मानव जाति पर पड़े तथा जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता एवं उपयोगिता नष्ट हो भूमि प्रदूषण कहलाता हैं।

14.10.1 भूमि (मृदा) प्रदूषण के स्त्रोत (Source of Land Pollution) :

शहरीकरण व औद्योगीकरण के कारण मृदा प्रदूषण तीव्र गति से हो रहा हैं। मृदा प्रदूषण के कारण मृदा के भौतिक, रसायनिक तथा जैविक गुणों में निरंतर ह्रास हो रहा हैं। फलस्वरूप मृदा अम्लीय अथवा क्षारीय होती जा रही हैं। मृदा
प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत निम्न हैं।

1. घरेलू अपशिष्ट
2. नगरपालिका अपशिष्ट
3. औद्योगिक अपशिष्ट
4. खनन अपशिष्ट
5. कृषि अपशिष्ट
6. अन्य अपशिष्ट

1. **घरेलू अपशिष्ट :** भूमि प्रदूषण को बढ़ावा देने में घरेलू अपशिष्ट की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इनमें मुख्य रूप से सब्जी व फलों के छिलके, रद्दी, प्लास्टिक की बोतले, रबर के टायर, गत्ते, लकड़ी, काँच, टूटे फर्नीचर आदि हैं। ये सभी घर के बाहर फेंक दिये जाते हैं। जो मृदा को प्रदूषित करते हैं।

2. **नगर पालिका :** इस श्रेणी में वे सभी अपशिष्ट आते हैं। जो नगरपालिका क्षेत्र के अधीन आने वाली दुकानें, औद्योगिक इकाइयां, चर्म शोधन केन्द्र व अन्य सार्वजनिक स्थानों से निकलते हैं।

3. **औद्योगिक अपशिष्ट :** औद्योगिक संयंत्रो से भारी मात्रा में परित्यक्त सामग्रियाँ, लघु एवं बड़े कल कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट आदि मृदा प्रदूषण का कारण हैं।

4. **खनन अपशिष्ट :** औद्योगिक कच्चे माल व अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रकृति से अनेक खनिजों का खनन किया जा रहा हैं। खनन के उपरान्त भूमि को खुला छोड दिया जाता हैं। इस कारण भूमि का क्षरण होता हैं व उसकी गुणवत्ता कम हो जाती हैं।

5. **कृषि अपशिष्ट :** फसलों की कटाई के पश्चात पत्तियों डण्ठल, खरपतवार, बीज, फल फूल आदि अपशिष्ट धीरे-धीरे विघटित होकर विभिन्न कीटनाशक खरपतवार नाशकों तथा उर्वरकों व वर्षा जल के साथ मिलकर मृदा के गुणों को परिवर्तित कर देते हैं।

6. **अन्य अपशिष्ट :** अपरोक्त स्त्रोतों के अलावा कवक नाशक, पीडकनाशक एवं पादप हारमोन के उपयोग के द्वारा के मृदा का रासायनिक प्रदूषण होता हैं। मृदा अपरदन के कारण भूमि असमतल हो जाती हैं।

14.10.2 मृदा प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Soil Pollution)

मृदा में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव मानव जाति पर प्रत्यक्ष यह अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता हैं। इससे होने वाले कुछ प्रभाव निम्न हैं।

1. कूडे करकट आदि से स्वच्छ भूमि गन्दगी के ढेरों से ढक जाती हैं। जिन पर विभिन्न कीडे, मक्खियाँ, मच्छर आदि पनपते हैं तथा विभित्र बीमारियाँ पेचिश, हैजा, प्रवाहिका, तपेदिक, आंत्र शोध आदि रोग हो जाते हैं।
2. भूमि प्रदूषण से पर्यावरण प्रदूषित होता हैं औधोगिक अपशिष्ट भूमि से वर्षा जल से साथ जल स्त्रोतों में चले जाते हैं। जिस कारण जल मानव एवं जीव जन्तु के पीने योग्य नहीं रहता हैं।
3. कृषि में प्रयोग में लाए जाने वाले जैवनाशी रसायनों तथा उद्योगों के निस्तारित हानिकारक अपशिष्टों के कारण उत्पन्न भूमि प्रदूषण से भूमि उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती हैं।
4. अपशिष्टों के अनियमित निक्षेपण के कारण सीवेज नालियाँ अवरूद्व हो जाती हैं। इससे प्रदूषित जल चारों ओर फैल जाता हैं व इसकी सफाई में अतिरिक्त धन व्यय होता हैं।

14.10.3 मृदा प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण नियंत्रण के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं।

1. ठोस अपशिष्ट का निस्तारण समुचित ढंग से किया जाना चाहिए तथा इसका पुन: चक्रीकरण करके पुन: उपयोगी बनाना चाहिए।
2. रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर प्राकृतिक खाद का उपयोग किया जाना चाहिए।
3. मृदा को स्वच्छ, उर्वरक व पौष्टिक बनाए रखने के लिए जन चेतना अभियान चलाकर समाज को जागरूक किया जाना चाहिए।
4. प्रदूषित जल को सिंचाई में उपयोग में लेने से पहले संशोधित कर लेना चाहिए।
5. कृषि उत्पादन में सीमित मात्रा में कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।
6. मृदा अपरदन को रोकने के समुचित उपाय करने चाहिए।
7. वनों की कटाई पर प्रतिबंध लगाना चाहिए तथा उसका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।
8. सघन वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
9. नाभिकीय परीक्षणों पर रोक लगानी चाहिए।
10. स्वच्छ शौचालयों का विशाल पैमाने पर निर्माण व प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

14.11 शोर प्रदूषण (Noise Pollution)

सामान्य भाषा में अवांछित ध्वनि शोर कहलाती हैं। मेक्सवेल 1973 के अनुसार शोर वह ध्वनि हैं जो अवांछनीय हैं तथा वायुमण्डल प्रदूषण का एक प्रकार हैं। रॉथम हैरी (Rotham Harry) के अनुसार किसी साधन से निर्गत ध्वनि जब असहा हो जाती हैं तब वह प्रदूषण बन जाती हैं। अर्थात वह ध्वनि जिसका प्रभाव मानव के स्वास्थ्य, मानस एवं कुशलता पर पड़े तो यह ध्वनि प्रदूषण की श्रेणी में आती हैं।

विभिन्न स्त्रातों से उत्पन्न ध्वनि की तीव्रता :

ध्वनि तीव्रता कारक (Sound intensity factor = SIF) कम से कम ध्वनि सुनवाई देने वाली ध्वनि का db=0 होता हैं इससे

10 गुणा तीव्रता 10 db

100 गुणा तीव्रता 20 db

1000 गुणा तीव्रता 30 db गुणा होती हैं।

विभिन्न स्त्रोतों से उत्पन्न ध्वनि की तीव्रता db में

क्र.सं .	स्त्रोत	ध्वनि की तीव्रता	मानव द्वारा अनुभव किया जाने वाला ध्वनि स्तर
.1	बेहद धीमे बोलना	25-10	शांत
.2	धीमा	40-30	मधुर
.3	सामान्य बातचीत	60-50	सामान्य
.4	व्यस्त बाजार	70	शोर
.5	मोटर साइकिल की आवाज	90	तेज शोर
.6	जेट इंजिन 100)फीट दूर(	105	असुविधापूर्ण शोर
.7	बिजली की कड़क	120	असुविधापूर्ण शोर

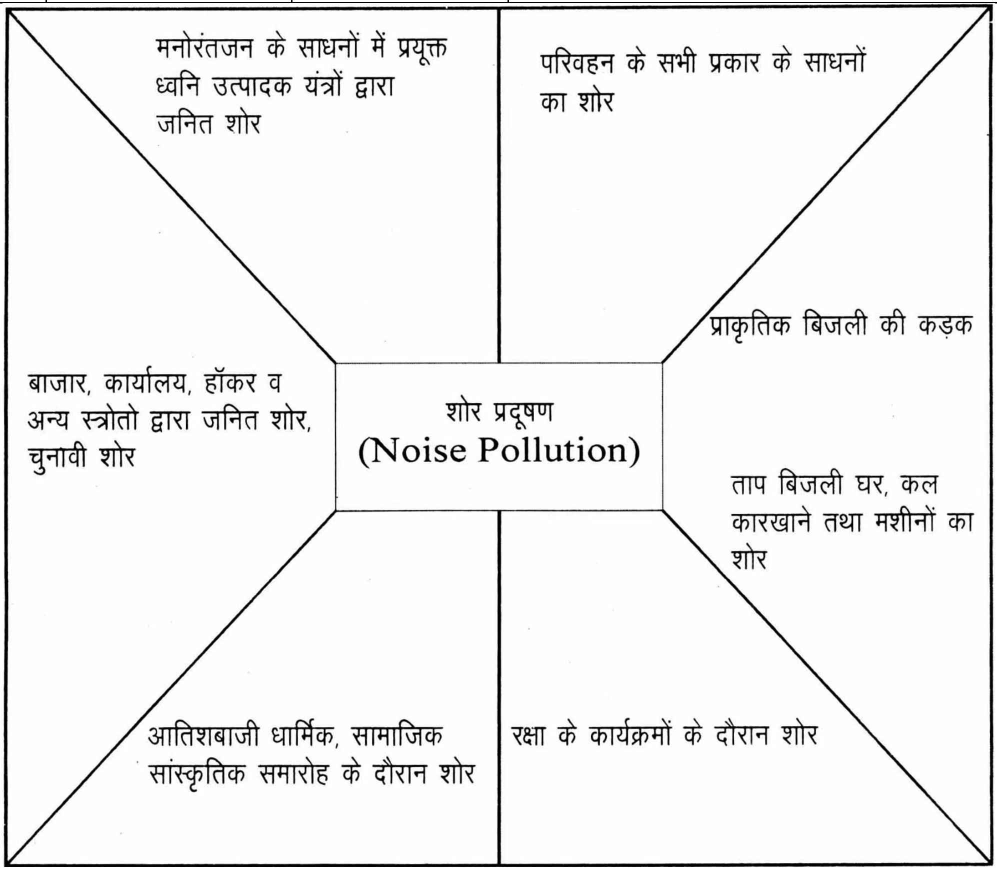

14.11.1 शोर प्रदूषण के स्त्रोत (Source of Noise Pollution)

शोर प्रदूषण के स्त्रोतों को निम्न भागों में विभाजित किया गया हैं।

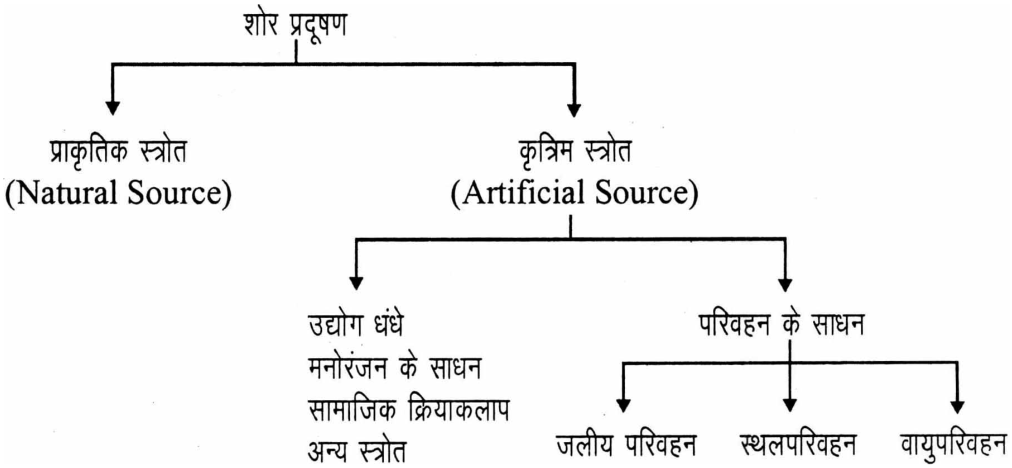

(अ) प्राकृतिक स्त्रोत (Natural Source) : प्राकृतिक स्त्रोंतो से उत्पन्न तीव्र ध्वनियों का उद्‌गम प्राकृतिक रूप से होता हैं। ये ध्वनियाँ अनियमित रूप से उत्पन्न होती हैं। मानव समुदाय पर इनका प्रभाव क्षणिक होता हैं। इनके स्त्रोत निम्न हैं।

1. विद्‌युत गर्जन	2. बादलो की गर्जन	3. तूफानी हवाऐं
4. भयंकर तूफान	5. झरनों की ध्वनि	6. जल वृष्टि
7. भूकम्प	8. ज्वालामुखी का फूटना	9. जार भाटा
10. क्षावानल का प्रकोप		

(ब) कृत्रिम स्त्रोत (Artificial Source) : कृत्रिम स्त्रोतों में मानव द्‌वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं को सम्मिलित किया गया हैं। इन्हें पाँच श्रेणीयों में विभाजित किया गया हैं।

1. उद्‌योग धंधे तथा मशीने (Industrial Units & Machines): तीव्र औद्‌योगिक विकास के कारण कल कारखानों में उपयोग में आने वाली बड़ी मशीने एवं संयत्र निरंतर चलते रहने से स्थाई प्रकृति का ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न होता हैं। इस कारण वहाँ काम करने वाले श्रमिकों की श्रवण शक्ति प्रभावित होती हैं।

2. परिवहन के साधन (Means of Transpotation) : परिवहन के तीनों माध्यमों क्रमशः जलीय, स्थलीय तथा वायवीय तीनों से ध्वनि प्रदूषण फैलता हैं।

2.1 जलीय परिवहन (Water Transpotration) : नाव, पनडुब्बी, जहाज, मोटरबोट आदि साधनों से उत्पन्न ध्वनि प्रदूषण इनमें यात्रा करने वाले यात्रियों को प्रभावित करता हैं।

2.2 स्थल परिवहन (Land Transpotation) : स्थलीय साधनों से उत्पन्न ध्वनि प्रदूषण अधिक हानिकारक तथा स्थाई होता हैं। बस, ट्रक, ट्रेक्टर, कार मोटरसाइकिल, स्कूटर एवं रेलगाडी आदि से उत्पन्न तीव्र ध्वनि के कारण उच्च रक्त चाप, अनिद्रा, तनाव, बहरापन आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।

2.3 वायु परिवहन (Air Transpotation) : सुपर सोनिक विमानों से उत्पन्न ध्वनि के कारण शरीर में जलन, बहरापन तथा उच्च रक्तचाप आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।

3. **मनोरंजन के साधन (Means of Entertainment) :** रेडियो, टेलीवीजन, ग्रामोफोन, स्टीरियो, डिस्कोपेक, लाउडस्पीकर, सर्कस, सिनेमा, थिएटर इत्यादि से निकली ध्वनि अत्यन्त तीव्र होती हैं। यह ध्वनि उच्च आवृत्ति की होने के कारण प्रदूषण फैलाती हैं।

4. **सामाजिक क्रिया कलाप (Social Activites) :** सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों पर अनेक क्रिया कलाप होते हैं। धार्मिक एवं सांस्कृतिक मेलों, शादी विवाहों, मंदिरो में भजन कीर्तनों आदि के समय लाउड स्पीकरों को उच्चतम स्वर में सुना जाता हैं। यह असीमित शोर प्रदूषण उत्पन्न करता हैं।

5. **अन्य स्त्रोत (Other Sources) :** उपर्युक्त कारकों के अतिरिक्त राष्ट्रीय पर्वो पर, चुनाव प्रचार के दौरान खनन के दौरान, चट्टानों को तोडने में ड्रिलिंग आदि से भी शोर प्रदूषण होता हैं। युद्ध अभ्यास के दौरान होने वाला शोर प्रदूषण

14.11.2 शोर प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Noise Pollution)

शोर प्रदूषण विभिन्न रूप से मानव जीवन को प्रभावित करता हैं।

1. सामान्य प्रभाव
2. श्रवण स्तर पर प्रभाव
3. मनोवैज्ञानिक प्रभाव
4. शारीरिक प्रभाव

1. **सामान्य प्रभाव (Normal Effect) :** शोर प्रदूषण के कारण चिड़चिडापन, अनिद्रा, बोलने में व्यवधान सिरदर्द, मस्तिष्क में तनाव आदि दुष्प्रभाव उत्पन्न हो जाते हैं।

2. **श्रवण स्तर पर प्रभाव (Auditory Effect) :** उच्च ध्वनि के कारण श्रवण शक्ति कमजोर हो जाती हैं तथा बहरापन भी आ जाता हैं। उच्च ध्वनि के कारण गर्भवती महिलाओं का गर्भस्थ शिशु जन्म से ही बहरा हो सकता हैं।

3. **मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Psychological Effects) :** शोर मनुष्य के आचरण तथा मानसिक दशाओं पर जटिल तथा बहुमुखी प्रभाव डालता हैं जिसके कारण मानसिक अस्थिरता, खीझ, तनाव, चिडचिडापन कुण्ठा तथा थकान आदि रोग होने लगता हैं। दीर्घकाल तक तीव्र ध्वनि के सम्पर्क में रहने से न्यूरोटिक मेन्टल डिसआर्डर (Neurotic Mental Diorder) हो जाता हैं।

4. **शारीरिक प्रभाव :** शोर प्रदूषण का प्रभाव मानव की शारीरिक कार्य क्षमता पर पड़ता हैं। इसके कारण तनाव, उच्च रक्तचाप, घबराहट, चिडचिड़ापन, दुश्चिन्ता तथा अन्य घातक बीमारियां हो जाती हैं। अत्यधिक शोर गर्भस्थ शिशु को नेत्रहीन भी बना सकता हैं। कभी कभी यह धीमे विष की भाँति दिल दिमाग, आँख, कान गुर्दे की छोटी रक्त वाहिनी नलिकाओं एवं फेफडों की धमनियां में धीरे धीरे रक्त प्रवाह कम होने लगता हैं। फलस्वरूप लकवा, हृदय रोग, बहरापन आदि रोग हो जाते हैं।

14.11.3 शोर प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Noise Pollution)

आज के युग में शोर प्रदूषण को पूर्ण रूप से दूर कर पाना संभव नहीं हैं। परन्तु प्रभावी नियंत्रण लगाकर इसकी तीव्रता को कम किया जा सकता हैं।

1. वाहनों में तेज व विचित्र हॉर्न बजाने पर पाबन्दी होनी चाहिए।
2. वाहनों में एसे टायरों का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे कम ध्वनि उत्पन्न हो।
3. बड़े नगरों एवं महानगरों में लघुपथित मार्ग (By Pass Way) का निर्माण करना चाहिए।
4. सार्वजनिक एवं धार्मिक स्थानों पर ध्वनि विस्तारक यंत्रों के प्रयोग पर पाबन्दी होनी चाहिए।
5. मनोरंजन के साधन टीवी, दूरदर्शन, रेडियो आदि धीमी आवाज में बजना चाहिए।
6. ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए।
7. महानगरों में ध्वनि नियंत्रण केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।
8. जेट विमानों का शोर कम करने के लिए इनके टर्बो इंजन पर शोर अवशोषकों का उपयोग करना चाहिए।
9. भवनों का निर्माण इस प्रक्रिया से करना चाहिए ताकि कम से कम प्रदूषण हो।
10. दिन के समय स्कूल, कॉलेज, अस्पताल के पास से वाहनों के गुजरने पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

14.12 कीटनाशक रसायनों द्वारा प्रदूषण

अच्छी पैदावार तथा अत्यधिक मात्रा में उत्पादन की चाह में आज विभिन्न कीटनाशी रसायनों का प्रयोग हो रहा हैं। इसका असर हानिकारक कीटों तक न रहकर हमारे शरीर पर हो रहा हैं। ये विभिन्न माध्यमों द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं। जैसे खेतों में छिड़कते वक्त मुहँ, नाक आदि में श्वास द्वारा तथा त्वचा द्वारा प्रदूषित अनाज व सब्जियों के द्वारा, पशुओं के दूध के द्वारा इन कीटनाशकों का अंश हमारे शरीर में पहुँचता हैं। इनका असर हड्डियों तथा तंत्रिका तंत्र पर पड़ता हैं। कुछ जानवरों में कैंसर युक्त ट्यूमर भी पाए गए हैं। कीटनाशक डी.डी.टी., वी.एच.पी., एल्ड्रिन, इंडोसेल्फान, मैलाथियान, सोडियम सायनइड एक बार वातावरण में प्रसारित होने के पश्चात लम्बे समय तक रहते हैं क्योंकि वातावरण में इनका विखण्डन आसानी से नहीं हो पाता हैं। अत: ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को टालने के हेतु निम्न उपाय करने चाहिए।

1. किसानों व मजदूरों को कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग के बारे में शिक्षित करना चाहिए।
2. कीटनाशकों के बोरे या पैकेट पर उनके प्रयोग की विधि सरल भाषा में लिखनी चाहिए।
3. मजदूरों को संरक्षी कपड़े तथा मुखावरण का प्रयोग करना चाहिए।
4. प्रतिबंधित कीटनाशकों का देश में आयात रोकना चाहिए। उपरोक्त सावधानियों को ध्यान में रखकर कीटनाशक रसायनों के प्रभाव से समाज को कुछ हद तक सुरक्षित किया जा सकता हैं।

14.13 बोध प्रश्न

I. लघुत्तात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण को परिभाषित कीजिए।

....

2. भौतिक पर्यावरण के कारकों के बारे में विस्तार से बताइये।

....

3. तापमान से पर्यावरण किस प्रकार प्रभावित होता हैं। समझाइये।

....

4. भूमण्डलीय पर्यावरण के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

....

5. जैव मण्डल से आप क्या समझते है।

....

6. जल प्रदूषण किन कारणों से होता हैं समझाइये।

....

7. जल प्रदूषण का मनुष्यों पर क्या प्रभाव होता हैं समझाइये।

....

8. जल प्रदूषण किस प्रकार भूमि की उर्वरता को प्रभावित करता हैं।

....

9. जल प्रदूषण को किसे प्रकार नियंत्रित किया जा सकता हैं।

....

10. वायु किन कारणों से प्रदूषित होती है समझाइए।

....

11. वायु प्रदूषण मानव स्वास्थ्य को किस प्रकार प्रभावित करता हैं।

....

12. PAN से आप क्या समझते हैं।

....

13. स्माग वातावरण को किस प्रकार प्रभावित करता हैं।

....

14. मृदा किन किन कारणों से प्रदूषित होती हैं।

....

15. औद्योगिक इकाई किस प्रकार भूमि को प्रदूषित करती हैं।

....

II. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थ कहलाते हैं-

(अ) प्रदूषक (ब) कीटनाशक (स) अवक्षेप (द) विलायक

2. पर्यावरण प्रदूषक का अर्थ हैं-

(अ) पर्यावरण का दूषित होना (ब) पर्यावरण में आवंछित पदार्थो का एकत्र होना

(स) पर्यावरण की गुणवत्ता का ह्रास होना (द) उपरोक्त सभी

3. वायु प्रदूषण फैलता हैं-

(अ) उद्योगों से (ब) वाहनो से (स) धुंए से (द) उपरोक्त सभी

4. कौन सा पदार्थ जैव विघटित नही होता-

(अ) पेड पत्तियाँ (ब) डीडीटी

(स) मरे हुए जानवर (द) मानव व पशु मल

5. मृदा अपरदन का नियंत्रण किया जा सकता हैं-

(अ) अधिक वृक्ष लगाकर (ब) कृषि की विकसीत तकनीक अपनाकर

(स) पालतू पशुओं की चराई चारागाह में करा कर

(द) उपरोक्त मे से कोई नहीं

6. भूमि प्रदूषण के स्त्रोत हैं -

(अ) आद्योगिक अपशिष्ट (ब) जल की कमी

(स) अतिवृष्टि (द) अत्यधिक शोर

7. ध्वनि प्रदूषण का प्राकृतिक कारण हैं -

(अ) बिजली की कड़क (ब) सोनिक बम

(स) यातायात का शोर (द) ध्वनि

8. PAN का अर्थ हैं -

(अ) परऑक्सी एल्डीहाइड नाइट्रोजन (ब) परॉक्सी अमोनिया नाइट्रेट

(स) परऑक्सी एसीटाइल नाइट्रेट (द) कोई नहीं

9. श्वसन संबंधी रोग मुख्यत: किस कारण होते हैं -

(अ) वायु (ब) जल (स) मृदा (द) ठोस अपशिष्ट

10. शोर से तात्पर्य हैं

(अ) अप्रिय तथा अवांछित ध्वनि (ब) तेज आवाज में संगीत

(स) कारखानों में मशीन की तीव्र ध्वनि (द) उपरोक्त सभी

14.14 सारांश (Summary)

1. प्रकृति जिससे हम सभी जुड़े हैं। हमारा पर्यावरण कहलाता हैं।
2. पर्यावरण के अन्तर्गत समस्त सामाजिक, भौतिक, रासायनिक तथा जैविक आते हैं।
3. भौतिक पर्यावरण में प्रकाश, तापमान, आर्द्रता तथा वर्षा को सम्मिलित किया गया हैं।
4. पर्यावरण में होने वाला अवांछनीय परिवर्तन प्रदूषण कहलाता हैं।
5. प्रदूषकों को विभिन्न भागों में वर्गीकृत किया गया हैं। उत्पत्ति के आधार पर क्रमश: प्राकृतिक तथा मानव निर्मित प्रदूषक, दृश्यता के आधार पर दृष्टिगत तथा अदृश्य प्रदूषक तथा प्रकृति के आधार पर ठोस, द्रव, गैसीय, भारहीन, ताप तथा ध्वनि प्रदूषकों में विभाजित किया गया हैं।
6. प्राकृतिक जल में किसी बाह्य अवांछित पदार्थो के कारण जल की गुणवत्ता में परिवर्तन हो जाना जल प्रदूषण कहलाता हैं।
7. जल प्रदूषण प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों कारणों से होता हैं।

8. किसी भौतिक, रसायनिक तथा जैविक कारक की उपस्थिति में वायु के प्राकृतिक स्वरूप में बदलाव ही वायु प्रदूषण कहलाता हैं।

9. स्मॉग शब्द धुँआ तथा कोहरे के मिश्रण से बना हैं। रमॉग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से वातावरण को प्रभावित करता हैं।

10. भूमि के भौतिक, जैविक तथा रासायनिक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन जिसका असर पादप अथवा मानव जाति पर पड़े भूमि प्रदूषण कहलाता हैं।

11. अवांछित तथा असह्य ध्वनि के कारण होने वाला प्रदूषण शोर प्रदूषण कहलाता हैं।

12. कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग के कारण भूमि, जल तथा जन्तु समुदाय प्रभावित होता हैं। अत: कीटनाशकों के द्वारा होने वाला प्रदूषण कीटनाशक प्रदूषण कहते हैं।

14.15 शब्दावली (Glossary)

1. Pollution - प्रदूषण
2. Pollutant - प्रदूषक
3. Electro Magnetic Waves - विद्युत चुम्बकीय तरंगे
4. PAN Peroxy Acetyl Nitrate - परॉक्सी एसीटाइल नाइट्रेट

14.16 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. **प्राणि पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी -** भाटिया, कौहली, स्वरूप
2. **पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी -** के.सी. सोनी
3. **पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी -** डॉ. धीरेन्द देवर्षि
4. **पर्यावरण अध्ययन -** त्यागी, सक्सेना, जैन
5. **पर्यावरण अध्ययन -** प्रमिला जोशी, स्मिता भटंनागर
6. **पास्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी -** त्रिगुणायत, प्रसाद एवं सिंह

14.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.	अ	2.	द	3.	द	4.	ब	5.	ब
6.	अ	7.	अ	8.	स	9.	अ	10.	द

14.18 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रदूषण की परिभाषा देते हुए पर्यावरण प्रदूषण पर लेख लिखिए।
2. जल प्रदूषण के मानवीय स्त्रोतों का वर्णन करो।
3. वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपायों का वर्णन करो।
4. स्मॉग का शाब्दिक अर्थ क्या हैं? स्मॉग का निर्माण किस प्रकार होता हैं।
5. मृदा प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय बताइये।
6. मृदा अथवा भूमि प्रदूषण पर टिप्पणी लिखिए।
7. ध्वनि प्रदूषण के कारणों को समझाइये।

8. कीटनाशक रसायनों द्वारा होने वाले प्रदूषण पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 15

ओजोन परत पर ह्यास प्रभाव

(Effect On Ozone Layer Depletion)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 ओजोन व ओजोन परत का निर्माण

15.3 ओजोन परत का ह्मास

15.4 ओजोन परत में क्षय के मुख्य कारण

15.5 ओजोन परत में छिद्र

15.6 ओजोन के दुष्प्रभाव

15.7 हरित गृह प्रभाव

15.8 हरित गृह प्रभाव के कारण

15.8.1 प्राकृतिक

15.8.2 मानव जाति

15.9 हरित गृह गैसें

15.10 हरित गृह प्रभाव के दुष्प्रभाव

15.10.1 मौसम व जलवायु पर प्रभाव

15.10.2 भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि

15.10.3 वर्षा में वृद्धि

15.10.4 बर्फ का पिघलना व समुद्र तल की ऊँचाई बढ़ना

15.10.5 समुद्र का अम्लीकरण व संतुलन

15.10.6 कीटों की संख्या में वृद्धि से बीमारियों में वृद्धि व फसलों में कमी

15.10.7 वन्य जीवन पर प्रभाव

15.11 हरित गृह प्रभाव का नियंत्रण

15.12 एलनिनो प्रभाव

15.12.1 एलनिनो के प्रभाव

15.13 ला निना

15.14 सारांश

15.15 शब्दावली

15.16 संदर्भ ग्रंथ

15.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.18 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई में ओजोन परत के क्षय के कारण तथा उससे होने वाले विभिन्न प्रभावों का अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त हरित ग्रह गैंसे, उनके प्रभाव, अलनिनों तथा ला निनो आदि समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

ओजोन परत क्या हैं वायुमण्डल में इसका क्या कार्य हैं तथा इसकी अधिकता के क्या दुष्प्रभाव हैं। यह परत लगातार पतली क्यों होती जा रही हैं। इसके अतिरिक्त वायुमण्डल में लगातार तापमान बढ़ रहा हैं। निरन्तर तापमान में वृद्धि के कारण पौधों पर इसका क्या प्रभाव होता हैं। हरित गृह गैसे क्या हैं ये वायुमण्डल को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। अलनिनों तथा ला निनो समस्याएं किस प्रकार उत्पन्न होती हैं।

15.2 ओजोन व ओजोन परत का निर्माण

1. आजोन परत पर ह्मस का प्रभाव (Effect on Ozone Layer Depletion)

आजोन (Ozone-O3) ऑक्सीजन का त्रिपरमाणु रूप हैं। पृथ्वी के वायुमण्डल में यह गैस अत्यन्त अल्पमात्रा में पायी जाती हैं। यह गैस पृथ्वी के निचले वायुमण्डल में एक प्रदूषक व हानिकारक गैसे हैं।

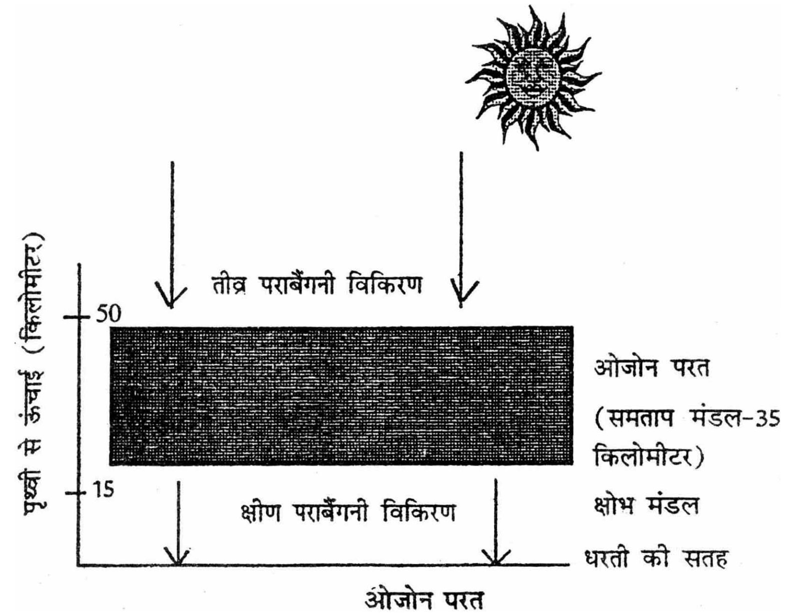

ओजोन परत

2. आजोन परत का निर्माण :

ओजोन परत का निर्माण स्ट्रेटोस्फियर में ऑक्सीजन तथा पराबैगनी किरणों की अभिक्रिया से होता हैं। ओजोन स्वयं पराबैंगनी किरणों की ऊर्जा को अवशोषित कर ऑक्सीजन व परमाणिक ऑक्सीजन में बदलती हैं। पृथ्वी से लगभग 15 किमी. ऊँचाई पर ओजोन गैस O3 की एक मोटी परत पाई जाती हैं। जो सूर्य की किरणों में से घातक पराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित कर पृथ्वी की सतह पर पहुँचने से रोकती हैं। इस प्रकार यह ओजोन परत पृथ्वी

पर रहने वाले जीवधारियों तथा पेड़ पौधों की पराबैंगनी किरणों से कवच की तरह रक्षा करती हैं।

15.3 ओजोन परत का ह्यास (Ozone layer depletion)

कभी कभी प्राकृतिक घटनाएँ भी ओजोन परत के ह्यास का कारण होती हैं। ज्वालामुखी का फटना इनमे से एक हैं। ज्वालामुखी के फटने से प्रचुर मात्रा में हानिकारक गैसे वायुमण्डल में पहुँचती हैं और परत की हानि का कारण बनती हैं। परन्तु इन प्रकृतिक गैंसो का प्रभाव वातावरण में अधिक समय तक नहीं रहता हैं।

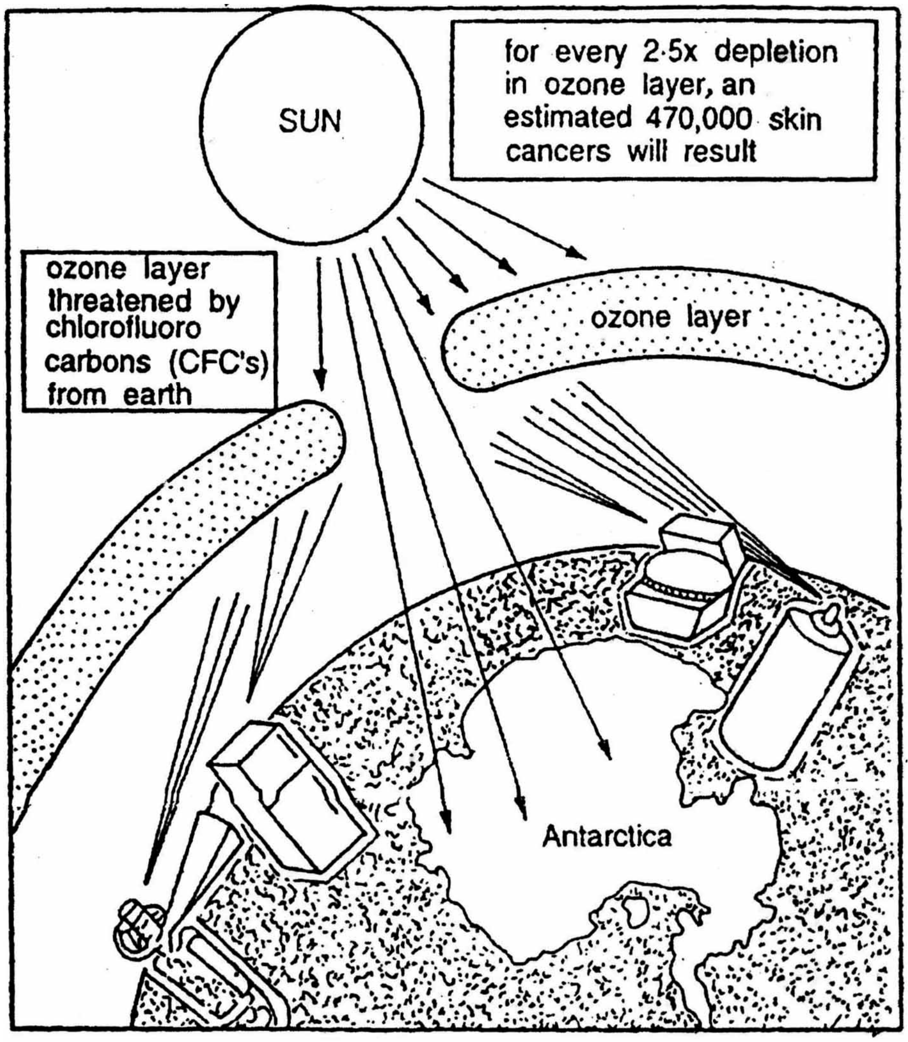

the hole in the sky

सन 1950 में डॉ. फोरमैन ने ओजोन परत की क्षति की संभावना से अवगत कराया। 1980 के आरम्भ में उन्होंने बताया कि एन्टार्कटिका के ऊपर ओजोन परत बहुत पतली हो गई हैं जिसे आज 'ओजोन होल' या 'ओजोन छिद्र' कहते हैं।

सन 1998-2000 में ओजोन छिद्र में लगभग 10 लाख वर्ग किलोमीटर की वृद्धि की आशंका व्यक्त की।

15.4 ओजोन परत क्षय के मुख्य कारण

प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त ओजोन परत के क्षय के कारण निम्न हैं-

1. इसके -ह्मास के लिए क्लोरो फ्लोरी कार्बन (CFC) गैस उत्तरदायी हैं। अज्वलनशील, रासायनिक रूप से निष्क्रिय तथा अविषाक्त होने के कारण औद्योगिक रूप से CFC की पहचान एक आर्दश प्रशीतक के रूप में की गई। इसका प्रयोग रेफ्रीजरेटर, वातानुकूलित यंत्रों, इलेक्ट्रिक प्लास्टिक तथा दवा उद्योगों में व्यापक रूप से हो रहा हैं। परिणाम स्वरूप समतापमण्डलीय ओजोन में तेजी से अल्पता आ रही हैं।
2. वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई से पर्यावरण में ऑक्सीजन की मात्रा कम होने लगतीं हैं। जिससे ओजोन गैस के अणुओं का निर्माण कम हो जाता हैं।
3. वायुमण्डल में पाए जाने वाले नाइट्रस ऑक्साइड ऊपर उठकर स्ट्रेटोस्फीयर तक पहुँचकर नाइट्रिक ऑक्साइड में तब्दील हो जाती हैं। यह नाइट्रिक ऑक्साइड ओजोन से क्रिया करती हैं और ओजोन की क्षति होती हैं।
4. हवाई जाहज, रॉकेटों आदि के संचालन से उत्पन्न उच्च ताप के कारण भी नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन के संयोग से नाइट्रिक ऑक्साइड का निर्माण होता हैं।
5. जलने वाले धुँए से भी ऐसा माना जाता हैं कि विमानों, वाहनों कारखानों आदि से निकलने वाले धुँए से भी विभित्र प्रकृति के रसायन वायुमण्डल में प्रवेश कर रहे हैं और ओजोन परत को नष्ट कर रहे हैं।

15.5 ओजोन परत में छिद्र

ओजोन पृथ्वी के वायुमण्डल में आने वाले पराबैंगनी विकिरणों को रोकती हैं। यदि यह कम हो जाएगी तो पृथ्वी की सतह तक पराबैंगनी किरणों की मात्रा बढ़ जाएगी। ओजोन को क्षति पहुँचा सकने वाले ये पदार्थ ओजोन क्षयकारी पदार्थ (Ozone Depleting Substances = ODS) कहलाते हैं। यह मुक्त मूलक उत्पेरक होते हैं। यह अनुमान लगाया गया हैं कि वायुमण्डल में ओजोन की मात्रा 0.5% प्रतिवर्ष के हिसाब से कम हो रही हैं एवं अन्टार्कटिका के ऊपर स्थित वायुमण्डल में कुल 20% से 30% तक ओजोन कम हो गई हैं। इसी प्रकार के छोटे छोटे छिद्र अन्य स्थानों पर भी देखे गए हैं। विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने 1995 में बताया कि छेद का आकार पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में दो गुना हो गया हैं। यदि ओजोन क्षय कारी पदार्थो का पूर्ण नियंत्रण भी कर लिया जाए तो ओजोन छिद्र को भरने में तथा पुन: 1986 के स्तर तक आने में वर्षो लगेगे।

15.6 ओजोन क्षय के दुष्प्रभाव

1. वायुमण्डल में विषैली गैसों की मात्रा में वृद्धि
2. त्वचीय कैंसर
3. ट्रोपोस्फियर में ओजोन बढ़ना
4. फसलों की उत्पादकता कम होना

5. प्लवकों की मात्रा में कमी
6. जलवायु पर प्रभाव
7. मौसम पर प्रभाव

1. **वायुमण्डल में विषैली गैसों की मात्रा में वृद्धि :** आजोन विरलन के कारण निचले वायुमण्डल में पराबैंगनी विकिरणों की मात्रा बढ़ जाती हैं। जिस कारण ऑखों में सूजन, मोतिया बिन्द, घाव होना आदि बीमारियों में वृद्धि हो रही हैं।
2. **त्वचीय कैंसर :** पराबैंगनी किरणों के कारण त्वचा के क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण कई प्रकार के चर्म कैंसर हो जाते हैं। जिसके कारण अत्यन्त कष्टप्रद मृत्यु होती हैं।
3. ट्रोपोस्फियर में ओजोन बढ़ना : जब स्ट्रेटोस्फियर में ओजोन घटती हैं तो पराबैंगनी किरणे वायुमण्डल में नीचे तक आ जाती हैं। जहाँ ये ऑक्सीजन को तोडकर ओजोन बनाती हैं। अत: ओजोन का सीधा अद्घासन जीवों के लिए हानिकारक हैं।
4. **फसलों की उत्पादकता कम होना :** पराबैंगनी किरणे यदि पृथ्वी की सतह तक पहुँचती हैं तो यह सायनो बैक्टीरिया को क्षति पहुँचाती हैं। ये बैक्टीरिया नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं। इनके नष्ट होने से चावल व अन्य फसलों की उत्पादकता कम हो जाती हैं।
5. **प्लवकों की मात्रा में कमी :** पराबैंगनी किरणों से जलीय तंत्र के प्लवक भी नष्ट होने लगते हैं। जिससे जलीय तंत्रों की उत्पादकता घटती हैं।
6. **जलवायु पर प्रभाव :** ओजोन क्षय के कारण जलवायु में परिवर्तन हो रहा हैं। पहले जिन स्थानों की जलवायु को ठंडा माना जाता था वे अब अपेक्षाकृत गर्म हो गये हैं व गर्म स्थानों की जलवायु ठंडी होने लगी हैं।
7. **मौसम पर प्रभाव :** गत वर्षो में वायुमण्डल में धूल के कणों की मात्रा बढ़ी हैं। जिससे पिछले 25 वर्षो में वायुमण्डल के तापमान में 0.2°C की कमी आई हैं। तापमान की कमी की अवधि में यूरोपीय देशों में भीषण वर्षा हुई हैं। उत्तरी अंध महासागर में बर्फ की मोटी तह जग गई हैं। ऊष्ण कटिबन्धीय देशों में मौसम (वर्षा आदि) का स्थानान्तरण हो रहा हैं।

   आजोन परत में क्षति एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण समस्या बन चुकी हैं। हमें इसके क्षय को रोकने के लिए प्रयास करने चाहिए। 16 सितम्बर को 'अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन परत संरक्षण दिवस' के रूप में घोषित करना उस दिशा में एक सराहनीय प्रयास हैं।

15.7 हरित गृह प्रभाव (Green House Effects)

मानव की प्रकृति विराधी एवं कार्यो के कारण संतुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा हैं तथा पृथ्वी के वायुमण्डल में विषैली गैसों की सीमा इस कदर बढ़ गई हैं कि धरती की ऊष्मा या गर्मी बाहर नहीं निकल पा रहीं हैं। इससे उत्पन्न प्रभाव को हरित गृह प्रभाव कहते हैं। ऑक्सफोर्ड के अनुसार वायुमण्डल में सर्वजनित कार्बन डाई ऑक्साइड के आवरण प्रभाव (Blanketting effect)के कारण पृथ्वी की सतह की प्रगामी तपन (Progressive Warming) को हरित गृह प्रभाव कहते हैं।

15.8 हरित गृह प्रभाव के कारण (Causes of Green House Effects)

हरित गृह प्रभाव के मोटे तौर पर दो कारण हैं।

1. प्राकृतिक (Natural)

2. मानवजनित (Anthropogenie)

(i) जीवाश्म ईधन का दहन (Burning of Fossil Fuel)

(ii) लकड़ी का दहन (Wood Burning)

(iii) वन विनाश (Deforestation)

(iv) पशुपालन व कृषि गतिविधियाँ (Animal Husbandery)

(v) क्लोरो फ्लोरो कार्बन (Chlorofloro Carbons)

1. प्राकृतिक (Natural) : ऐसा माना जाता हैं कि प्रकृति में अत्यन्त दीर्घ अवधि के तापमान परिवर्तन के चक्र चलते हैं। जिनके कारण कभी पृथ्वी अत्यन्त गर्म होने लगती हैं तो कभी हिमयुग आ जाता हैं। वैज्ञानिक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि जुरेसिक काल के समय प्राकृतिक हरित गृह प्रभाव से ही ओसत तापमान में 5℃ की वृद्धि हुई हैं।

2. मानवजनित (Anthropogenic) : मानवीय गतिविधयों के कारण हरित गृह प्रभाव लाने वाली गैसें मोचित होती हैं। ये गतिविधयाँ निम्न प्रकार हैं -

1. जीवाश्म ईधन का दहन (Burning of Fossil Fuel) : कोयला, पेट्रोलियम उत्पाद आदि जीवाश्म ईधनों के जलने से CO2 गैस उत्पन्न होती हैं। कोयले का उपयोग तापविद्युत गृह (Thermal Power Station), धातु या अयस्क पिघलाने की भट्टीयों (Furnances) में होता हैं। पैट्रोलियम उत्पाद जैसे डीजल, पैट्रोल, एविएशन, फ्लूड, कैरोसीन आदि की बडी मात्रा में खपत होती हैं। घरेलू गैस (LPG) भी जीवाश्मीय ईधन हैं। इन सभी के दहन से CO2 उत्पन्न होती हैं।

2. लकड़ी का दहन (Wood Burning) : घरेलू तथा औद्योगिक, वन्याग्नि (Forest Fire), जैव चिकित्सकीय कूड़े आदि को जलाने से CO2 मोचित होती हैं।

3. वनविनाश (Deferestation) : वनों के दोहन अर्थात् वनविनाश से दोहरा नुकासान होता हैं। एक ओर लकड़ी के दहने से CO2 उत्पन्न होती हैं। तो दूसरी ओर उस CO2 को प्रकाश संश्लेषण में प्रयुक्त करने वाले पौधे वन विनाश के कारण खत्म हो गए हैं। अत: वायुमण्डल में CO2 की मात्रा बढ़ जाती हैं।

4. पशुपालन एवं कृषि गतिविधयाँ (Animal Husbandry & Farming Activities) : पशुओं की आंत्र में पाचन गतिविधि में मीथेन उत्पन होती हैं। वनस्पति प्रकृति के व्यर्थ के सड़ने से भी मीथेन गैस बनती हैं। वातावरण में मीथेन की मात्रा अत्यन्त अल्प होती हैं। अत: इसका बढ़ना घातक होता हैं। क्योकि यह CO2 की तुलना में 21 गुना अधिक हरित गृह प्रभाव दर्शाती हैं।

5. क्लोरोफ्लोरो कार्बन (Chloro Floro Carbons) : क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उपयोग षीतलन तथा एयरोसोल मे किया जाता हैं। ये गैसे मानव जनित गतिविधयों के कारण उत्पन्न होती हैं तथा हरित गृह प्रभाव दर्शाती हैं।

15.9 हरित गृह गैसें (Green House Gases)

1. कार्बन डाई ऑक्साइड CO2
2. मीथेन CH4
3. अन्य गैसें

1. **कार्बन डाई ऑक्साइड (CO2) :** मानव जनित प्रभाव के कारण CO2, लगातार बढ़ रही हैं। 1750 के आधार वर्ष की तुलना में इसकी मात्रा में 31% की वृद्धि हुई हैं। ध्रुवीय बर्फ की परते जो हजारों वर्षो पहले जमी थी वे भी पिघलने लगी हैं।

2. **मीथेन (CH4) :** वायुमण्डल में लगभग 1, 77PPM मीथेन गैस पाई जाती हैं। जो लकड़ी के अपूर्ण दहन से, कूडा भराव स्थलों में कार्बनिक पदार्थो के अपघटन से, कोयले की खान व प्राकृतिक गैस की पाइप लाइन से तथा अवायवीय टीरिया आदि के द्वारा लगभग 15% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही हैं।

3. **अन्य गैसें (Other Gases):** ओजोन भी हरित गृह गैस हैं। इसके अतिरिक्त क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रस ऑक्साइड (N2O), पर फ्लोरो कार्बन (C-F) सल्फर हैक्सा फ्लूराइड (SF6) आदि भी हरित गृह प्रभाव दर्शाते हैं।

15.10 हरित गृह प्रभाव के दुष्प्रभाव

हरित गृह प्रभाव के परिणाम स्थानीय न होकर व्यापक व भूमण्डलीय होते हैं जो निम्न हैं-

1. मौसम व जलवायु पर प्रभाव
2. भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि
3. वर्षा में वृद्धि
4. बर्फ का पिघलना व समुद्र तल की ऊँचाई बढ़ना
5. समुद्र का अम्लीकरण व संतुलन
6. कीटों की संख्या में वृद्धि से बीमारियों में वृद्धि व फसल में कमी
7. वन्य जीवन पर प्रभाव

15.10.1 मौसम व जलवायु (Effect On Weather and Limate) : तापमान के प्रभाव के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी की जलवायू व मौसम प्रभावित होते हैं। इसके कारण वर्षा व मानसून में अनियमितता आ जाती हैं। पवन (Wind Circulation) प्रभावित होता हैं। चक्रवातों की तीव्रताप संख्या बढ़ती हैं तथा मौसम में चरम गर्मी, वर्षा या ठंड बढ़ जाती हैं।

15.10.2 भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि (Increase in Global Temperature) :

कार्बन डाई ऑक्साइड व अन्य हरित गृह गैसों की सतह वृद्धि से कम तरंग दैर्ध्य की इन्फ्रारेड विकिरणों के अवशोषण की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ी हैं तथा पहले की तुलना में बाहर जाने वाले विकिरण घटे हैं। जिससे पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि हुई हैं।

15.10.3 वर्षा में वृद्धि (Increase in Rain) :

ताप बढ़ने से पृथ्वी पर होने वाली वर्षा काफी प्रभावित होगी। अर्थात् वर्षा के स्वरूप में प्रभाव आएगा। अर्थात् जो क्षेत्र पुष्क हैं उनके हरे भरे हो जाने की संभावना हैं, लेकिन दूसरी और सहारा रेगिस्तान जैसे इलाकों का उत्तरी और फैलने का भय हैं।

15.10.4 बर्फ का पिघलना व समुद्र तल की ऊँचाई बढ़ना :

भूमण्डलीय ताप में वृद्धि के कारण ध्रुवीय व पहाड़ों की बर्फ पिघलने लगती हैं। इस कारण नदियों व समुद्रों का जल स्तर बढ़ जाता हैं। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2100 में 110 से 770MM तक की वृद्धि हो सकती हैं। इसके परिणाम घातक होगें क्योकि अनेक देशों में बड़ी संख्या में लोग नदियों व समुद्रों के तटों पर रहते हैं। अत: उनके आवास छिन जाएँगे।

15.10.5 समुद्र का अम्लीकरण व संतुलन :

लगातार होने वाले CO2 की वृद्धि के कारण समुद्र अम्लीय हो रहे हैं क्योंकि CO2 का एक बड़ा भाग समुद्र सोख लेते हैं। वर्तमान में समुद्र में वायुमण्डल की तुलना में 60 गुणा अधिक CO2 हैं। CO2 बढ़ने पर इसका उपयोग प्रमुखत: षैवाल कर जैवभार में वृद्धि करते हैं तथा कुछ मात्रा में CO2 लाइम स्टोन में भी बदलती हैं। यह समुद्री जीवों के कवच बनाने में उपयोग में आती हैं। इन सब के कारण समुद्र संतुलन गड़बड होने लगता हैं।

15.10.6 कीटों की संख्या में वृद्धि से बीमारियों में वृद्धि व फसल में कमी :

ठंडे क्षेत्रों में तापमान वृद्धि होने के कारण कीटों का प्रवेश व वृद्धि होने लगती हैं। ये संख्या में वृद्धि कर फसलों को क्षति पहुँचाते हैं तथा मक्खी मच्छर आदि कीटों से मानव जाति में मलेरिया, डेंगू चिकनगुनिया आदि बीमारियाँ होने लगी हैं।

15.10.7 वन्य जीवन पर प्रभाव :

भूमण्डलीय तापमान बढ़ने व इसके परिणाम स्वरूप आए परिवर्तनों से अनेक ताप व PH के प्रति संवेदी जातियों की संख्या घटने या उनके विलुप्त हो जाने की संभावना होती हैं। समुद्र में रहने वाले कोरल पर भी इनका प्रभाव पड़ता हैं।

15.11 हरित गृह प्रभाव का नियन्त्रण (Mitigation of Green House Effect)

ग्रीन हाउस गैसों के अधिक उत्सर्जन व उनके नियंत्रण के लिए निम्न उपाय सुझाए गए हैं।

1. कम कार्बन युक्त ईधनों का उपयोग करना।
2. कार्बन युक्त ईधनों के स्थान पर दूसरे ईधनों का उपयोग करना।
3. CFC के उत्पादन एवं उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध होना।
4. वनों के विनाश को रोकना तथा ज्यादा से ज्यादा पेड़ लगाना।
5. ऊर्जा उत्पादन का दक्षता से उपयोग एवं उत्पादन।

6. कार्बन मुक्त ऊर्जा के स्त्रोत का विकास। जैसे सोलर, वायु, ज्वारीय हाइड्रो, जियोथर्मल तथा नाभिकीय ऊर्जा।
7. CFC के स्थान पर अन्य वैकल्पिक साधनो का उपयोग किया जाना चाहिए।
8. इन सभी उपायों को अपनाकर इस विश्वव्यापी समस्या से छुटकारा पाया जा सकता हैं।

15.12 एल निनो प्रभाव (El Nino Effect)

एल निनो प्रशान्त महासागर में तापमान के असंतुलन से संबंधित परिघटनाएं हैं। इन परिघटनाओं का विश्व क मौसम पर व्यापक प्रभाव पडता हैं। एल निनो स्पेन की भाषा का षब्द हैं। एल निनो का अर्थ हैं बालक (Boy)। एलनिनो षब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पेरूवियाई मछुआरों द्वारा किया गया था। जब इक्वेडर (Equador) तथा पेरू (Peru) के तट पर समुद्र सतह के तापमान में वृद्धि के कारण मत्स्य झोल (Fish Catch) कम हो गया था। यह क्रिसमस के दौरान हु आ अत इसे क्राइस्ट का शिशु (Christ Child) कहा गया। 1996 में जेकब ब्जेरकेन्स (Jacob Bjerkenes) ने एलनिनो तथा मौसम पराकाष्ठा के बीच परस्पर संबंध निरूपित किया। यदाकदा तापमान का यह परिवर्तन बहु त अधिक हो जाता था। जिससे तटीय जल व पेरू के तट की जलवायु दिसम्बर के अंत में गर्म हो जाया करती थी। इस अत्यधिक विचलन को एल निनो प्रभाव (El Nino Effect) कहा जाने लगा। पेरू के तट की यह परिस्थिति वर्ष भर एक सी नहीं रहती हैं। दिसम्बर के अंत में जल धारा पेरूतट से दूर पश्चिम की ओर जाने के बजाय तट तक आने लग जाती हैं। अर्थात् धारा विपरीत बहने लग जाती हैं। इससे तट का जल गर्म हो जाता हैं। जिसके फलस्वरूप यहाँ का मौसम अधिक गर्म व उमस भरा हो जाता हैं। इस प्रभाव से वर्षा भी होती हैं तथा तट पर मछलियों की मात्रा में कमी भी आती हैं। हर साल यह प्रभाव देखने को मिलता हैं। एक दो माह में यह परिस्थिति सामान्य हो जाती हैं। इस स्थिति से पेरू, उरूग्वे, चिली आदि देश ही प्रभावित नहीं होते हैं। वरन दूरदराज भारत जैसे देश के मानसून पर भी प्रभाव पडता हैं।

15.12.1 एलनिनो के प्रभाव (Effect of El Nino)

1. सामान्यत: सूखा तथा का रहने वाला दक्षिणी अमेरिका का तट गर्म व नम हो जाता है। उत्तरी अर्जेन्टाइना, उरूग्वे, उत्तरी पेरू, दक्षिणी ब्राजील, दक्षिणी एक्वाडोर में भीषण वर्षा होती हैं। जिससे जानमाल को क्षति होती हैं तथा कृषि भी प्रभावित होती हैं।
2. अत्यधिक नमी व वर्षा के कारण रोगों व रोगियों की मात्रा में वृद्धि होती हैं।
3. समुद्र में तापमान में व्यापक परिवर्तन आने से किन्हीं क्षेत्रों में अचानक ऐसी जीवों की जातियाँ देखी जाती हैं। जो वहाँ के लिए अज्ञात थी।
4. दक्षिणी फिलीपीन्स सेन्ट्रल अमेरिका व भारतीय उपमहाद्वीप में मौसम सूखा हो जाता हैं। जिससे कृषि प्रभावित होती हैं तथा घास के मैदानों व जंगलो में आग की घटनाएं बढ़ जाती हैं।

15.13 ला निना (La Nina)

हाल की में वैज्ञानिकों ने एल निनो के विपरीत एक परिघटना की रिपोर्ट दी हैं। ला निना का अर्थ हैं 'लडकी। ला निना के लक्षण हैं मध्य तथा पूर्वी ऊष्ण कटिबन्धीय प्रशान्त में प्रबल व्यापारिक पवन तथा असाधारण निम्न समुद्र सतह तापमान हो जाता हैं। बहुत तीव्र ला निना मध्य अक्षांश में मौसम पराकाष्ठा से भी संबंधित हो सकता है। उदाहरण के लिए 1988 में संयुक्त राज्य सूखा तीव्र ला निना के अनुरूप था। ला निना घटना सामान्यता अल निनो के बाद घटती हैं तथा दोनो के मध्य एक वर्ष का अन्तराल रहता हैं। अलनिनो के प्रभाव से सूखा ग्रस्त हुए क्षेत्रों में ला निना से वर्षा होती हैं। ऐसा चीन में 2000 में हुआ।

15.14 बोध प्रश्न

I. लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ग्रीन हाउस गैसे कौन कौन सी हैं?

....

....

2. CFC के उपयोग क्यों हानिकारक हैं?

....

....

3. हरित गृह प्रभाव का नियंत्रण किस प्रकार किया जा सकता हैं?

....

....

II. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. वायुमण्डल में ओजोन परत पाई जाती हैं।

(अ) ऊपरी स्ट्रोटोस्पीयर में (ब) निचले स्ट्रोटोस्फीयर में

(स) ट्रोपोस्फीयर में (द) आनोस्फीयर में

2. ओजोन परत पृथ्वी की सतह से लगभग इतनी ऊँचाई पर होती हैं।

(अ) 15 से 35 किमी (ब) 35 से 60 किमी

(स) 60 से 80 किमी (द) 80 से 95 किमी

3. CO2 की अधिकता के कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि कहलाती हैं।

(अ) प्रदूषण (ब) ग्रीन हाउस प्रभाव (स) इकोटोन (द) अल निनो

4. पृथ्वी की UV किरणों से सुरक्षा होती हैं।

(अ) ओजोन स्तर (ब) नाइट्रोजन (स) हाइड्रोजन (द) ऑक्सीजन

5. ग्रीन हाउस प्रभाव किससे संबंधित हैं।

(अ) ग्रीन शैवाल से (ब) CFC की कमी से

(स) ग्लोबल वार्मिग से (द) टेरेस गार्डन विकास से

6. निम्न में से ग्रीन हाउस गैस नहीं हैं।

(अ) H (ब) CO_2 (स) CH_4 (द) CFC

7. ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि का कारण हैं।

(अ) वन विनाश (ब) रेफ्रीजरेटर

(स) कोयला व पैट्रोलियम (द) उपरोक्त

8. कौन सी गैस UV किरणों को अवशोषित करती हैं।

(अ) N_2 (ब) CO_2 (स) O_2 (द) O_3

9. ग्रीन हाउस प्रभाव में सर्वाधिक योगदान हैं।

(अ) CH_4 (ब) CH_2 (स) CFC (द) फियोन

10. अलनिनो मूलत: किस देश से संबंधित घटना हैं।

(अ) जापान (ब) भारत (स) पेरू (द) इंग्लैण्ड

11. एल निनो परिघटना किस महासागर से संबंधित हैं।

(अ) प्रशान्त (ब) आर्कटिक (स) एन्टार्कटिक (द) हिन्द

12. अलनिनों प्रभाव से प्रभावित जंतु हैं।

(अ) गाय (ब) शेर (स) चीता (द) मछली

15.15 सारांश (Summary)

1. ओजोन का निर्माण स्ट्रोस्फियर में ऑक्सीजन तथा पराबैंगनी किरणें की अभिक्रिया से होता हैं।
2. आजोन परत पृथ्वी पर रहने वाले जीवधारियों तथा पेड़ पौधों की पराबैंगनी किरणों से कवच की तरह रक्षा करती हैं।
3. विभिन्न गैसों के प्रभाव से ओजोन परत पतली हो गई हैं। जिससे ओजोन होल या ओजोन छिद्र कहते हैं।
4. ओजोन क्षय के कारण वायुमण्डल में विषैली गैसों वृद्धि, त्वचीय कैंसर, फसलों की उत्पदाकता में कमी, प्लवकों की मात्रा में कमी जलवायु तथा मौसस भी प्रभावित होते हैं।
5. वायुमण्डल में मानव जाति कार्बन डाई ऑक्साइड के आवरण प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह पर प्रगामी तपन को हरित गृह प्रभाव कहते हैं।
6. हरित गृह प्रभाव प्राकृतिक तथा मानव जनित कारणों से होता हैं।
7. मानव जनित कारणों में जीवाश्मीय ईधन का दहन, लकड़ी का दहन, वनविनाश, क्लोरो फ्लोरो कार्बन, पशुपालन एवं कृषि गतिविधियाँ आदि हैं।
8. कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, परफ्लोरो कार्बन (C-F) सल्फर हेक्साफ्लूराइड (SF_6) आदि हरित गृह गैसे हैं।
9. हरित गृह गैसों के कारण मौसम, जलवायु, भूमण्डलीय तापमान समुद्र का अम्लीकरण व संतुलन, समुद्र तल की ऊँचाई, फसल तथा वन्य जीवन प्रभावित होता हैं।
10. प्रशान्त महासागर में तापमान के असंतुलन के कारण एलनिनो तथा लानिना के प्रभाव होते हैं।

15.16 शब्दावली (Glossary)

1. ODS - ओजोन क्षयकारी (Ozone Depleting Substances)
2. आवरण प्रभाव (Blan Ketting Effect)
3. प्रगामी तपन (Progressive Warmihng)
4. मानव जनित (Antrhro Pogenic)
5. ताप विद्युत गृह (Thermal Power Station)
6. भट्टियों (Furnances)

15.17 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. प्राणी पारिस्थतिकी एवं पर्यावरण जैविकी - भाटिया, कोहली, स्वरूप
2. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - त्रिगुणायत, प्रसाद, सिंह
3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - के.सी. सोनी
4. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - डॉ. धीरेन्द्र देवर्षि
5. पर्यावरण अध्ययन - त्यागी, सक्सेना, जैन
6. पर्यावरण अध्ययन - प्रमिला जोशी, स्मिता भटनागर

15.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1)	ब	(2)	अ	(3)	ब	(4)	अ
(5)	स	(6)	अ	(7)	द	(8)	द
(9)	ब	(10)	स	(11)	अ	(12)	द

15.19 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ओजोन परत व इससे हो रही क्षति पर निबंध लिखिए।
2. ओजोन विरलन व ओजोन छिद्र के बीच विभेदन करो।
3. हरित गृह प्रभाव को विस्तार से समझाइए।
4. हरित गृह प्रभाव के कारण बताइये।
5. हरित गृह 'प्रभाव के संभावित' दुष्परिणामों की विवेचना कीजिए।
6. पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के प्रमुख कारण कौन कौन से हैं?
7. एलनिनों प्रभाव क्या हैं? इस पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।
8. एलनिनों प्रभाव के परिणामों पर निबंध लिखिए।
9. लानिना प्रभाव से आप क्या समझते हैं।

इकाई 16

विकिरण एवं पर्यावरण

(Radiation and Environment)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 नाभिकीय विकिरण

16.2.1 विकिरण के प्रकार

16.3 आयनकारी विकिरण

16.3.1 आयनीकारक विकिरणों के प्रकार

16.3.2 विकिरण की इकाइयाँ

16.4 पृष्ठ भूमिक विकिरण

16.5 नवीन पर्यावरणीय पृष्ठभूमिक उत्सर्जक

16.6 अवपात या फॉल आउट

16.6.1 विस्फोट से उत्पन्न फॉल आउट

16.6.2 फॉल आउट के प्रकार

16.7 परमाणु ऊर्जा का प्रभाव

16.7.1 विकिरण के जैविक प्रभाव

16.8 पारिस्थितिक तंत्र पर विकिरणों का प्रभाव

16.8.1 उपयोगी विकिरण

16.9 परमाणु दुर्घटना

16.10 बोध प्रश्न

16.11 सारांश

16.12 शब्दावली

16.13 संदर्भ ग्रंथ

16.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.0 उद्देश्य (Objective)

आयनकारी विकिरणों से होने वाले प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। नवीन पर्यावरण उत्सर्जकों से होने वाले खतरों परमाणु ऊर्जा के प्रभाव तथा परमाणु दुर्घटना इस इकाई के मुख्य उद्देश्य हैं।

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

परमाणु ऊर्जा संस्थानों के प्रदूषण के कारण प्राय: विकिरण उत्पन्न होते हैं। ये पादप व जीवों के क्षति पहुँचाते हैं। ये प्राय: अदृश्य होते हैं। सर्वप्रथम रेडियम के परमाणु नाभिक में स्वत: विकिरण निकलने का अध्ययन किया गया। अत: इस प्रकार के विकिरण रेडियोएक्टिव विकिरण' कहलाएं। परमाणवीय विखण्डन व विस्फोट के पश्चात फॉलआउट या अवपात जैसी घटनाएं होती हैं। कई बार इनसे बड़ी दुर्घटनाएं होने का खतरा भी होता हैं।

16.2 नाभिकीय विकिरण (Nuclear Radiation)

परमाणु भट्टी में ईंधन के रूप में काम में आने वाले यूरेनियम, चटोनियम आदि नाभिकीय विघटन के द्‌वारा परमाणु ऊर्जा देते हैं। बचा हुआ पदार्थ नाभिक कचरा कहलाता हैं। इन परमाणु भट्टियों से दो प्रकार के प्रदूषण फैलने की आशंका रहती हैं।

(1) वे विकिरण जो रेडियोएक्टिव नाभिकीय विकिरण कहलाते हैं व

(2) रेडियोसक्रिय अपशिष्ट (कचरा)।

इन विकिरणों का उपयोग चिकित्सा, धातुकर्म, विद्‌युत उत्पादन और कृषि के क्षेत्र में किया जाता हैं।

16.2.1 विकिरण के प्रकार (Types of Radiation)

रदरफोर्ड के अनुसार परमाणु के नाभिक से 3 प्रकार के विकिरण बाहर निकलते हैं। जिन्हें क्रमश: अल्फा (Alpha), बीटा (Beta) और गामा (Gamma) कहते हैं। अल्का तथा बीटा अतिसुक्ष्म परमाणु कण हैं व गामा सूक्ष्म तरंगों वाली किरणें होती हैं। अल्फा तथा बीटा कणों की धाराओं और गामा किरणों को ही परमाणु विकिरण (atomic radiation) कहते हैं।

विाकिरणों का वर्गीकरण विभिन्न आधार पर किया जाता हैं !

1. संरचना के आधार पर

1. विद्‌युत चुम्बकीय विकिरण (electro magnetic radiations) उदा. प्रकाश, गामा किरण, x किरण
2. कणीय विकिरण (corpuscular radiations) उदा. L & B विकिरण

2. प्रभाव के आधार पर

1. आयनकारी विकिरण (ionizing radiations)
2. अन आयनकारी विकिरण (non ionizing radiation)

16.3 आयनकारी विकिरण (Ionizing Radiation)

यदि विकिरण में इतनी ऊर्जा हो कि जिस माध्यम से यह गजरता हो उसमें आयनीकरण कर सके तो उस विकिरण को आयनीकरण विकिरण कहते हैं। ये किसी अणु यह परमाणु से इलेक्ट्रोन के कक्षक से बाहर निकाल देते हैं। आयनीकरण करने वाले विकिरण को आयनीकारक विकिरण (Ionizing Radiation) कहते हैं। उच्च ऊर्जा के कण (high energy particles) तथा कम तरंग दैर्ध्य के विद्‌युत चुम्बकीय विकिरण (short wave length electromagnetic radiations) दोनों ही आयनीकरण कर सकते हैं।

16.3.1 आयनीकरण विकिरणों के प्रकार (Types of Ionizing Radiations)

1. अल्फाकण (Alpha Particles)

ये कण हीलियम तत्व के नाभिक होते हैं। इनमें दो प्रोटोन व दो न्यूट्रॉन पाए जाते हैं। ये अस्थिर रेडियो सक्रिय परमाणु के विघटन के कारण उत्पन्न होते हैं। यूरेनियम 238 से थोरियम 234 बनने की क्रिया में इस प्रकार के कण मोचित होते हैं। इन कणों की शृंखला या धारा अल्फा तरंग (alpha Ray) या अल्फा विकिरण (alpha radiations) कहलाती हैं। इनकी भेदन क्षमता कम होती हैं। ये किसी कागज या मनुष्य की त्वचा से रोके जा सकते हैं।

2. बीटा विकिरण (Beta Radiation)

बीटा कण नाभिकीय इलैक्ट्रान होते हैं। ये न्यूट्रॉन के प्रोटोन व इलैक्ट्रॉन के टूटने से प्राप्त होते हैं। न्यून प्रक्रिया में उत्पन्न विकिरण बीटा विरिण कहलाते हैं। ऋण आदेश के कणों का वेग प्रकाश के वेग से कम होता हैं। इनकी भेदन क्षमता अल्फा कणों से अधिक होती हैं।

3. गामा किरणें (Gamma Rays)

जब उत्तेजित परमाण्विक नाभिक निम्नतम उत्तेजित अवस्था में आता हैं तो वह जिस प्रकार से विद्युत चुम्बकीय विकिरण उत्पन्न करता हैं उसे गामा विकिरण कहा जाता हैं। इनकी तरंग दैर्ध्य 10^{-10} से 10^{-14} मीटर होती हैं। इनकी भेदन क्षमता α तथा β विकिरणों से अधिक होती हैं। ये α तथा β किरणों की तुलना में कम आयनीकरण करती हैं। कोबाल्ट 60 गामा विकिरण का स्त्रोत हैं। ये किसी अणु बंध को भी तोड सकती हैं। जिससे उच्च ऊर्जा (high energy) उत्पन्न होते हैं।

विभिन्न प्रकार के विकिरण और उनके प्रभाव :

1. α कण हवा में कुछ ही सेमी तक जा सकते हैं तथा जीवित कोशिका में 30mu तक भेद सकते है।
2. कण हवा में 8 सेमी तक जीवित कोशिका में 1 सेमी तक जा सकते हैं। ये त्वचा को भेद सकते हैं। परन्तु आंतरिक ऊतक तक नहीं जा सकते। ये त्वचा में कैंसर का कारण होते हैं।
3. Y किरणें 100 मीटर तक हवा में तथा पूर षरीर को भेद सकती हैं।
4. x किरणें बहु त दूर तक जा सकती हैं। हड्डी को छोडकर पूरे षरीर में जा सकती हैं।
5. पराबैंगनी किरणें x-ray से कम ऊर्जा वाली किरणें जो कैंसर का कारण होती है। (u v -किरणों)

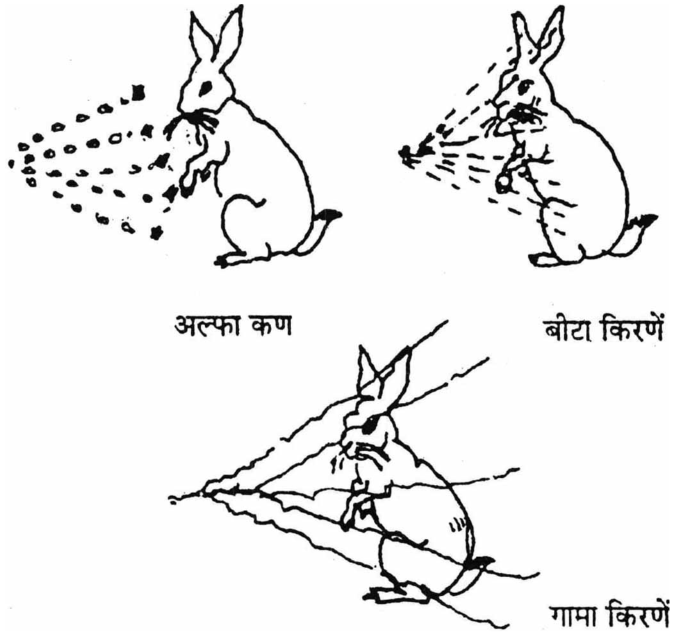

अल्फा. बीटा कणों व गाण किरणों की भेदन क्षमता

16.3.2 विकिरण की इकाईयां (Units of Radiation)

विकिरण के मापन के लिए काम में ली जाने वाली इकाईयां 3 प्रकार की होती हैं।

1. बेक्वेरल (Becquerel)-Bq
2. ग्रे (Gray)-Gy
3. सीवर्ट (Sievert)-Sv

ये तीनों अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयां (SI Unit) हैं। इनके अतिरिक्त क्यूरी (Curie), रोएन्टजन (Roentgen), राड (Rad) व रेम (Rem) हैं।

1. **बेक्वेरल (Bequerel) :** बेक्वेरल (1852-1908) ने इस इकाई की खोज की। एक बेक्वेरल का आशय हैं प्रतिक्षण एक नाभिक का स्वत: क्षय (1 Bq=15-1)
2. **ग्रे (Grey) :** ग्रे इकाई किसी पिण्ड द्वारा अवशोषित वह मात्रा है जो एक जूल प्रति किलोग्राम आयनीकारक विकिरण डालने पर अवशोषित की जाती हैं। ग्रे (1905-1965) के सम्मान में रखी गई हैं।
3. **सीवर्ट (Sievert) :** सीवर्ट 'डोज इक्वीलेन्ट' की इकाई हैं। इसे ज्ञात करने के लिए एक दिशा विहीन कारक (dimension less factor) से आयनी कारक विकिरण की मात्रा को गुणा किया जाता हैं। इसे सीवर्ट (1896-1923) के सम्मान में रखा गया.।
4. **क्यूरी (Curie) :** क्यूरी इकाई क्यूरी (1867-1937) के सम्मान में रखी गई। रेडियम-226 के 1 ग्राम की सक्रियता को एक क्यूरी कहा जाता था।
5. **रैम (Rem) :** सेएन्टजन (1845-1923) के सम्मान में रखी गई इकाई रेम कहलाती हैं। इसका उपयोग डोज एक्यिवेलेन्ट मापने के लिए होता था।

16.4 पृष्ठ भूमिक विकिरण (Back Ground Radiation)

वातावरण में मिलने वाले ऐसे विकिरण जिनसे हम बच नहीं पाते पृष्ठभूमिका विकिरण कहलाते हैं। चट्टानों की मिट्टी, बालू आदि में यूरेनियम व थोरियम जैसे रेडियो धर्मी तत्व पाए जाते हैं। रेडियो धर्मी पोटेशियम (40k) की अल्पमात्रा सभी प्राणियों के षरीर में मौजूद रहती हैं। परमाणु बमों के विस्फोट तथा रेडियों समस्थानिकों के उपयोग के कारण पृष्ठभूमि विकिरण में काफी वृद्धि हुई हैं। यह मानव जाति व पर्यावरण के लिए चिन्ताजनक हैं।

16.5 नवीन पर्यावरण पृष्ठभूमिक उत्सर्जक

(New Environmental Basic Ground Emitters)

पर्यावरण में विकिरण सतत व संदैव रहते हैं। हम जाने अनजाने में इनरने प्रभावित हो रहे हैं। कुल विकिरणों का 90% पर्यावरण से तथा 10% मानव प्रक्रियाओं से निर्मित होता हैं। हम इनसे बच नहीं पाते हैं। ऐसे विकिरण ही पृष्ठ भूमिका विकिरण कहलाते हैं। इनकी अधिकता हमारे लिए घातक होती हैं।

रेडान-220 : यह रेडियम का उत्पाद हैं जो रेडॉन गैस के रूप में कंकरीट की दीवारों चट्टानों आदि से रिसता हुआ घर के अंदर प्रवेश कर जाता हैं यह मनुष्यों के फेफड़ों को क्षतिग्रस्त करता हैं। लम्बे समय तक फेफड़ों में रहने के कारण कैन्सर रोग पैदा करता हैं। जहाँ रेडॉन गैस की मात्रा अधिक होती हैं वहाँ फेफड़ों का कैंसर भी अधिक पाया जाता हैं। धूम्रपान करने वालों के भी फेफड़ों का कैंसर होता हैं।

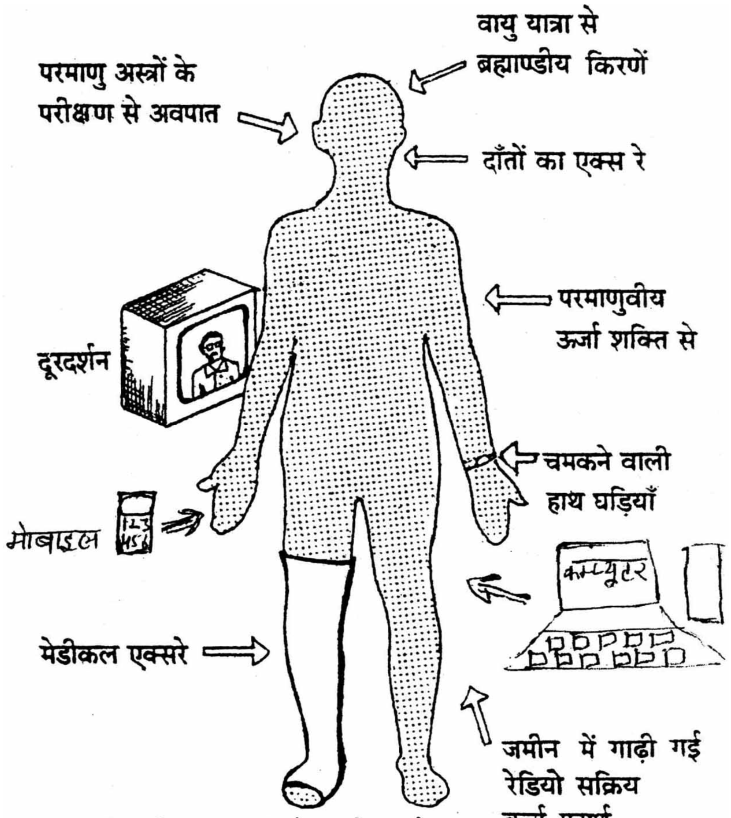

मानव निर्मित पर्यावरणीय पृष्ठभूमि के उत्सर्जक व स्रोत

टिट्रियम : यह मानव निर्मित विकिरण जन्य पदार्थ है जो हाइड्रोजन का समस्यानिक हैं। नाभिकीय रिएक्टर से छोड़े जाने वाले अपशिष्टों में यह पाया जाता हैं। यह मानव भ्रूण तथा बच्चों के मस्तिष्फ की वृद्धि व विकास पर अवांछित प्रभाव डालता है।

परमाण्विक अस्त्र शस्त्रों के विस्फोटों से अनेक रेडियो समस्यानिक उत्पन्न होते हैं। ये पर्यावरण में रेडियो धर्मिता बढ़ा देते हैं। अत: विकिरण की सूक्ष्म से सूक्ष्म मात्रा के प्रति हमे सजग रहने की आवश्यकता हैं।

16.6 अवपात या फॉलआउट (Fal Out)

पृथ्वी पर वर्षा के रूप में बरसने वाली रेडियोधर्मी धूल ही अवपात कहलाती हैं। अन्य षब्दों में फॉलआउट परमाणु हथियार के विस्फोट के समय रेडियो सक्रिय पदार्थो की धूल का आकाश में फैलना तथा धीरे धीरे विस्फोट के स्थल से दूर दूर तक फैलकर विकिरण प्रदूषण फैलाने की परिघटना हैं। यह परमाणवीय विखण्डन संलयन (fusion) या विभाजन (fission) प्रक्रिया का फल हैं।

16.6.1 विस्फोट से उत्पन्न फॉल आउट

1. नाभिकीय या परमाणवीय विस्फोट के समय एक सैकण्ड के हजारवें हिस्से में अकल्पनीय ताप के कारण आस पास की इमारतें, पेड पौधे व अन्य पदार्थ भस्म हो जाते हैं। जिस कारण ताप और बढ़ जाता हैं। गर्मी से रेत व चट्टानें कॉच जैसे पदार्थ में बदल जाते हैं।
2. इस भयंकर आग के कारण एक विशालकाय आग की गुबारे जैसी रचना बनकर ऊपर आकाश की ओर बढ़ती चली जाती हैं।
3. इस आग के गोले के वाष्पीकृत पदार्थ खुले वायुमण्डल में धीरे धीरे ठंडे होकर रेडियोधर्मी धूल के रूप में पुन: पृथ्वी पर बरसने लगते हैं। प्रत्येक विस्फोट पर यही प्रक्रिया पुन: दोहराई जाती हैं।

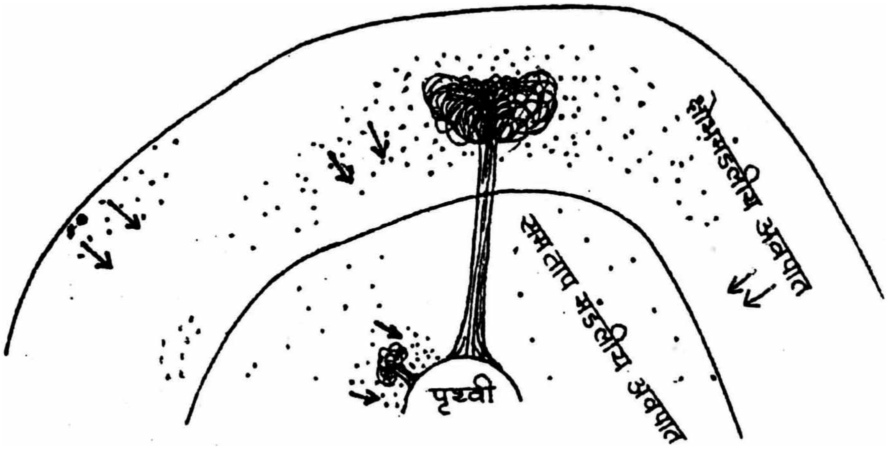

नाभिकीय अवपात का निरुपण

16.6.2 फॉलआउट के प्रकार (Types of Fall Out)

समयावधि के आधार पर अवपात (fallout) के निम्न दो प्रकारों में हैं।

1. आरम्भिक या स्थानीय अवपात (local or early Fallout)

2. विलम्बित या विश्वव्यापी अवपात (world wide or delayed fallout)

2.1 समताप मण्डलीय अवपात

2.2 क्षोभ मण्डलीय अवपात

1. **आरम्भिक या स्थानीय अवपात :** इस प्रकार के फील आउट में रेडियों सक्रिय धूल कुछ घण्टों के अंदर ही विस्कोट के स्थान से 250 किमी. के घेरे में बैठ जाती हैं।

2. **विलम्बित या विश्वव्यापी अवपात :** इस प्रकार के अवपात में धूल धरातल तक आने में समय लेती हैं। ये निलम्बित सूक्ष्म रेडियो धर्मी कण प्रकीर्णन के माध्य से विस्तारित होते रहते हैं। जो भविष्य में समय समय पर पृथ्वी पर आते रहते हैं। अत: इसे विलम्बित या विश्वव्यापी अवपात (delayed fallout) कहते हैं।

विलम्बित या विश्वव्यापी अवपात को पुन: दो प्रकार का माना गया हैं।

2.1 समताप मण्डलीय अवपात (tropospheric)

2.2 क्षोभ मण्डलीय अवपात (stratospheri Fallout)

2.1 **समताप मण्डलीय अवपात :** इस प्रकार के अवपात में धूल धरातल पर आने में एक सप्ताह का समय लेती हैं इसका प्रभाव लगभग पूरे विश्व पर होता हैं। इसका कारण यह हैं कि रेडियों सक्रिय धूल के कण ट्रोपोस्फियर तक चले जाते हैं तथा नीचे आने में समय लेते हैं।

2.2 **क्षोभ मण्डलीय अवपात :** इस प्रकार के अवपात में रेडियो सक्रिय कण जमीन तक आने में एक साल का समय ले सकते हैं इस अवधि ये विश्व के किसी भी कोने में पहुंच सकते हैं।

16.7 परमाणु ऊर्जा का प्रभाव (Effect of Atemic Energy)

परमाणु ऊर्जा तथा विकिरणों से होने वाले प्रभाव निम्न प्रकार के होते हैं।

1. विकिरण के जैविक प्रभाव

1.1 गुणात्मक

1.2 मात्रात्मक

कायिक या आनुवांशिक प्रभाव

16.7.1 विकिरण के जैविक प्रभाव (Biological Effects of Radiations)

विकिरणों से होने वाले जैविक प्रभाव को गुणात्मक तथा मात्रात्मक रूप में देखा जा सकता हैं।

1.1 **गुणात्मक प्रभाव (Qualitative Effect)**

विकिरणो से होने वाले गुणात्मक प्रभाव इस प्रकार हो सकते हैं।

1. इनके कारण त्वचा पतली हो जाती हैं। संयोजी ऊतक क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। रक्तवाहिनियाँ अवरूद्ध हो जाती हैं। इन सभी के परिणाम स्वरूप कैंसर हो जाता हैं।

2. जनदो (Gonad) में उपस्थित आदि जनन कोशिकाएँ विकिरणों के प्रति अतिसंवेदन षील होती हैं। इन कोशिकाओं के नष्ट होने से अस्थायी बध्यता (sterility) आ जाती हैं।

3. विकिरणों की बहु त कम मात्रा से ही दाँतों व कंकाल की वृद्धि अवरूद्ध हो जाती हैं। इससे नेक्रोसिस व अस्थिमंजन की अधिक संभावना रहती हैं।

4. रक्त कोशिकाओं को उत्पन्न करने वाली स्टेम कोशिकाएँ विकिरणों के प्रति अत्यधिक सवेदनशली होती हैं। ये शिघ्रता से नष्ट हो जाती हैं। इस कारण रक्त में इन कोशिकाओं की कमी आ जाती हैं।

5. विकिरणों के कारण गुणसूत्रों में उपस्थित जीन में उत्परिवर्तन की दर बढ़ जाती हैं। जिससे अनेक प्रकार की असमानताएँ देखने को मिलती हैं।

2.1 मात्रात्मक प्रभाव (Quantitative Effect)

मात्रात्मक प्रभाव प्रयोगात्मक प्राणियों पर आधारित हैं।

1. परमाणु विकिरणों का प्रत्यक्ष प्रभाव गर्भस्थ शिशुओं पर पडता हैं। मानव शिशुओं(4 प्रतिशत) में आनुवांशिक दोष देखने को मिलते हैं।

2. विकिरणों की कोई सुरक्षा सीमा नहीं हैं। विकिरणों की अव्यल्प मात्रा में भी कुछ न कुछ प्रभाव जरूर देखने को मिलेगा।

3. यदि मनुष्य को 1000 रोजन से अधिक मात्रा की विकिरणों से उपचारित किया जाए तो छोटी आत में व्याधि उत्पन्न हो जाती हैं। कुछ दिनों पश्चात मृत्यु हो जाती हैं। इस मृत्यु को आत्र मृत्यु (intestinal death) कहते हैं।

4. यदि मनुष्य को 3000 रोजन से अधिक मात्रा की विकिरणों से उपचारित किया जाए तो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र प्रत्यक्षतः प्रभावित होता हैं एवं प्राणि की मृत्यु हो जाती हैं।

16.7.2 विकिरणों के कायिक एवं आनुवांशिक प्रभाव (Somatic & Genetic Effects of Radiation)

रेडियो समस्थानिकों से निकलने वाली विकिरणों इनसे उद्भासित प्राणियों अथवा इनके वंशजो को प्रभावित करती हैं। इनसे होने वाले प्रभाव 2 प्रकार के होते हैं।

2.1 कायिक प्रभाव (Somatic Effect)

ये विकिरणकारी' प्रभाव कायिक कोशिकाओं तक सीमित रहते हैं। इनका -प्रदर्शन जल्दी होता है तथा संचरण पीढ़ी दर पीढ़ी - नहीं होता हैं। ये प्रभाव प्राणि की मृत्यु के साथ. ही समाप्त हो जाते हैं। ये प्रभाव विकिरणों के प्रकार, इनकी मात्रा, उदभासन समय आदि पर निर्भर करते हैं। उदाहरणार्थ अतिश्वेत रक्तता (Leukemia), अस्थिल कैंसर (Bone Cancer) बन्द्यता (sterility) आदि।

2.2 आनुवांशिक प्रभाव (Genetic Effect)

इस प्रकार के विकिरणकारी प्रभाव केवल आनुवांशिक कोशिकाओं तक सीमित रहते हैं। इनका प्रदर्शन धीरे धीरे तथा लक्षण पीढ़ दर पीढ़ी संचारित होते हैं। यह DNA में उत्परिवर्तन के कारण होता हैं। मुख्य आनुवांशिक प्रभाव' इस प्रकार होते हैं।

1. गर्भपात एवं अचल प्रसव में वृद्धि
2. लिंग अनुपात (sex ratio) में परिवर्तन
3. विकृत शिशुओं की संख्या में वृद्धि
4. शिशु मृत्यु दर में कमी

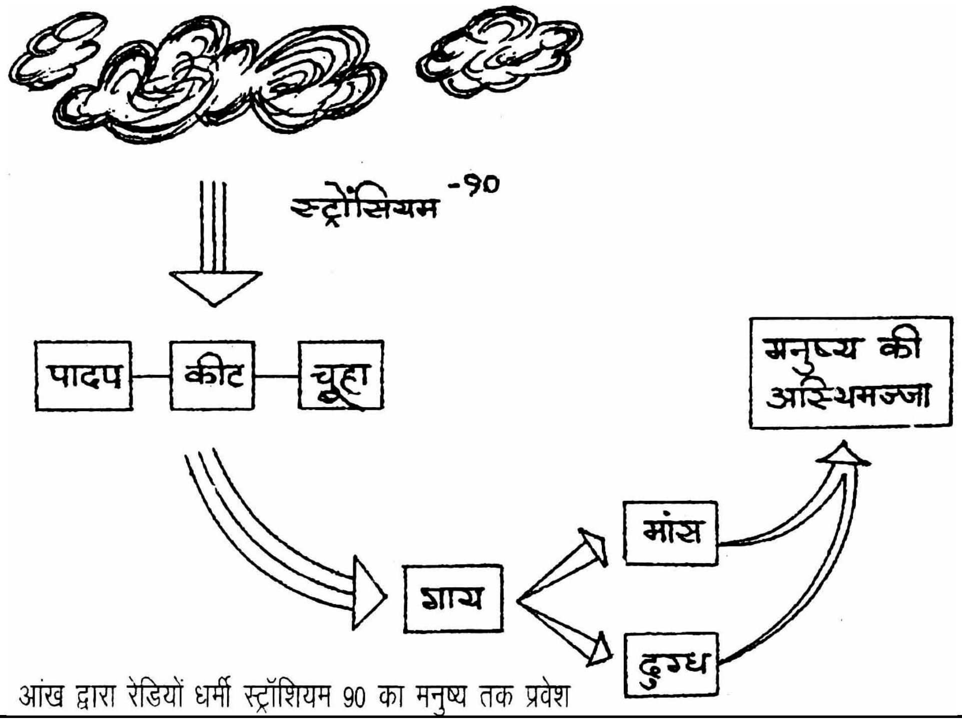

आंख द्वारा रेडियों धर्मी स्ट्रॉशियम 90 का मनुष्य तक प्रवेश

16.7 पारिस्थितिक तंत्र पर विकिरणों का प्रभाव (Effect of Radiation On Ecosystem)

नाभिकीय परीक्षणों के कारण रेडियोधर्मी प्रदूषण से जीवपोषी तंत्र (trophic system) तथा खाद्य शृंखला प्रभावित होती हैं। ये रेडियों धर्मी किसी न किसी माध्यम से मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। विकिरण जैविकीं की दृष्टि से मनुष्य के संदर्भ में परिस्थितिकी एवं सम्पूर्ण परितंत्र का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक हैं।

वुडवैल (1962- 1965) ने ओक पाइन वन में गामा उत्सर्जक को रख दिया। 2 वर्ष पश्चात ओक पाइन वन में विकिरण प्रवणता के अनुसार निम्न पाँच स्पष्ट क्षेत्र विकसित हो गए।

1. **केन्द्रीय क्षेत्र (Central Zone)**

   यह मध्य का क्षेत्र था जहाँ कोई उच्च पादप जीवित नहीं बचा।

2. **सेज क्षेत्र (Sedge Zone)**

   यह द्वितीय क्षेत्र था यही ओक, पाइन तथा झाडियाँ समाप्त हो गए। केवल सेज घास जीवित थी।

3. **झाड़ी क्षेत्र (Bush Zone)**

   इस तृतीय क्षेत्र में सेज एवं झाडियाँ तो जीवित थी परन्तु ओक व पाइन वृक्ष समाप्त हो गए।

4. **प्रतिबलित क्षेत्र (Stressed Zone)**

   इसमें झाडियाँ, सेज व अन्य वृक्ष तो जीवित थे लेकिन पाइनवृक्ष समाप्त हो गए।

5. **पूर्ण ओक पाइन वन (Complete Oak Pine Forest)**

   इस क्षेत्र में पौधों की वृद्धि बहुत कम थी तथा कोई भी वृक्ष पूर्णत: समाप्त नहीं हुए थे।

यह स्पष्ट है कि सजीवों में रेडियो धर्मी विकिरणों के अलग अलग क्षेत्रों में सहनशीलता में अंतर इनमें पाए जाने वाले गुणसूत्रों की विभिन्नता के कारण होती हैं। अलग अलग प्रजातियों में विकिरणों के प्रति अनुकूलन के लक्षण भी विकसित होने लग जाते हैं।

16.8.1 उपयोगी विकिरण (Useful Radiations)

विकिरण विभिन्न प्रकार के होते हैं। हानिकारक विकिरण के अलावा कुछ विकरण लाभदायक भी होते हैं। इनका उपयोग कृषि, चिकित्सा विभिन्न तत्वों का शरीर में गतिविधि का पता लगाने में, औषधि निर्माण आदि में किया जाता हैं।

1. **कृषि के क्षेत्र में (In Agriculture) :** रेडियो आइसोटोप्स की सहायता से आलू प्याज आदि का विकिरण करके बिना षीत संग्रहण करे सामान्य तापक्रम पर 1 वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता हैं। कृषि के क्षेत्र में हानि पहुँचाने वाले कीड़ों कोबाध्य कर दिया जाता हैं। जिससे उनके वंशज उत्पन्न न हो। रेडियो धर्मी के नाभिकीय विखंडन से ऊर्जा पैदा होती हैं। जिससे भाप बनती हैं। जो जैनरेटर चलान के काम आती हैं।
2. **औषधि के रूप में (Use as a Medicine) :** रेडियो आइसोटोप्स का उपयोग रोगो के इलाज के लिए किया जाता हैं। जैसे थायराइड के इलाज के लिए आयोडीन- 131, ल्यूकेमिया के इलाज के लिए फॉस्फोरस-32, मस्तिष्क तथा प्रोस्टेट के अर्बुदों के इलाज के लिए रेडियोगोल्ड- 198ए तथा कैंसर के इलाज के लिए कोबाल्ट-60 का प्रयोग किया जाता हैं।

16.9 परमाणु दुर्घटना (Atomic Accidents)

परमाणु दुर्घटनाओं के इतिहास पर नजर डाली जाए तो एक लम्बी सूचि तैयार हो जाएगी। प्रमुख दुर्घटनाएं निम्न हैं-

1957- यूनाइटेड किंगडम की विण्डस्केल दुर्घटना

1958- अमेरिका के लॉस एलेमास दुर्घटना

1980- यू.एस.ए. की थीमाइल आइलैण्ड दुर्घटना

1986- यू.एस.ए.आर. की चनौबिल दुर्घटना

26 अप्रैल 1986 को एक बजकर चौबीस मिनट पर सोवियत संघ के उक्राइन प्रान्त की राजधानी किएफ के निकट स्थित चेरनोबिल परमाणु बिजलीघर की चौथी रिएक्टर ड्रा इकाई में ऐसी परमाणु दुर्घटना घटी जिसने तमाम विश्व को हिला दिया। इस दुर्घटना में हजारो लोगों की मृत्यु हुई व लोग विकिरण के प्रभाव से ग्रसित हुए। वायुमण्डल में वायु का रूख डेनमार्क, नार्वे स्वीडन की ओर होने के कारण रेडियोधर्मी तत्व यहाँ नदियों, खलिहानों मैदानों व खेतों मे जमा हो गए तथा पूरे वातावरण में विकिरण प्रदूषण फैल गया। प्रदूषण के कारण यहाँ की सरकार ने प्रदूषित जल स्त्रोतों को सील कर दिया तथा उनके उपयोग पर पाबंदी लगा दी।

प्रभाव (Effect)

1. प्रदूषित भूमि को अनउपजाऊ घोषित करना पडा।
2. मवेशी जिन पर विकिरण का असर था उन्हे मौत के घाट उतारा गया।
3. दूषित जल व खेतो में उपस्थित वनस्पति को उपयोग रहित करना पडा।

4. लाखों टन दूध, चीज, मक्खन, पनीर आदि खाने के अयोग्य हो गए।

नियंत्रण (Control)

नाभिकीय भट्टियों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक हैं। इसके द्वारा ऊर्जा की आपूर्ति होती हैं। परन्तु इन कार्यो में सावधानी की आवश्यकता हैं।

16.10 बोध प्रश्न

1. निम्न में से सबसे हानिकारक प्रभाव छोड़ने की क्षमता वाला स्त्रोत हैं।
   (अ) सौर ऊर्जा (ब) पैट्रोंलियम उत्पाद
   (स) कोयला (द) नाभिकीय ऊर्जा
2. काणीय विकिरणें हैं।
   (अ) न्यूट्रोन (ब) β (स) $\propto$ (द) उपरोक्त सभी
3. परमाणवीय विस्फोट के पश्चात पृथ्वी पर आने वाली रेडियो धर्मी धूल कहलाती हैं।
   (अ) नाभिकीय विखण्डन (ब) नाभिकीय संलयन
   (स) नाभिकीय अवपात (द) उपर्युक्त सभी
4. विकिरण के होने वाले प्रभाव हैं।
   (अ) कायिक (ब) जैविक (स) आनुवांशिक (द) समस्त
5. ओक पाइनवन में उत्सर्जक से संबंधित प्रयोग करने वाला वैज्ञानिक हैं।
   (अ) क्यूरी (ब) रोजन (स) हेरिसन (द) वुडवैल
6. निम्न में से किस विकिरण की भेदन क्षमता अधिक होती हैं।
   (अ) x किरणें (ब) गामा किरणें (स) अल्फा कण (द) बीटा विकिरण
7. दो न्यूट्रॉन व 2 प्रोटोन पाए जाते हैं।
   (अ) बीटा विकिरण में (ब) अल्फा विकिरण में
   (स) गामा किरणों में (द) x किरणों में

16.11 सारांश (Summary)

1. परमाणु भट्टी में ईंधन के रूप में काम 'में आने वाले यूरेनियम, चूटोनियम आदि नाभिकीय विघटन के द्वारा परमाणु ऊर्जा देते हैं। इस प्रक्रिया में नाभिकिय विकिरण निकलते हैं।
2. विकिरण आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त विद्युत चुम्बकीय आयनकारी व अनआयनकारी विकिरण भी होते हैं।
3. आयनीकरण करने वाले विकिरण आयनकारी विकिरण कहलाते हैं।
4. विकिरणों को मापने की विभिन्न इकाइयां बेक्वेरल, ग्रे, सीवर्ट क्यूरी तथा रेग हैं।
5. रेडियम रेडॉन 220, टिट्रियम आदि विकिरण जन्य पदार्थ हैं।
6. पृथ्वी पर वर्षा के रूप में बरसने वाली रेडियोधर्मी धूल ही अवपात कहलाती हैं।
7. वातवरण में पाए जाने वाले ऐसे विकिरण जिनके प्रभाव से हम बच नहीं पाते हैं पृष्ठ भूमिक विकिरण कहलाते हैं।
8. अवपात को आम्भिक या स्थानीय तथा विलम्बित तथा विश्वव्यापी अवपात में बाँटा गया हैं।

9. विकिरणों से होने वाले प्रभाव जैविक, गुणात्मक, मात्रात्मक कायिक तथा आनुवांशिक होते हैं।

10. विकिरणों का प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र पर भी पड़ता हैं।

11. विकिरण हानिकारक होने के साथ साथ लाभदायक भी होते हैं। कृषि तथा ऑषधि के रूप में इनका उपयोग किया जाता हैं।

12. नाभिकीय रिएक्टर में तथा अन्य कार्यो में थोडीसी असावधानी के कारण परमाणु दुर्घटनाएं हो जाती हैं। जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूप से पादप जन्तुओं तथा प्राणिजात पर होता हैं।

16.12 शब्दावली (Glossary)

1.	जीवपोषी तंत्र	Trophic System
2.	कणीय विकिरण	Corpus Cular Radiations
3.	परमाणु विकिरण	Atomic Radiations
4.	उच्च ऊर्जा मूलक	High Energy Free Radical
5.	दिशा विहीन कारक	Dimension Less Factor
6.	संलयन	Fussion
7.	विभाजन	Fission
8.	जनदो	Gonad
9.	वंध्यता	Stenility

16.13 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. पर्यावरण अध्ययन - त्यागी, सक्सैना, जैन
2. पर्यावरण अध्ययन - प्रमिला जोशी, स्मिता भटनागर
3. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - के.सी. सोनी,
4. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - धीरेन्द्र देवर्षि
5. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - त्रिगुणामत प्रसाद, सिंह
6. प्राणी पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण जैविकी - भाटिया, कोहली, स्वरूप

16.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1)द	(2) द	(3) स	
(4)द	(5) द	(6) ब	(7) ब

16.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नाभिकीय विकिरण किन्हे कहते हैं। ये कितने प्रकार के होते हैं। समझाइये।
2. आदि विकिरणों तथा उनसे होने वाले प्रभावों का वर्णन करिए।
3. विकिरण को मापने की विभिन्न इकाइयों के विषय में बताइये।

4. नवीन पर्यावरणीय पृष्ठाभूमिक विकिरण से आप क्या समझते हैं।

5. नाभिकीय अवपात क्या हैं? इसके परितंत्र एव जैविक तंत्र पर होने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

6. निम्न पर लघु टिप्पणियां लिखिए।

   1. चेरनोबिल दुर्घटना 2. आयनकारी विकिरण 3. विश्वव्यापी अवपात
   4. विकिरणों के प्रभाव 5. उपयोगी विकिरण 6. संरचना के आधार पर विकिरणों का वर्गीकरण

ISBN - 13/978-81-8496-166-9